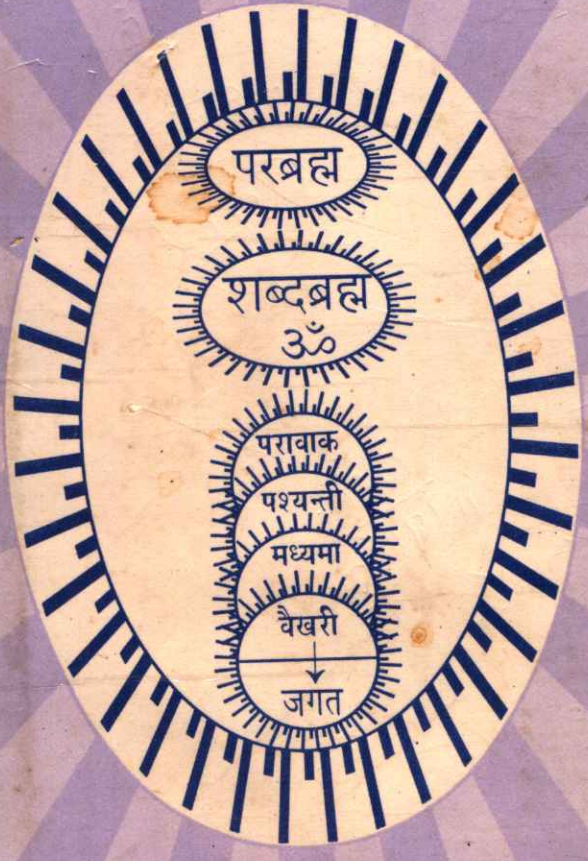
कामकलाविलासः



● श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

२८८

पुण्यानन्दविरचितः

कामकलाविलासः

नटनानन्दविरचितया चिद्वल्यासंवलितः

'सरोजनी'-हिन्दीव्याख्यया च सहितः

सम्पादक एवं व्याख्याकार

डा० श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

फोन : ३३३४३१

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १९९७

मूल्य १००.००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू . ए . बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

फोन : २३६३९१

*

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

फोन : ३२०४०४

कम्प्यूटर टाईपसेटर

चित्तरंजन कम्प्यूटर वर्क्स, वाराणसी

मुद्रक

महावीर प्रेस, वाराणसी

दो शब्द

भारतीय तान्त्रिक सिद्धान्त एवं साधना के इतिहास में, तान्त्रिक दर्शन के महान् आचार्य एवं दार्शनिक पुण्यानन्द नाथ द्वारा विरचित, 'कामकलाविलास' अपना विशिष्ट स्थान रखता है । यह 'श्रीविद्या' विषयक साहित्य की अत्युच्चकोटि की एक अप्रतिम रचना है । राजराजेश्वरी पराभट्टारिका महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना ही इस ग्रन्थ का मूल विषय है । निःशेष प्रपञ्च, शिव एवं शक्ति ('प्रकाश' एवं 'विमर्श') तथा उनके सामरस्य के बोधक 'श्री चक्र' एवं 'पञ्चदशी मन्त्र' की इसमें व्यापक विवेचना की गई है । यद्यपि यह श्रीविद्या का एक साधना-ग्रन्थ है तथापि इसमें 'श्रीविद्या' के मूल सिद्धान्तों की भी विशद व्याख्या की गई है । दार्शनिक दृष्टि से यह शाक्तों के 'तान्त्रिक अद्वयवाद' की प्रतिपादक रचना है ।

हिन्दी भाषा के पाठकों एवं मनीषियों द्वारा इसकी हिन्दी-टीका की आवश्यकता चिरकाल से अनुभव की जा रही थी किन्तु दुर्भाग्यवश अद्य पर्यन्त इस आवश्यकता एवं आकांक्षा की पूर्ति नहीं हो पाई ।

सुधी प्रकाशकों की अनवरत प्रेरणा एवं डा० जगदीश गुप्त, अध्यक्ष : हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, की तीव्र आकांक्षा के फलस्वरूप 'सरोजिनी' नामक हिन्दी टीका के साथ इस ग्रन्थ रत्न को पाठकों एवं विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है । आशा करता हूँ कि वे इसका आदर करेंगे ।

इस ग्रन्थ की उपादेयता को और अधिक बढ़ाने की दृष्टि से, प्रकाशक महोदय ने, इसके साथ किसी एक संस्कृत टीका को भी संलग्न किये जाने की आकांक्षा व्यक्त की थी । फलस्वरूप 'कामकलाविलास' की सर्वोत्तम टीका 'चिद्वल्ली' को भी संलग्न करके इस ग्रन्थ को प्रस्तुत किया जा रहा है । 'चिद्वल्ली' टीका इतनी वैदुष्यपूर्ण एवं प्रामाणिक टीका है कि इसे एक स्वतंत्र ग्रन्थ की महत्ता प्राप्त हो चुकी है । आचार्य नटनानन्दनाथ की 'चिद्वल्ली' टीका इतनी प्रामाणिक एवं सारगर्भित है कि स्वयं भास्कराचार्य ने भी 'योगिनीहृदय' की टीका 'सेतुबंध', में इसको प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है ('सेतुबंध', श्लोक : २१) । 'चिद्वल्ली' की इसी अप्रतिम महत्ता के कारण ही सर जान वुडरफ ने 'कामकलाविलास' की अंग्रेजी टीका लिखते समय अपनी व्याख्या के साथ ही साथ 'चिद्वल्ली' टीका का अंग्रेजी में अनुवाद करके इसे भी उस रचना के साथ प्रकाशित करवाया । सर जान वुडरफ महोदय की इस व्याख्या एवं 'चिद्वल्ली' की टीका के साथ 'कामकलाविलास' का जो संस्करण प्रथम बार १९२१ में प्रकाशित हुआ और उसके अनन्तर उसके जितने भी संस्करण प्रकाशित होते रहे, उन सभी में कमी यह रहती गई कि उनमें 'कामकलाविलास' का मूल संस्कृत पाठ एवं नटनानन्द नाथ की मूल संस्कृत टीका 'चिद्वल्ली' कभी संलग्न नहीं की गई ।

'चिद्वल्ली' टीका के रचनाकार नटनानन्द नाथ, शङ्करानन्दनाथ एवं नाथानन्द के शिष्य थे और केवल विद्वान् एवं आचार्य ही नहीं प्रत्युत साधक भी थे। उनकी टीका के द्वारा 'कामकलाविलास' के गुह्य अंशों एवं रहस्यात्मक तथ्यों का बड़ी सरलता पूर्वक स्पष्टीकरण एवं रहस्यावगाहन हो जाता है।

उपर्युक्त समस्त बिन्दुओं को ध्यान में रखकर ही 'कामकलाविलास' के प्रस्तुत प्रकाशन के साथ उक्त ग्रन्थ एवं उक्त टीका के संस्कृत पाठ को भी संलग्न किया गया है।

'कामकलाविलास' हादिमत का ग्रन्थ है, तथापि 'कादिमत' के अनुयायी भास्कराचार्य ने अपनी 'सेतुबंध' नामक टीका में 'कामकलाविलास' एवं इसके टीकाकार नटनानन्दनाथ की टीका 'चिद्वल्ली' इन दोनों का उद्धरण प्रस्तुत करके दोनों ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों की महत्ता को प्रमाणित किया है।

'चिद्वल्ली', एवं 'सरोजिनी' नामक संस्कृत एवं हिन्दी टीकाओं के साथ संलग्न 'कामकलाविलास' के इस प्रकाशन को हिन्दी एवं संस्कृत के पाठकों एवं विद्वानों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मैं विश्वास करता हूँ कि वे इसका आदर करेंगे।

मैं इस ग्रन्थ के प्रकाशक 'चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन' के सञ्चालक श्रीवल्लभदास एवं श्रीनवनीत दास जी गुप्त का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस रचना के प्रकाशन का दायित्व निर्वहन करके मुझे अनुगृहीत किया।

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

बैढ़न : सीधी
(मध्य प्रदेश)
अक्षय तृतीया, सं० २०५४
(वैशाख शुक्ल तृतीया)
३. ५. ९७

प्रस्तावना

'योगिनीहृदय' के विश्रुत टीकाकार योगी पुण्यानन्द नाथ द्वारा हादिमत की दृष्टि से श्रीविद्या पर प्रणीत 'कामकलाविलास' नामक यह ग्रन्थ श्रीविद्या का अत्यन्त प्रामाणिक एवं उच्चकोटि का ग्रन्थ है ।

'कामकलाविलास' का शाब्दिक अर्थ है - 'कामकला का विलास' अर्थात् 'कामकला' का विकास, विस्तार या उसकी विश्व-सृजन-व्यापाररूपी आनन्दात्मिका क्रीड़ा । 'कामकला' कामेश्वर से अविनाभूत (अभिन्न) 'विमर्श शक्ति' का अपर पर्याय है । पराभट्टारिका भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का नामान्तर ही 'कामकला' है । इसीलिए 'ललितासहस्रनाम' में महात्रिपुरसुन्दरी का एक नाम 'कामकला' भी बताया गया है - 'काम्या कामकलारूपा कदम्बकुसुमप्रिया ।' अतः पराशक्ति का अभिधानान्तर ही 'कामकला' है । जब पराशक्ति विश्व के उपादान रूप छत्तीस तत्त्वों का निगरण कर लेती है - 'कवलीकृत निःशेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी' के रूप में स्थित होती है - तब यथेष्ट समय तक इसी अवस्था में विश्राम कर चुकने के बाद, प्रकाशैकस्वरूप परशिव भट्टारक द्वारा इस दर्पण रूप पराशक्ति में आत्मसाक्षात्कार करने पर, उसमें सिसृक्षा रूप 'काम' का आविर्भाव होता है और परिणामतः शिव में क्रिया का आदि स्फुरण होता है । शक्ति की इसी कामात्मिका अवस्था को 'कामकला' कहते हैं । 'कामकला' परमात्मा में क्रिया का आद्य प्रदर्शन है । यह वह त्रिकोण है जो बिन्दु और विसर्ग, प्रकाश एवं विमर्श, शिव एवं शक्ति तथा अहं एव इदं से निर्मित होता है । त्रिकोण के तीनों बिन्दु (**'श्वेत बिन्दु'** = शिवात्मक चन्द्र ; **'रक्त बिन्दु'** = शक्त्यात्मकअग्नि ; **'मिश्र बिन्दु'** = सूर्य,) एवं मध्यस्थित **'महाबिन्दु'** - चारों मिलकर 'कामकला' के विग्रह का निर्माण करते हैं । 'कामकला' पराम्बा मुख्यतः त्रिबिन्दुमयी हैं और इन्हीं में छत्तीस तत्त्व एवं पञ्चदशी के अक्षर निहित हैं और इन्हीं से गुणत्रय का आविर्भाव होता है । 'त्रिपुरा सिद्धान्त' में कहा गया है - ''ओ पार्वती ! 'कला' कामेश्वर और कामेश्वरी की अभिव्यक्ति हैं - इसीलिए उन्हें 'कामकला' कहा जाता है । वे 'काम' की कला हैं इसीलिए उन्हें 'कामकला' कहा गया है । भास्करार्य 'ललिता' में कहते हैं कि तीन बिन्दु हैं और एक हार्ध कला है । इनमें प्रथम बिन्दु 'काम' है एवं अन्तिम 'कला' है । 'कामकला' के भीतर चारों का अन्तर्भाव है ।

शाक्त दर्शन के अनुसार 'शिव' प्रकाशस्वरूप एवं 'शक्ति' विमर्श स्वरूप हैं । प्रकाश स्वरूप शिव, विमर्श स्वरूपा (स्फूर्तिरूपिणी) शक्ति में प्रविष्ट होते हैं और 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेते हैं । इसी प्रकार विमर्श रूपात्मिका शक्ति शिव में अनुप्रविष्ट होती है । जिससे बिन्दु संवर्द्धित होता है । 'बिन्दु' एवं 'नाद' दोनों

मिलकर 'मिश्रबिन्दु' के रूप में परिणत हो जाते हैं । यह 'मिश्रबिन्दु' नर-नारी शक्तियों का योग है और 'काम' कहलाता है । पुरुष तत्त्व एवं नारी तत्त्व के प्रतीक 'श्वेत बिन्दु' एवं 'रक्त बिन्दु' उसकी विशिष्ट कलाएँ हैं । ये पुनः एक 'संयुक्त बिन्दु' बन जाते हैं । 'श्वेत बिन्दु', 'रक्त बिन्दु' एवं 'मिश्र बिन्दु' के मिलकर एक हो जाने की अवस्था को 'कामकला' कहते हैं । इस तरह 'कामकला' में चार शक्तियों का सामरस्य है - १. मूल बिन्दु (विश्वोपादान) २. नाद ३. श्वेत पुरुष बिन्दु ४. रक्त स्त्री बिन्दु । जब ये चारों तत्त्व आपस में संयुक्त होते हैं, तब 'कामकला' का स्वरूप धारण करते हैं और तभी सृष्टि का उपक्रम होता है । 'सूर्य' (संयुक्त बिन्दु) उसका मुख है । 'अग्नि' और चन्द्रमा (रक्त बिन्दु एवं श्वेत बिन्दु) उसके स्तनद्वय हैं और 'हार्ध कला' (बिन्दु में स्त्री तत्त्व के प्रथम बार प्रविष्ट होने पर नाद के साथ 'हार्धकला' नामक एक नव्य तत्त्व विकसित होता है) उसकी योनि है । इसी तत्त्व से सृष्टि का समारंभ होता है । यही परात्परा, पराम्बा शक्ति 'ललिता' 'पराभट्टारिका' 'परा एवं 'त्रिपुरसुन्दरी' के नाम से विख्यात है । शिव 'अकार' है और शक्ति 'हकार' है । 'ह' अर्धकला है । अतः योनि (स्त्री तत्त्व) 'ह' के आकार का अर्धभाग है । यह अर्धभाग (ह) शिव के प्रतीकाक्षर 'अ' से मिलकर 'कामकला' या 'त्रिपुरसुन्दरी' कहलाता है और यह शिव तथा शक्ति के समागम (संयोग) का परिणाम हैं । समस्त आत्माएं इसी त्रिपुरसुन्दरी का रूप मात्र हैं । इसीलिए साधक कहता है - 'अहं देवी न चान्योस्मि'। यह शक्ति 'अहं' भी कहलाती है । इसीलिए उसकी निःशेष सृष्टि अहमात्मिका है । जब ये आत्माएँ 'कामकला विज्ञान' एवं देवी के यंत्रों (चक्रों) का रहस्यावगाहन करके उनके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं तब स्वयं भी 'त्रिपुरसुन्दरी' बन जाती हैं । त्रिपुरा सुन्दरी ही पराशक्ति हैं और उन्हीं से यह समस्त वागर्थमय (वाक् एवं पदार्थमय जगत्) सृष्टि विकसित होती है ।

तन्त्र में शिव को 'प्रकाश' एवं शक्ति को 'विमर्श' की आख्या प्राप्त है । 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' के संयोग से 'बिन्दु' का आविर्भाव होता है । 'बिन्दु' शिव-शक्ति की संयुक्तावस्था (एकीकरण, मिलन) या युगनद्धावस्था की परिणति है । 'बिन्दु' की दशा में शिव-शक्ति का सामरस्य रहता है । इसी अवस्था को 'स्वायंभूलिंग एवं शिवशक्ति के इस सामरस्य को 'कामरूपपीठ' कहते हैं ।

उपनिषदों का परब्रह्म, नए परिधान में; शैव शाक्त दर्शनों का 'परम शिव' है और उसकी शक्ति 'सर्वातीताशक्ति' कहलाती है । इस सर्वातीता शक्ति के दो विकसित रूप हैं - १. 'प्रकाश' एवं २. 'विमर्श' । अर्थात् शिव एवं क्रियाशक्ति (विमर्श) सर्वातीता शक्ति के दो रूपान्तर है । शिव की दो अवस्थायें हैं - १. विश्वातीत २. विश्वमय । 'परमशिव' विश्वोत्तीर्ण है । प्रकाशरूप शिव को 'अम्बिका शक्ति' एवं विमर्श रूपा शक्ति को 'शान्ता' कहा गया है । इनके सामरस्य द्वारा 'वामा' (इच्छा) 'ज्येष्ठा' (ज्ञान) एवं 'रौद्री' (क्रिया) शक्तियों का विकास हुआ करता है । इन्हीं का आख्यान्तर है - 'पूर्णागिरि पीठ' 'जालंधर पीठ' एवं 'उड्डीयानपीठ' । ये ही 'पश्यन्ती वाक्' 'मध्यमा वाक्' एवं 'वैखरी वाक्' की स्थितियाँ भी है । इन सबसे परे है - सर्वातीताशक्ति - 'परावाक्' जो कि इन समस्त वाणियों की जन्मदात्री है ।

'प्रकाशबिन्दु' के 'विमर्श बिन्दु' में प्रविष्ट होने पर 'बिन्दु' उच्छून होता है अतः 'बिन्दु' से 'नाद' का आविर्भाव होता है । समस्त तत्त्व-समुदाय इसी 'नाद' में स्थित है । यही 'नाद' व्यक्तावस्था में 'त्रिकोण' का रूप ग्रहण करता है । इस 'त्रिकोण' का एक कोण (एक बिन्दु) 'प्रकाश' है तथा अन्य बिन्दु 'विमर्श' है । इन दोनों के संयोग से 'काम' या 'रवि' नामक 'मिश्रबिन्दु' उदित होता है । 'अग्नि' एवं 'चन्द्र' दोनों इसी 'काम' की कलाएँ हैं । सारांश यह कि 'कामकला' प्रकाश, विमर्श एवं काम (रवि) इन तीनों को द्योतित करता है । 'गंधर्व तन्त्र, में कामकला के तीन रूप बताए गए हैं - १. स्थूल रूप २. सूक्ष्मरूप एवं ३. मन्त्ररूप ।

इसका स्थूल रूप वह है जिसमें साधक देवी को अपने से पृथक् मानकर उनके पृथग्भूत स्वरूप का ध्यान करता है । (साधक का कार्य है - कामकला के साथ तादात्म्य-स्थापन । किन्तु वह प्रारंभिक दशा में ऐसा नहीं कर पाता ।)

इसका सूक्ष्म रूप अन्तर्मुखी है, स्थूल रूप की भाँति बाह्यमुखी नहीं । इसमें मूलाधार से निःसृत होकर एवं षट्चक्रों के मार्ग से यात्रा करती हुई देवी कुण्डलिनी का विद्युन्माला के रूप में ध्यान किया जाता है । इसके अतिरिक्त उनका सहस्रार में भी ध्यान करने का निर्देश दिया गया है । 'कामकला' का तृतीय रूप मन्त्रशरीरात्मक है । इस रूप में सामवेद उनका मुख है, ऋग्वेद एवं यजुर्वेद उनके दो पयोधर हैं एवं अथर्ववेद उनकी हार्धकला है । 'कामकला' स्वयं में तुरीय ब्रह्म है ।

'प्रकाश' 'विमर्श' एवं 'काम' इस त्रिकोणात्मक पद्धति द्वारा सृष्टि का विकास हुआ है—यही 'कामकला' द्वारा सृष्टि की अवधारणा का अभिप्राय है । चूँकि 'कामकला' का तृतीय रूप मन्त्रात्मक है अतः 'हंस' ही त्रिकोणात्मक 'कामकला' है । 'कामकला' मन्त्रों का मूल तत्त्व है । 'शब्दब्रह्म' अपनी शक्तियों के साथ जिस स्वरूप को बोधित करता है वही है सर्वोच्च त्रिकोणरूप 'कामकला' ॥ इसे त्रिकोण द्वारा इसलिए प्रदर्शित किया गया है क्योंकि इसकी अभिव्यक्ति की तीन दिशायें हैं जो निम्न हैं - १. इच्छा २. ज्ञान और ३. क्रिया ।

शक्ति का परमधाम 'कामकला' है इसीलिए इसे 'अबलालयम्' (शक्ति का गृह) कहा गया है । सहस्रार में स्थित द्वादशदलात्मकश्वेत पङ्कज में जिस शक्ति का निवास है उसे 'कामकला' कहा जाता है । 'कालिका पुराण' में कहा गया है कि 'काम' देवी का नाम है क्योंकि देवी कामेच्छावश शिव के पास कैलास आई । उन्हें 'काम' इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि वे इच्छा, इच्छुक, इच्छित एवं सुन्दर की पूर्ति करती हैं, कामदेव के शरीर की रक्षा करती हैं, एवं काम के शरीर को नष्ट भी करती हैं । इन्हीं समस्त कारणों से उन्हें 'काम' कहा जाता है ।

'कामकला' का ध्यान इस प्रकार किया जाता है कि तीन बिन्दु एवं हार्धकला देवी त्रिपुरसुन्दरी का शरीर है । त्रिपुरसुन्दरी के शरीर में तीन बिन्दु (इच्छा, ज्ञान, क्रिया; चन्द्र, अग्नि, सूर्य; रजस्, तमस्, सत्त्व; एवं ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु) स्थित हैं । 'योगिनीतन्त्र' में उनका इस प्रकार ध्यान करने का निर्देश दिया गया है - "कला के

ऊपर तीन बिन्दुओं की कल्पना करके उनसे, लाखों नवोदित सूर्यों के प्रकाश से प्रकाशित, एक षोडश वर्षीया के प्रकट होने की कल्पना करनी चाहिए । यह भी ध्यान करना चाहिए कि उनका मुकुट से कण्ठ तक का शरीरावयव ऊर्ध्व बिन्दु से, उनके स्तनद्वय एवं त्रिवली बिन्दुद्वय से एवं शेष शरीर (जननेन्द्रिय से पाद पर्यंत शेष भाग) 'काम' से उत्पन्न हो रहे हैं । इस प्रकार संपूर्ण शरीर के निर्मित हो जाने पर उसे समस्त आभूषणों एवं परिधानों से विभूषित रूप में स्थित शक्ति के रूप में ध्यान करके अपने शरीर को भी उस 'कामकला शक्ति से अभिन्न रूप में कल्पित करना चाहिए । 'श्री क्रम' में भी उनका ध्यान पूर्वोक्तवत् निर्देशित करके कहा गया है कि प्रथम बिन्दु उसका मुख है, शेष दो बिन्दु उसके स्तनद्वय है एवं 'हार्धकला' उसकी योनि है ।'

मूलाधार में त्रैपुरत्रिकोण 'कामकला' का स्थूलपक्ष है । 'मूलमन्त्रात्मिका' शब्द उनके सूक्ष्म शरीर को संकेतित करता है ।

'शिवसंहिता' में कहा गया है कि कुण्डलिनी देवी के अधिष्ठित होने के स्थान (योनि मण्डल) में बंधूक पुष्प की भाँति 'कामबीज' स्थित है । स्वर्ण के समान दृष्टिगोचर यह बीज सुषुम्णा नाड़ी से संश्लिष्ट है । यह बीज शरदकालीन चन्द्रमा के प्रकाश से मण्डित, तेजःस्वरूप, कोटिसूर्यवत् देदीप्यमान, कोटिचन्द्रवत् शीतल, कुण्डलिनी शक्ति के ऊपर जगमगाता हुआ, क्रिया शक्ति एवं विज्ञान शक्ति के साथ मिलकर देह में विचरण करता हुआ, कभी ऊर्ध्वगामी एवं कभी लिंग के सलिल में प्रवष्टि होता हुआ, मूलाधार की भीतरी कली में स्थित योनिमण्डल में निवास करता हुआ (यह कामबीज) तेज, सूर्य एवं चन्द्र इन तीनों के मिलने के कारण 'त्रिपुर भैरवी' कहलाता है ।

'षट्चक्र निरूपण' में कहा गया है कि वज्रानाड़ी के मुख में स्थित कर्णिका के मध्य में 'त्रैपुर त्रिकोण' है और उसके मध्य में 'कामबीज' एवं 'कंदर्प वायु' स्थित है ।

काम तत्त्व के विषय में तान्त्रिकों की धारणा यह है कि अकार रूप 'प्रकाश' के साथ हकार रूप विमर्श का (अग्नि के साथ सोम का) साम्यभाव ही 'काम' या 'रवि' है । यही शास्त्रों में 'अग्निषोमात्मक बिन्दु' कहा गया है । तान्त्रिक सामाम्नाय में कामतत्त्व को 'सूर्य' कहा गया है - 'कामाख्यो रविः' । इसी काम की एक कला है 'रवि' । इसकी दूसरी कला है 'चन्द्र' । 'कामकला' के ये ही तीन बिन्दु हैं । सृष्टि एक ही महाशक्ति के दो विरुद्ध स्वरूपों की एक महाक्रीड़ा है जो कि परस्पर विषम भाव ग्रहण करके परस्पर एक दूसरे के ऊपर क्रिया करने लगती है । इन दो शक्तियों में एक का नाम है 'अग्नि' एवं दूसरी का नाम है 'सोम' । 'अग्नि' तापमय, दुःखप्रद, मृत्युस्वरूप (क्योंकि काल अग्नि का ही एक रूप है) किन्तु प्रकाश रूप एवं संहारात्मक है । 'सोम' शीतल, सुखप्रद, अमृतस्वरूप, विभक्त को अविभक्त करके प्रकाशित करने वाला (जबकि अग्नि अविभक्त को विभक्त करके प्रकाशित करने वाला है) विसर्गस्वरूप एवं सृष्ट्यात्मक है । (अग्नि-क्रिया का नाम है 'संहार' जबकि सोम-क्रिया का नाम है 'सृष्टि') । अग्नि एवं सोम अपनी साम्यावस्था में निष्क्रिय रहते

हैं । अतः इस स्थिति में न तो सृष्टि होती है और न तो प्रलय । यही है नित्यात्मक स्थिति । इसी का नाम है 'रवि' 'सूर्य' या 'काम' । 'सूर्य' या 'कामतत्त्व' अग्नि एवं सोम की नित्यात्मक, समरस, अद्वय स्थिति है ।

'निखिलप्रपञ्चगर्भा विमर्शशक्ति के संसर्ग से अक्षरस्वरूप 'प्रकाश' बिन्दुरूप ग्रहण करता है - 'प्रकाश' विमर्श शक्ति में प्रविष्ट होता है । इसी बिन्दु का नाम है 'प्रकाश बिन्दु' (जो कि विमर्श शक्ति के गर्भ में स्थित रहता है) । तदुपरान्त विमर्श शक्ति भी प्रकाश बिन्दु में अनुप्रविष्ट होती हैं और परिणामतः गर्भस्थ बिन्दु फूलता है और उससे तेजोमय एवं बीजस्वरूप 'नाद' आविर्भूत होता है और इसी 'नाद' में समस्त तत्त्व सूक्ष्मात्मना निवास करते हैं । 'नाद' निर्गत होकर त्रिकोण का आकार ग्रहण करता है । यही 'अहं' संज्ञक बिन्दु नादात्मक प्रकाश विमर्श का कलेवर है । इसमें प्रकाश 'श्वेतबिन्दु' 'विमर्श', 'रक्तबिन्दु' एवं दोनों की पारस्परिक अनुप्रवेशात्मक क्षमता 'मिश्र बिन्दु' है । इसी साम्यभाव का नामान्तर है परमात्मा, 'रवि' या 'काम' । 'अग्नि' एवं 'सोम' इसी 'कामतत्त्व' की विशिष्ट कलाएँ हैं । वेद के 'सोऽकामयत' वाक्य में यह 'काम' पद सिसृक्षा का बोधक है । अतः सिसृक्षा की कामना ही 'काम' है । 'कामेश्वर कामेश्वरी' रूप आदि दम्पति की विश्वाभिव्यक्ति (सृजन) की कामना ही मूल 'काम तत्त्व' है ।

इस दर्शन के अनुसार 'सृष्टि' निष्क्रिय तत्त्व के वक्षस्थल पर क्रिया शक्ति की क्रीड़ा है । 'सृष्टि', परिवर्तनहीन, स्थिर एवं नित्य संवित् तत्त्व के भीतर परिवर्तन, गति, अस्थिरत्व, एवं विभिन्न रूपान्तरणों तथा नाम-रूपों की रचना का आनन्दात्मक अभिनय, 'कला-विलास' या आत्म प्रकाशन है । आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन एवं आत्मानन्द की 'एकोऽहं बहुस्याम' की कामना ही सृष्टि है । 'उसके' 'काम' (सोऽकामयत्) की अभिव्यक्ति ही यह सृष्टि है ।

परमात्म तत्त्व न तो नारी है और न तो नर । किन्तु विश्वाभिनय के उद्देश्य से वह माता-पिता के रूप में (कामेश्वरी-कामेश्वर के रूप में) प्रस्तुत होता है । पिता निष्क्रिय है किन्तु माता सक्रिय । एक ही शिव पति-पत्नी, माता-पिता, गुरु-शिष्य तथा अहं-इदं के युग्म के रूप में आविर्भूत हुआ । उसकी सिसृक्षा या 'काम' ही जगत् बन गया । 'काम' ही विश्व-सृष्टि का मूल कारण है । इस 'काम' से युक्त शिव एवं शक्ति 'कामेश्वर' एवं 'कामेश्वरी' कहलाए । संसार इन्हीं दो आद्य माता-पिता के सामरस्य का परिणाम है । 'बिन्दु' शिव है और तत्संलग्न त्रिकोण 'शक्ति' है । सम्पूर्ण 'त्रिकोण' शिव-शक्तिमय है क्योंकि इस त्रिकोण के केन्द्र में उसकी आत्मा बिन्दुरूप में स्थित है जो कि शिव है । दोनों मिलकर देवी के 'कामकला' वाले स्वरूप को बोधित करते हैं ।

'श्री यन्त्र' अपने केन्द्र में 'बिन्दु' से प्रारम्भ करके बाहर 'भूपुर' में समाप्त होने वाला वह नव योन्यात्मक महाचक्र है जिसमें पाँच एवं चार की संख्या में शिव एवं शक्ति के अपने-अपने चक्र अनुस्यूत हैं तथा जो त्रिपुरा सुन्दरी का आसन है—उसका

निजी यन्त्र है, पिण्ड एवं षट्त्रिंशदात्मक ब्रह्माण्ड एवं उसकी दिव्य शक्तियों का प्रतीक है तथा पिण्ड ब्रह्माण्डीय समस्त शक्तियों का मूल निलय हैं । यह अनन्त सृष्टि के महाविकास का रेखात्मक प्रतीक है । इसमें स्थित लीन 'दशार', 'त्रिकोण' एवं 'अष्टकोण' ५ चक्र 'शक्ति' के एवं 'बिन्दु', 'अष्टदल', 'षोडशक' एवं 'भूपुर' ४ चक्र 'शिव' के प्रतीक हैं । 'श्रीयंत्र' 'शिव चक्र' एवं 'शक्ति चक्र' के सामरस्य का बोधक है । भगवती ललिता या महात्रिपुरसुन्दरी का पञ्चदशाक्षरी मन्त्र भी इसी यन्त्र में निहित है । इसके तीन ककार एवं दो हकार 'शिव' के वाचक हैं तथा शेष अक्षर 'शक्ति' के वाचक हैं । ह्रींकार शिव एवं शक्ति दोनों के वाचक हैं । इस प्रकार उनका यह मन्त्र भी शिव-शक्ति के सामरस्य का बोधक है । पञ्चदशी मन्त्र के दो प्रकार हैं - १. 'हादि' एवं २. 'कादि' ॥ पुण्यानन्द एवं 'कामकला विलास' दोनों का सम्बंध 'हादिमत' से है । 'हादि मत' में प्रथम कूट में ५ स्वर एवं ७ व्यञ्जन हैं । द्वितीय कूट में ६ स्वर एवं ८ व्यंजन है । तृतीय कूट में ४ स्वर एवं ६ व्यञ्जन है । यही लोपामुद्रा हादि विद्या है । श्री चक्र का नवमावरण 'बिन्दु' है जो कि समस्त विश्व के विकास का मूल केन्द्र है । परब्रह्मस्वरूपिणी त्रिपुरा देवी का यही प्रथम सगुण स्वरूप है । यही 'बिन्दु' भगवती त्रिपुरा की इच्छाशक्ति से उच्छून होकर चने के समान अंकुरित होते हुए 'त्रिकोण' का रूप ग्रहण करता है । त्रिकोण के तीनों बिन्दु 'पश्यन्ती' मध्यमा' एवं वैखरी के मूल कारण हैं । 'परावाक्' बिन्दुस्वरूप है । 'बिन्दु' एवं 'त्रिकोण' के तीनों बिन्दुओं से 'कामकला' का आविर्भाव होता है । इसके आगे 'वामा' 'ज्येष्ठा' 'रौद्री' 'अम्बिका' एवं 'पराशक्ति' के ५ त्रिकोण हैं जो कि शक्त्यात्मक और अधोमुखी हैं । इच्छा, ज्ञान, क्रिया एवं शान्ता ये ४ त्रिकोण शिवात्मक हैं । इन्हीं ९ त्रिकोणों से 'श्री चक्र' का निर्माण होता है जिनके नाम निम्नांकित हैं -

		श्री यन्त्र के नाम -	यौगिक चक्र -	प्रतीक
चान्द्र चक्र	१.	त्रैलोक्य मोहन = भूपुर	सहस्रार	षोडश दल पद्म के १६ दल चन्द्र की १६ कला
	२.	सर्वाशापरिपूरक = षोडशदलपद्म		
	३.	सर्वसंक्षोभण = अष्टदलपद्म	आज्ञा (शिवस्थान)	
५ शक्ति चक्र	४.	सर्वसौभाग्यदायक = चतुर्दशार	विशुद्ध चक्र	१४ भुवन
	५.	सर्वार्थसाधक = बहिर्दशार	अनाहत चक्र	१० विभूति
	६.	सर्वरक्षाकर = अन्तर्दशार	मणिपूरक चक्र	अग्नि की १० कला
	७.	सर्वरोगहर = अष्टार	स्वाधिष्ठान चक्र	८ प्रकार की अग्नि
	८.	सर्वसिद्धिप्रद = त्रिकोण	मूलाधार चक्र	अग्नि स्थान
	९.	सर्वानन्दमय = बिन्दु		अग्नि

'संहार क्रम' में 'शक्ति त्रिकोण' ऊर्ध्वमुख होते हैं और 'शिव त्रिकोण' अधोमुख होते है । ५ 'शक्ति त्रिकोण' हैं और ४ 'शिव त्रिकोण' है । श्री चक्र ब्रह्माण्डाकार है - 'चक्र त्रिपुरसुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि'' (भै० या० तन्त्र) ॥

कौलमार्गानुयायी त्रिकोणान्तर्गत बिन्दु को भगवती का निवास स्थान मानते हैं । कौल, मूलाधार चक्र में जो योनि स्थान (त्रिकोण) है वहीं कुण्डलिनी शक्ति का स्थान मानकर मूलाधार में ही भगवती की पूजा करते हैं और उसे ही 'कुल गृह' मानते हैं - 'त्रिकोणां ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे ॥'' किन्तु समयमार्गी चतुष्कोण (जो कि बैन्दव स्थान है, अमृत के सागर में स्थित है, दिव्यमणियों से निर्मित है और जहाँ 'समय' 'समया' के साथ सदा बिहार करते हैं) के मध्य स्थित 'बिन्दु' को भगवती का स्थान मानते हैं । 'चतुष्कोण' सहस्रार है और उसके मध्य षोडशदल पद्म चन्द्र मण्डल है सुधा-सागर है । इसी 'सुधा सागर' के मध्य महामाया शक्ति कुण्डलिनी या त्रिपुरभैरवी का स्थान है । ('सुभगोदय') ॥

मन्त्र, यन्त्र, तिथि, नित्या, तत्त्व, आदि सभी में सामरस्य है -

मन्त्र	तिथि	नित्या	तत्त्व	खण्ड	यन्त्र
क	१	कामेश्वरी	शिव	अग्नि खण्ड	त्रिकोण
ए	२	भगमालिनी	शक्ति		अष्टार
ई	३	नित्यक्लिन्ना	माया		
ल	४	भेरुण्डा	शुद्धविद्या	अग्नि खण्ड	अन्तर्दशार
ह्रीं	५	वह्निवासिनी	जल		
ह	६	महावज्रेश्वरी	तेज		
स	७	शिवदूती	वायु		चतुर्दशार
क	८	त्वरिता	मन	सौर खण्ड	
ह	९	कुलसुन्दरी	पृथ्वी		बहिर्दशार
ल	१०	नित्या	आकाश		
ह्रीं	११	नीलपताका	विद्या		
स	१२	विजया	महेश्वर	चन्द्र खण्ड	
क	१३	सर्वमंगला	परतत्त्व		शिव के ४
ल	१४	ज्वालामालिनी	आत्मा		चक्र
ह्रीं	१५	चित्रा या चिद्रूपा	सदाशिव		
श्रीं	१६	महात्रिपुरसुन्दरी	सादाख्य		

इसी प्रकार कूट, कुण्डलिनी, चक्र, मन्त्र, यन्त्र एवं नाद में भी सामरस्य है -

	मन्त्र के भाग	यन्त्र के भाग	षट् चक्र	कुण्डलिनी	नाद
शक्तिकूट	सोम - 'शक्ति कूट' (देवी के कटि के नीचे के भाग)	शिव के ४ चक्र	आज्ञा	सोम	नाद
			विशुद्ध	कुण्डलिनी	नादान्त
सोमखण्ड	समस्त स्वर				वैखरी

कामकूट	सूर्य - 'कामकूट' (देवी के कण्ठ से कटि तक का भाग)	चतुर्दशार बहिर्दशार	अनाहत मणिपूर	सूर्य कुण्ड लिनी	मध्यमा
सूर्यखण्ड	(मन्त्र का सूर्यखण्ड = क से म तक के वर्णों का द्योतक)	अन्तर्दशार	स्वाधि		
	अग्नि = 'वाग्भवकूट'	अष्टार	ष्ठान		
वाग्भवकूट	भगवती का मुख	त्रिकोण	चक्र	अग्नि कुण्ड लिनी	स्वाधिष्ठान में पश्यन्ती वाक्
	मन्त्र का अग्निखण्ड = य, र, ल, व, श, ष, स का द्योतक ।	(अन्तर्दशार की १० अग्नि कलाऐं सूर्य के अंतर्गत हैं ।)	मूला धार चक्र ।		मूलाधार में परा वाक्
	(मन्त्र का बैन्दवखण्ड क्ष का द्योतक है ।)				
	(इस प्रकार सभी मातृकाएँ पञ्चदशी मन्त्र के ही रूप हैं ।)				

('सुभगोदय' के अनुसार ।)

कुण्डलिनी सहस्रार में परमशिव से मिलकर बिन्दुरूपा हो जाती है । इसीलिए सहस्रार को 'बैन्दवगृह' कहते हैं । शक्ति या यह रूप 'परमबिन्दु' या 'कारण बिन्दु' है। समस्त विश्व के मूल कारण इस बिन्दु में शक्ति-शिव अभिन्नतया रहते हैं । यह चणकवत् अवस्था है : चना कारण बिन्दु है जिसमें शिव - शक्ति दो दालें हैं । निष्क्रिय शिव में सृष्टि-स्फुरण होता है । उसमें पहले अहं का स्फुरण होता है । यही 'चने का फूलना' है और 'कारण बिन्दु' है । फिर उसमें 'अहं' एवं 'इदं' का उदय होता है और इनके मिथुन से नाद-बिन्दु आविर्भूत होते हैं । शिव-शक्ति ही 'श्वेत'-'रक्त' बिन्दु हैं ('कार्य बिन्दु' एवं 'बीज' हैं) । सहस्रार से उत्पन्न होकर यह 'कारण बिन्दु' 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान' के १० दल बनाता है । दशधा बिन्दु से 'मणिपूर', 'अनाहत', 'विशुद्ध' 'आज्ञाचक्र' के १०, १२, १६ एवं २ दल बनते हैं। कौल मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान को ही कारणास्थान मानते हैं अतः वहीं देवी की उपासना करते हैं । कौलों के अनुसार मूलाधार ही बिन्दुस्थान है : बैन्दवगृह है । सहस्रार में स्थित 'कारणबिन्दु' दशधा होकर सभी चक्रों के दलों के रूप में प्रकट होता है ।

बिन्दु - समस्त सृष्टि का मूल 'बिन्दू' है । तन्त्रशास्त्र, योगशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, नाथ सम्प्रदाय, सिद्ध-साहित्य, मध्ययुगीन संत-साहित्य एवं तन्त्र की हिन्दू, बौद्ध

एवं जैन समस्त शाखाओं में 'नाद' एवं 'बिन्दु' का बार-बार उल्लेख मिलता है । यह बिन्दु है क्या ? 'काम कला विलास' एवं अन्य श्रीसम्प्रदाय के ग्रन्थों में 'बिन्दु' ही सर्वस्व है क्योंकि बिन्दु का विस्तार ही 'श्रीचक्र' है और श्रीचक्र ही अनन्त शक्ति सम्पन्न विराट् विश्व-प्रपञ्च का संक्षिप्त रूप है ।

भेदवादी आचार्य - (बिन्दु जड़ है ।) :

जिस प्रकार बौद्ध 'बुद्ध' 'धर्म' एवं 'संघ' रत्नत्रय स्वीकार करते हैं उसी प्रकार भेदवादी तान्त्रिक आचार्यगण १. शिव २. शक्ति एवं ३. बिन्दु - ये तीन रत्न मानते हैं ।

भेदवादी आचार्य ३ तत्त्वों को इस प्रकार भी प्रस्तुत करते हैं—१. पशुपति २. पशु ३. पाश । पाश के ५ भेद हैं - १. आणव २. तिरोधायक शक्ति ३. 'बिन्दु' ४. माया ५. कर्म ।

'बिन्दु' क्या है ? शुद्ध शब्द एवं तत्सम तत्त्वों का उपादान ही 'बिन्दु' है— 'शुद्धस्य शब्दस्य तादृशानां च तत्त्वानामुपादानं बिन्दुः ।' शुद्धतत्त्वमयकार्यात्मक शुद्ध जगत् का उपादान तत्त्व ही 'बिन्दु' है । 'बिन्दु' का ही दूसरा नाम 'महामाया' है । 'बिन्दु' जड़ है । यही 'बिन्दु' क्षुब्ध होकर शुद्ध देह, इन्द्रिय, भोग, भुवन (शुद्ध अध्वा) को एवं शब्द को उत्पन्न करता है । 'शब्द' की चार वृत्तियाँ हैं - १. सूक्ष्मा २. पश्यन्ती ३. मध्यमा ४. वैखरी 'अत्र शब्द वृत्तिश्चतुर्धा सूक्ष्मा पश्यन्ती, मध्यमा वैखरी चेति ।'[१]

इसमें १. ज्ञानैकाश्रया अर्थसामान्यप्रकाशिका वाणी 'सूक्ष्मा' है । २. मयूराण्ड रस वदविभक्तवर्णार्थविशेषबोधनाक्षमा वाणी 'पश्यन्ती' है । ३. बुध्युपारूढ़वर्णा तत्क्रम विशेषोपेता प्राणवृत्यगोचरीभूता वाणी 'मध्यमा' है । ४. प्राणवृत्याऽभिव्यक्ता श्रोत्रग्राह्यार्थ विशेष बोधनक्षमा वाणी 'वैखरी' है ।[२] ये वाणियाँ शुद्धाध्वा में सूक्ष्म, मिश्राध्वा में स्थूल एवं अशुद्धाध्वा मे स्थूलतर हैं ।[३] 'शब्द' - सूक्ष्मनाद, अक्षर बिन्दु एवं वर्णभेद के नाम से भी उल्लिखित किया गया है । इनका स्वरूप निम्नानुसार है -

'स्थूलं शब्द इति प्रोक्तं सूक्ष्मं चिन्तामयं भवेत् ।
चिन्तया रहितं यत्तु तत्परं परिकीर्तितम् ॥'[४]

बिन्दु जड़ होने पर भी शुद्ध है । पाञ्चरात्रागम (भागवत सम्प्रदाय) या वैष्णवागम में वर्णित 'विशुद्धसत्त्व' भी इसी 'बिन्दु' के समतुल्य है ।[५]

---

१. शैव परिभाषा (योगीन्द्र ज्ञान शिवाचार्य) २. शैव परिभाषा
३. शैव परिभाषा । (पौ० बिन्दु. प. श्लोक १९-३०)
४. कालोत्तर तन्त्र ।
५. नाद - बिन्दु - सृजनोन्मुखी शक्ति के सृजन - प्रवाह की प्रारंभिक अवस्थायें ही नाद- बिन्दु हैं ।

'बिन्दु' एवं परमेश्वर के साथ सम्बंध - प्रथम मत (क) एक मत है कि शिव की दो शक्तियाँ हैं - १. समवायिनी शक्ति २. परिग्रहाशक्ति । 'समवायिनी शक्ति' है - चिद्रूपा, अपरिगामिनी, निर्विकारा, स्वाभाविकी । यही शक्ति तत्त्व है । यह शिव में नित्य निर्विकारा, स्वाभाविकी । यही शक्ति तत्त्व है । यह शिव में नित्य समवेत रहती है । शिव-शक्ति दोनों का तादात्म्य सम्बंध है ।

परिग्रह शक्ति अचेतन और परिणामशीला है । इसी का नाम है 'बिन्दु' । 'बिन्दु' के दो रूप हैं १. 'शुद्ध बिन्दु' (बिन्दु, या महामाया) २. 'अशुद्ध बिन्दु' : माया । सामान्यतः इसी शुद्ध बिन्दु को ही 'बिन्दु' कहा जाता है । शुद्धाशुद्ध दोनों बिन्दु नित्य हैं । मायातत्त्व - 'अशुद्ध अध्वा' । महामाया - 'शुद्धाध्वा' ॥ मायोपरि तत्त्व (सांख्य के तत्त्व एवं कलादि कञ्चुक के ऊपर के तत्त्व) 'शुद्ध अध्वा' के अंतर्गत हैं । 'स्थूल बिन्दु' = शब्द, सूक्ष्म चिन्तामय । चिन्तनातीत = 'पर बिन्दु' ॥

द्वितीय मत - 'बिन्दु' ही शुद्धाशुद्ध दोनों अध्वाओं का उपादान है । इस मत में 'माया' नित्य नहीं है कार्यरूपा है । 'बिन्दु' (महामाया) की ३ अवस्थायें हैं - १. परा, २. सूक्ष्मा और ३. स्थूला । 'बिन्दु' की परावस्था ही 'महामाया' 'परामाया' या 'कुण्डलिनी' है । यह परम कारण एवं नित्य भी हैं । 'परा बिन्दु' - कार्यरूपः अनित्य = १. सूक्ष्म रूप, २. स्थूल रूप । महामाया का विक्षोभ - शुद्ध धाम ; उसमें रहने वाले मन्त्र (विद्या), मन्त्रेश्वर (विद्येश्वर) एवं उनके शरीर तथा इन्द्रियाँ । शुद्ध लोकों के देहादि सभी कुछ 'महामाया' के कार्य हैं । 'माया' = कलादि तत्त्व समूह का अविभक्त स्वरूप; महामाया की सूक्ष्मावस्था का नाम । माया - समस्त अशुद्ध अध्वा । 'प्रकृति' = महामाया की स्थूल प्रकृति ।

'बिन्दु' शिव में समवेत नहीं है । इस मतानुसार ''बिन्दु'' परिणामी एवं जड़ है । इसका चिदात्मक परमेश्वर के साथ कोई सम्बंध नहीं है । श्री कण्ठाचार्य का कथन है कि 'बिन्दु' को शिव के साथ एकीभूत मानने पर तो शिव भी जड़ हो जायेंगें ।

बिन्दु समन्वयवादी मत - भेदवादी तान्त्रिकों में कुछ आचार्य बिन्दुसमन्वयवादी थे । उनका मत था कि शिव की समवायिनी शाक्ति द्वयात्मिका है । (क) दृक्शक्तिः ज्ञान शक्ति (ख) क्रिया शक्तिः कुण्डलिनी । क्रिया शक्ति का नाम ही है 'बिन्दु' । 'बिन्दु' माया से भिन्न है । 'माया' शिव मे समवेत नहीं है । इस प्रकार ये तान्त्रिक मानते हैं कि 'बिन्दु' (क्रिया शक्ति) शिव की समवायिनी शक्ति है । बिन्दु का क्षोभ शुद्ध जगत । माया - अशुद्ध जगत । स्वसमवेत शक्ति द्वारा परमेश्वर बिन्दु का स्पर्श करता है और उससे होता है बिन्दु में क्षोभ । क्षोभ ही जन्म देता है वैषम्य को ।

त्रिक् दर्शन के अनुसार शिव 'पञ्चकृत्यकारी' हैं - सृष्टि - पालन-संहार - निग्रह - अनुग्रह के विधायक हैं । 'बिन्दु' की ५ कलायें हैं - बिन्दु की ही पृथक् - पृथक्

अवस्थायें हैं - निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता शान्त्यतीत कला ही 'परबिन्दु' (समस्त कलाओ की कारणावस्था या लयावस्था) है ।

शैवशाक्त तन्त्रों में 'नाद', 'बिन्दु' का प्रयोग अनेक अर्थों में मिलता है । मन्त्र पक्ष में यह 'अहं' एवं 'इदं' का प्रतीक है ।

'शारदातिलक' में कहा गया है कि 'शक्ति' से 'नाद' एवं नाद से 'बिन्दु' का आविर्भाव हुआ : 'आसीच्छक्तिस्वतो नादो, नादात् बिन्दु समुद्भवः ॥'' तान्त्रिक आचार्य, कहते हैं कि शिव-शक्ति नाम के दो तत्त्व हैं । शिव 'विमर्श' के रूप में 'शक्ति' में प्रवेश करते है और बाद में 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेते हैं । बिन्दु का प्रथम विकास ही है 'नाद' । कुछ भेदवादी तान्त्रिक आचार्य शिव-शक्ति को समवाय रूप से परिव्याप्त एक तत्त्व मानते हैं एवं 'बिंदु' को दूसरा तत्त्व ।

बौद्ध तन्त्रों में नाद - बिन्दु प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं । कहीं कहीं 'बिन्दु' हठयौगिक ज्योति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[१] । शैव-शाक्त तन्त्रों में नाद-बिन्दु शिव-शक्ति के पर्यायवाची भी माने गए हैं[२] । बौद्ध तन्त्रों में इन्हें 'प्रज्ञा' 'उपाय' का वाचक भी कहा गया है । हठयौगिक ग्रन्थों में प्रयुक्त -'रसना', 'सूर्य', 'रवि', 'प्राण', 'शमन', 'काली', 'यमुना', 'शक्ति', 'रज', पुरुष, नाद और व्यंजन आदि शब्द कभी- कभी 'बिन्दु' के अर्थ में एवं 'ललना', 'चन्द्रा', 'शशि', 'अपानु', 'धमन', 'अली', 'गंगा', शुक्रा, तमस, अभाव, प्रकृति, ग्राहक एवं स्वर शब्दों का प्रयोग 'नाद' के अर्थ में भी मिलता है ।[३] इन शब्दों के अर्थों का व्यापक विकास मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि योगियों की रचनाओं में मिलता है ।

'कौलज्ञाननिर्णय' में 'बिन्दु' को महालिंग की शक्ति कहा गया है । अन्य स्थल पर इसे शिव की सृजन शक्ति कहा गया है । इसमें 'बिन्दु' से ही 'नाद' की उत्पत्ति बताई गई है । 'विज्ञानभैरव' में सदाशिव को नादमय कहा गया है । 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' में सदाशिव (नाद) को वह प्रथम तत्त्व कहा गया है जिससे सत् का विमर्श होता है क्योंकि शिव-शक्ति दोनों एक ही तत्त्व हैं । 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा' में इसे 'सादाख्य तत्त्व' कहा गया है - १. स नादो देवदेवेशः प्रोक्तश्च सदाशिवः' (वि० भै०) 'सादाख्यं तत्त्वमादितः ॥'' (ई० प्र०) 'इच्छाप्रधानं सदाशिवतत्त्वम्' (तन्त्रालोक की टीका) सृष्टि के आदि में शिव के अदृष्टविग्रह से ध्वनिरूप 'स्फोट' उत्पन्न होकर जब अखिल जगत् को ध्वनि से आपूरित करते हुए अतिवेग से प्रसृत होता है तब उसे 'नाद' कहा जाता है । जो नाद है वही 'सदाशिव' है ।

'ध्वनिरूपो यदा स्फोटस्त्वदृष्टाच्छिवविग्रहात् ।

---

१. इंट्रोडक्शन टू तान्त्रिक बुद्धिज्म (पृ० ११९)
२. प्रिंसिपल्स आफ तन्त्र : आर्थर एवेलान (पृ० ५८३)
३. इंट्रोडक्शन टू तान्त्रिक बुद्धिज्म (पृ० ११८ - ११९)

प्रसरत्यतिवेगेन ध्वनिना पूरयन् जगत् ।
स नादो देवदेवेशः प्रोक्तश्चैव सदाशिवः ॥'[१]

'बिन्दु' से जगत की उत्पत्ति का उल्लेख इस प्रकार किया गया है -

जायतेऽध्वायतः शुद्धो वर्तते यत्र लीयते ।
स बिन्दुः परनादाख्यः नादबिन्द्वर्णकारणाम् ॥[२]

'शारदातिलक' : 'सच्चिदानन्द' सकलशिव → शक्ति तत्त्व → नाद (सादाख्य तत्त्व) → बिन्दु (ईश्वर तत्त्व) । 'नाद' एवं 'बिन्दु' दोनों शक्ति के ही रूपान्तर हैं । **'नाद'** का सामान्य अर्थ है ध्वनि । यह व्यक्त शब्दों का कारण शरीर है । **'बिन्दु'** = नाद ही घनत्व को प्राप्त करके बिन्दु के रूप में परिवर्तित हो जाता है - 'नाद एव घनीभूय क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्' **'परबिन्दु'** शक्ति की घनावस्था है । यह चिद्घन है । 'पर बिन्दु' (परा शक्ति समवेत बिन्दु) अपने को तीन रूपों में विभक्त करता हैं - १. बिन्दु (कार्य बिन्दु = कारण या पर बिन्दु से पृथक् करने हेतु इसे कार्य 'बिन्दु' कहा गया ।) २. 'नाद' ३. 'बीज' । 'बिन्दु' शिव का स्वभाव या प्रकृति है तथा 'बीज' शक्ति की प्रकृति या स्वभाव है । 'नाद' शिव शक्ति है : शिव शक्ति का समवाय है । योग है । 'त्रिबिन्दु' **'पर'**, **'सूक्ष्म'** एवं **'स्थूल'** के भेद से त्रिप्रकारात्मक है । 'बिन्दु' जो कि शिव एवं शक्ति दोनों है, अपने को तीन भागों में विभक्त करता है (क) 'बिन्दु' (ख) 'नाद' एवं (ग) 'बीज' । 'बिन्दु' शिवात्मक है, 'बीज' शक्ति है और 'नाद' इन दोनों के अंतर्संबंध का नाम है ।'

'परशक्तिमयः साक्षात् त्रिद्वासौ भिद्यते पुनः ॥
बिन्दुर्नादो बीजम इति तस्य भेदः समीरितः ।
बिन्दुः शिवात्मको बीजम शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः ।
समवायः समाख्यातः सर्वागम विशारदैः ॥'

आगम में कहा गया है कि नित्य शिव 'निर्गुण' एवं 'सगुण' दोनों हैं । निर्गुण शिव से तीन बिन्दुओं की उत्पत्ति होती है - (१) 'ब्रह्म बिन्दु' (२) 'विष्णु बिन्दु' (३) 'रुद्र बिन्दु' ।[३]

'ललिता सहस्रनाम' की टीका में कहा गया है कि **'कारण बिन्दु'** से **'कार्य बिन्दु'** उत्पन्न होता है और उसके बाद **'नाद'** एवं उसके बाद **'बीज'** उत्पन्न होते हैं । इन्हें ही 'पर' 'सूक्ष्म' एवं 'स्थूल' कहते हैं । अभेदरूपा शक्ति से 'कारण बिन्दु' का जन्म होता है । ये तीन बिन्दु, इच्छा - ज्ञान - क्रिया, (शक्तित्रय), सतोगुण - रजोगुण - तमोगुण (गुणत्रय), वामा - ज्येष्ठा - रौद्री एवं तीन देवता - ब्रह्मा, विष्णु - रुद्र - आदि शक्तियों के व्यापारों को इंगित करते हैं ।

---

१. नेत्रतन्त्र (भाग २ । २२ । ६२-६३)
२. रत्नत्रय का० २२१
३. राघव भट्ट की टीका (शारदातिलक, श्लोक ८)

'प्रयोगसार' एवं 'शारदातिलक' नामक ग्रन्थों में कहा गया है कि 'बिन्दु' से रौद्री, 'नाद' से ज्येष्ठा एवं 'बीज' से वामा का विकास हुआ । इनसे रुद्र, विष्णु एवं ब्रह्मा का जन्म हुआ । ये ज्ञान-क्रिया-इच्छा एवं चन्द्रमा-सूर्य अग्नि के समस्वभाव हैं । तीन बिन्दु निम्न हैं - १. 'रवि' २. 'चन्द्र' ३. 'अग्नि' । 'सूर्य' में अग्नि एवं चन्द्रमा स्थित हैं । इसे ही 'मिश्र बिन्दु' कहते हैं । इसे परमशिव से पृथक् नहीं कहा जा सकता । यही 'कामकला' है । 'काम कला' 'कामयुक्ता कला' = 'कामकला' । 'कला' - सिसृक्षा । महाबिन्दु = परमशिव = मिश्रबिन्दु = रवि कामकला (रवि परमशिवाभिन्ना मिश्रबिन्दुरूपा कामकला') 'कामकला' एक त्रिकोण है - बिन्दुत्रय से निर्मित पारमात्मिकी इच्छा का त्रिकोण है । 'कामकला' समस्त मन्त्रों का मूल है । **'चन्द्रमा'** शिवबिन्दु है, सित बिन्दु है (श्वेत बिन्दु है) ॥ **'अग्नि'** शक्ति बिन्दु है - शोण बिन्दु है । **'सूर्य'** - उक्त दोनों का मिश्रण है । अग्नि, चन्द्र एवं सूर्य ही 'इच्छा' 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' है । शारीरिक स्तर पर तो 'श्वेत बिन्दु' पुरुष का शुक्र एवं 'रक्तबिन्दु' नारी का रज है । 'महाबिन्दु' प्रकृति के व्यक्त होने के पूर्व की सत्ता है । कभी-कभी 'मिश्रबिन्दु' को शक्ति तत्त्व भी कहा जाता है क्योंकि उस समय शक्ति का प्राधान्य दिखाना होता है । कभी इसे (शिव-प्राधान्य प्रदर्शनार्थ) शिवतत्त्व भी कहा जाता है । यह यामल रूप है क्योंकि शिव-शक्ति सदा अभिन्न रूप में रहते हैं । शिव शक्ति मैथुन (एकता) → आनन्द (नाद) → 'महाबिन्दु' त्रिबिन्दु = 'कामकला' [१] ।

ग्रन्थकार पुण्यानन्द नाथ ने इस रचना में यन्त्र, मन्त्र, देवता आदि का विवेचन करते हुए मूलतः यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि जब तक साधक इन उपर्युक्त तत्त्वों के साथ तादात्म्य स्थापित नहीं करता तब तक साधना का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता । अतः साधना का लक्ष्य है - चक्र, शरीर, देवता, गुरु, यन्त्र एवं मन्त्र के साथ तद्रूपता या ज्ञाता (होता) ज्ञान (अर्घ्य) एवं ज्ञेय (हविष्य) में अभिन्नता की अनुभूति । श्री चक्र की पूजा का भी यही लक्ष्य है -

'ज्ञाता स्वात्मा भवेद् ज्ञानम् अर्घ्यं ज्ञेयं हविः स्थितम् ।
श्रीचक्रपूजनं तेषाम् एकीकरणम् इतीरितम् ॥'

इसीलिए कहा गया है कि 'श्रीचक्र' साधक का शरीर है और श्रीचक्र की भाँति उसके शरीर में भी नौ चक्र एवं सारे देवी देवता स्थित हैं 'नव चक्रमयो देहः'

भगवती ललिता देवी के तीन रूप हैं १. स्थूल, २. सूक्ष्म एवं ३. पर । इसी प्रकार उनकी उपासना भी त्रिविध है - कायिक, वाचिक, मानस (भावनायोग) । 'अन्तर्याग' एवं 'बहिर्याग' में अन्तर्याग ही अधिक प्रशस्त है । श्रीललिता का विमर्श रक्त वर्ण है । कहा गया है कि अपनी आत्मा ही ललिता हैं तथा उनका शरीर यह ब्रह्माण्ड है । पञ्चदशी मन्त्र उनका सूक्ष्म शरीर है तथा श्रीयन्त्र उनका आसन है ।

श्रीचक्र में स्थित ' बिन्दु' विश्व विकास का मूल है । 'महाबिन्दु' ही पर तत्त्व

---

१. दि सर्पेण्ट पावर (सर जान वुडरफ)

का प्रारंभिक रूप है । यहाँ परमशिव (निर्गुण ब्रह्म) विमर्श रूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित हो रहा है । प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्ब जब चित्त भित्ति पर पड़ता है तब 'महाबिन्दु' का आविर्भाव होता है ।

'अहं' प्रकाश एवं विमर्श की एकाकारावस्था, अ से लेकर ह पर्यन्त संपूर्ण वर्णमाला एवं समस्त जगत का प्रतीक है ।

उपर्युक्त 'महाबिन्दु' में जब विमर्श शक्ति प्रविष्ट होती है तभी वह अंकुरायमाण चने के समान फूलता है और उससे नादोत्पत्ति होती है । 'महाबिन्दु' से निकलकर यह शक्ति सिंघाड़े के समान त्रिकोण रूप ग्रहण करती है । इसी महा बिन्दु द्वारा सोम, सूर्य, अग्नि; कामगिरि, पूर्णगिरि, उड्डीयान पीठ, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शक्तियाँ, स्वयंभू, बाण एवं इतर लिंग इत्यादि आविर्भूत हुए हैं ।

पञ्च तत्त्वों में क्रमशः १, २, ३, ४, ५, गुण हैं जो कि संख्या मे १५ होते हैं । यही पञ्चदशाक्षरी मन्त्र में भी १५ अक्षर हैं । तिथियाँ भी १५ हैं । सभी में सामरस्य है ।

'परावाक्' जो कि नाद के रूप में मूलाधार में सर्वप्रथम अवतरित होती है नाभि में पहुँचकर 'पश्यन्ती', हृदय में 'मध्यमा' एवं कण्ठ में 'वैखरी' बनकर व्यक्त होती है । श्रीचक्र इसका स्थूलरूप है । 'परावाक्' बिन्दु स्वरूपा है ।

'अनाहत चक्र' में स्थित 'मध्यमा वाक्' के दो रूप हैं - १. योगिगम्य रूप - ९ नादः चिणि, चिंचिणी, घण्टा, शंख वीणा, वेणु, भेरी, मृदंग, एवं मेघ । (सूक्ष्मरूप) २. स्थूल रूप - नववर्ग : अ, लृ, क, च, ट, त, प, य, श । 'सूक्ष्मा मध्यमा' से ही 'स्थूला मध्यमा' का आविर्भाव होता है । इन समस्त वर्णों की भूतलिपि है ।

'बिन्दु' के विकास से जिस त्रिकोण एवं उसके विकास से 'अष्टकोण' का विकास हुआ उस अष्टकोण का प्रसार श, ष, स, प, फ, ब, भ एवं म के रूप में हुआ । ये तीनों चक्र बिन्दु स्थिता शक्ति के प्रकाश से आलोकित हैं और तवर्ग - ट वर्गमय 'अन्तर्दशार' तथा कवर्ग - चवर्गमय, बहिर्दशार चक्रों में परिणत हो जाते हैं । 'बिन्दु', 'त्रिकोण', 'अष्टकोण', 'अन्तर्दशार' एवं 'बहिर्दशार' का विकास 'चतुर्दशार' हे । 'चतुर्दशार' के बाद आने वाला 'अष्टदल कमल' क, च, ट, त, प, य, श वर्गों से युक्त है । 'षोडश दल' १६ स्वरों से युक्त हैं । श्रीचक्र के वृत्तत्रय तीन बिन्दुओं (रक्त, शुक्ल, मिश्र) के तेज हैं और भगवती के नेत्रत्रय हैं । रक्त बिन्दु 'अग्नि;, श्वेत बिन्दु 'सोम' एवं मिश्रबिन्दु 'सूर्य' से युक्त है । भूपुर में आदि कादित्रिखण्डा मातृकाएँ एवं पश्यन्ती मध्यमा एवं वैखरी वाणियाँ हैं ।

'परावाक्' दो प्रकार से विकसित हुआ है—१. 'पद विक्षेप' एवं २. 'क्रमोदय।' 'हात्रिपुरसुन्दरी के पदों से फैली करोड़ों रश्मियों द्वारा ब्रह्माण्डों की रचना ही 'पद विक्षेप' जाता है । 'क्रमोदय' द्विविधात्मक है । दिव्य, सिद्ध, मानव आदि गुरुमण्डल एवं चरणों में स्थित समस्त शक्तियाँ भगवती के पदयुगल का ही प्रसार है ।

भगवती की 'एकोऽहं बहुस्याम' की कामना ही उन्हें 'श्रीयन्त्र' के रूप में परिणत कर देती है । आवरण शक्तियाँ उनके शरीरांगों की परिणतियाँ हैं । भगवती के हाँथों के आयुध अंकुश, धनुष, बाण एवं पाश हैं । इनमें 'अंकुश' ज्ञान शक्ति का, 'धनुष-बाण' क्रिया शक्ति या तन्मात्रा एवं मन का, तथा 'पाश' स्नेह का प्रतीक है । चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि ही उनके तीन नेत्र हैं ।

यह आदि दम्पति बिन्दुत्रय में तीन रूप ग्रहण करता है - मित्रेशनाथ - कामेश्वरी, उड्डीशनाथ - वज्रेश्वरी, षष्ठीशनाथ - भगमालिनी; सत - रज - तम (गुणत्रय), कामगिरि - उड्डीयान - पूर्णगिरि (पीठत्रय); दिव्य-सिद्ध-मानव (ओघ-त्रय) आदि के त्रिक । त्रिकां का कारण 'त्रिबिन्दु' है ।

'अष्टार चक्र' त्रिकोण का ही परिणमन है । यह सांध्य अरुणिमा से आरक्त है और वशिनी प्रभृति अष्ट शक्तियाँ, जो यहाँ की अधिष्ठात्री हैं, वाणी की अधिष्ठात्री है । वे सूक्ष्म, चिन्मय एवं सर्वरोगहरा शक्तियाँ हैं । इसीलिए इस चक्र का नाम है 'सर्वरोग हर चक्र' । 'अष्टार' से संस्पृष्ट 'अन्तर्दशार' चक्र है । यह शारद चन्द्रमा के समान श्वेत है । यह दशों इन्द्रियों की विषय वृत्तियों से युक्त है । इसमें बिजली के प्रकाश के समान प्रकाशित सर्वज्ञा आदि शक्तियाँ निवास करती है । इन्हीं की कृपा से ऐन्द्रिय विषयों पर नियंत्रण संभव है और साधक रक्षित रह सकता है । इसीलिए इस चक्र का नाम है - 'सर्वरक्षाकर' । इससे संलग्न चक्र है - 'बहिर्दशार' । यह स्फटिकवत् शुभ्र, निर्मल एवं कान्तिमान है ।

इसीलिए इसे 'सर्वसिद्धिप्रद' कहा गया है । इसके आगे 'चतुर्दशार' आता है । इसमें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, एवं १० इन्द्रियाँ अर्थात् १४ शक्तियाँ निवास करती हैं और संध्यावत् आरक्त है । ये भगवती का अंतःकरण हैं । इसे 'सर्वसौभाग्यदायक चक्र' कहते हैं । 'अष्टदल चक्र', में अव्यक्त तत्त्व, महत्त्व, अहंकार एवं तन्मात्रायें निवास करती हैं और इसे 'सर्वसंक्षोभण' कहते हैं । 'षोडशार चक्र' में ५ महाभूत, १० इन्द्रियाँ एव मन निवास करता है । १६ स्वर प्रत्येक दल पर स्थित हैं । इसमें कामाकर्षिणी आदि देवियाँ निवास करती हैं जो कि षोडश कलाओं की प्रतीक हैं । इस चक्र का नाम हैं 'सर्वाशा परिपूरक' ॥ श्री चक्र में तीन भूपुर हैं -

१. प्रथम भूपुर में त्रिखण्डा मुद्रा सहित एवं बाल सूर्यवत् अरुण एवं मनोरम संक्षोभिणी आदि ९ मुद्रायें हैं । ये पराशक्ति के आत्म स्वरूप के समान है । इन ९ मुद्राओं में 'अकुल', 'मूलाधार', 'स्वाधिष्ठान', 'मणिपूर', 'अनाहत', 'विशुद्ध', 'लम्बिका', 'आज्ञा' एवं 'सहस्रार' इन ९ आधारों की शक्तियाँ विद्यमान हैं । इन्हीं में ९ नाथ भी स्थित हैं ।

२. भूपुर की मध्य रेखा में भगवती त्रिपुरा के शरीर की त्वगादिक धातुएँ एवं अष्टम संपूर्ण विग्रह ब्राह्मी प्रभृति अष्ट माताओं के रूप में स्थित है ।

३. भूपुर की तृतीय या अंतिम रेखा में अणिमादिक अष्ट सिद्धियाँ (हठयोग आदि अष्ट विद्याओं के रूप में) स्थित है ।

यह विश्व 'कामकला' का विलास है । परमानन्द स्वरूप परतत्त्व का 'अहंभाव' (अहंकारात्मक ज्ञान) ही परमानन्दस्वरूपा त्रिपुरा सुन्दरी है ।

बिन्दुत्रय मे 'रक्त बिन्दु' के स्फुटित होने से सर्वप्रथम 'नाद' ही अंकुर के रूप में आविर्भूत हुआ और उससे क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी तथा संपूर्ण वर्णमाला आविर्भूत हुई । 'श्वेत बिन्दु' से भी ५ महाभूत उत्पन्न होते है । यथा रक्त एवं श्वेत बिन्दु अभिन्न हैं, शिवशक्तिमय है, एकाकार है उसी प्रकार कादि-हादि विद्यायें, भी त्रिपुरा से एकाकार है और उन्हीं की वाचक है । दोनों की वाच्य त्रिपुरा ही है । शब्दाध्व (शब्दों के मार्ग) तीन हैं - 'वर्ण', 'पद', एवं 'मन्त्र' । अर्थाध्व (अर्थ के मार्ग) भी तीन हैं - 'कला', 'तत्त्व', एवं 'भुवन' ॥ इन्हीं छ अध्वाओं से समस्त जगत की अभिव्यक्ति हुई है । शब्द एवं अर्थ ये दोनों शिव शक्तिमय हैं । इनका नित्य सम्बंध है और ये ही ३ रूपों में परिणत हो जाते हैं । 'वाग्भव' ऐं बीज, 'कामराज' क्लीं बीज एवं 'शक्ति' बीज 'सौः' द्वारा ही शिव से पृथ्वी पर्यन्त ३६ तत्त्वों की उत्पत्ति उनका पालन एवं त्रिपुरा सुन्दरी के स्वरूप में उनका लय सम्पन्न होता है ।

'आदिगुरु' परमशिव से अभिन्न हैं । कामकला रूप हार्द बिन्दु ही उनका अधिष्ठान है । यहीं प्रकाश-विमर्श का सामरस्य है । इसी बिन्दु में ही आदि दिव्य दम्पति (कामेश्वर-कामेश्वरी) ओघत्रय एवं गुरुमण्डल की स्थिति भी है । यही ब्रह्म भी है, आत्म तत्त्व भी है और निष्कल निराकार तत्त्व का प्राथमिक अवतार भी है। भगवती के 'श्रीचक्र' रूपी उनके शरीर में 'बिन्दु' ही प्राण तत्त्व है । इसी 'बिन्दु' में विमर्श शक्ति द्वारा स्पंदन होने पर परा शक्ति का अर्धभाग 'कामेश्वरी' एवं अर्धभाग 'कामेश्वर' के रूप में - एक ही तत्त्व का पति-पत्नी दोनों रूपों में - अभिव्यक्त होता है । 'कामेश्वर' गुरु हैं एवं 'कामेश्वरी' शिष्या । किन्तु गुरु, आत्मा, कामेश्वर-कामेश्वरी आदि सभी परस्पर अभिन्न हैं - एकरूप हैं ।

'त्रिकोण' के मध्य उड्डीयानपीठ (श्रीपीठ) में जहाँ ज्ञान-प्रदाता गुरुदेव शिव रूप में एवं कामेश्वरी शिष्या के रूप में हैं वहाँ उनका नाम 'चर्यानन्दनाथ' है । चूँकि आदि युग (सत्ययुग) के प्रारंभ में परमशिव ने स्वाभिन्न पराभट्टारिका को श्रीविद्या का उपदेश दिया अतः कामेश्वरी ही आदि देशिक हैं और उन्हीं के द्वारा यह 'त्रिपुरा सिद्धान्त' जगत में प्रसृत हुआ ।

'बिन्दु' में निवास करने वाली त्रिपुरा सुन्दरी (ऊर्ध्व मुख) 'त्रिकोण' के ऊर्ध्व बिन्दु में निवास करती हैं । यही 'कामपीठ' है । इनके शिव का नाम 'ऊर्ध्व देवनाथ' है जो कि 'कामेश्वरी' शक्ति के साथ स्थित हैं । ये त्रेता के गुरु एवं वाग्भटपीठ के अधिष्ठाता हैं । दक्षिण कोण में 'जालंधर पीठ' है जिस पर श्री 'षष्ठ देवनाथ' अपनी अभिन्न शक्ति वज्रेश्वरी के साथ समासीन हैं । ये 'कामराज बीज' के अधिष्ठाता एवं द्वापर के गुरु है । उत्तरकोण में पूर्णगिरि पीठ पर 'मित्रदेवनाथ' भगमालिनी शक्ति के सहित समासीन हैं । ये शक्ति बीज के अधिष्ठाता और कलियुग के सम्प्रदाय-प्रवर्तक महागुरु हैं ।

'बैन्दव चक्र' ही 'श्रीचक्र' का प्राण है क्योंकि बिन्दु पीठ की स्वामिनी पराशक्ति ही 'त्रिकोण' के 'त्रिबिन्दु' के रूप में स्थित हैं । 'त्रिकोण चक्र' में ही भगवती 'कामेश्वरी' के द्वारा ७ दिव्यौघ, ४ सिद्धौघ एवं ८ मानवौघ गुरुओं का आविर्भाव हुआ और उनके द्वारा श्रीविद्या सत्सम्प्रदाय संसार में प्रकाशित हुआ । इस संप्रदाय में द्वादश उपासक अत्यन्त प्रथित हैं । यद्यपि वर्तमान काल मे 'कामराज संतान' ही प्रचलित है तथापि पुण्यानन्दनाथ ने 'हादिमत' लोपामुद्रा को ही स्वीकार करके इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है । उन्होंने 'हादिमत' के समकक्ष 'कादि विद्या' को भी आदर प्रदान किया है ।

'श्रीविद्या' की उपासना के तीन प्रकार हैं - १. 'बहिर्याग' २. 'मिश्रयाग' एवं ३. 'अन्तर्याग' । स्वर्ण, रजत, ताम्र, स्फटिक, शालिग्राम शिला आदि पर निर्मित 'श्री चक्र' में बाह्योपचारों से भगवती की पूजा करना 'बहिर्याग' है । बाह्योपचारों के साथ भावना सहित आन्तर उपासना भी करना 'मिश्रयाग' है । इसमें पञ्चमकारों का प्रयोग भी किया जाता है । 'अन्तर्याग' में साधक शरीर को 'श्रीचक्र' मानकर उसमें भगवती की आराधना करता है । यह बाह्योपादान निरपेक्ष उपासना है । कुण्डलिनी के जागरण के बाद ही इसके अनुष्ठान का विधान है । 'अन्तर्याग' में कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से उठाकर षट्चक्रों का वेधन करते हुए सहस्रार में आसीन परम शिव में लय कर दिया जाता है । शक्ति का शक्तिमान में यह लय ही 'शिवशक्ति मैथुन' या 'आदि दम्पति का सामरस्य' है । यही साधक की साधना की परमोच्च उपलब्धि, सर्वोच्चसिद्धि, महामुक्ति एवं परनिर्वाण है ।

शाक्तोपासना अद्वैत प्रधान है इसलिए इसमें अद्वैतभाव को ही प्रामुख्य प्रदान करते हुए निम्न ऐक्यों का विधान किया गया है[१] -

१. कला का बिन्दु से ऐक्य ।
२. इन दोनों का नाद के विभव से ऐक्य ।
३. नाद का कला तथा बिन्दु से ऐक्य ।
४. कला का नाद तथा बिन्दु से ऐक्य ।
५. कला, बिन्दु तथा नाद का परमशिव से ऐक्य ।
६. नाद, कला, बिन्दु का परमशिव से ऐक्य ।
७. कला, नाद तथा बिन्दु का परमशिव से ऐक्य ।

शिवचक्रों का शक्तिचक्रों के साथ ऐक्य, शिव का शक्ति के साथ ऐक्य, शरीर का श्री चक्र के साथ ऐक्य, श्रीचक्र का ब्रह्माण्ड के साथ ऐक्य, (अधिष्ठान साम्य, अनुष्ठान साम्य, अवस्थान साम्य, रूप साम्य, एवं नाम साम्य के रूप में वर्णित शक्ति एवं शिव का ऐक्य) मन्त्र एवं चक्रों का ऐक्य, वर्ण एवं चक्रों का ऐक्य,

---

१. 'गुरुतत्त्व शक्तितत्त्व शक्तितत्त्वात्मतत्त्वेषु अभेदत्वात् अद्वैतमेवावस्थां - 'चिद्विलास'

वाक्चतुष्टय एवं श्री चक्र का ऐक्य, मन्त्र - यन्त्र - षड् कमल शक्ति - देवता - साधक एवं साधना का ऐक्य, धामत्रय, बिन्दुत्रय - पीठत्रय - शक्तित्रय - लिंगत्रय, मातृकात्रय आदि सभी ऐक्यों, की, 'इदमहं' 'अहमिदं' एवं 'अहमस्मि सर्वं' की तथा 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अद्वैतात्मक अनुभूति करना ही प्रत्येक साधक का सर्वोच्च लक्ष्य है - यही है परम सत्य का साक्षात्कार अनुत्तर पूर्णता की स्थिति और परम कैवल्य या महामोक्ष ।

विषयानुक्रमणिका

विषय	श्लोकाङ्का:	पृष्ठाङ्का:
दो शब्द		
प्रस्तावना		
मंगलाचरण	१	१
आद्या शक्ति और उसका स्वरूप	२	१६
पराशक्ति महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप	३	२५
महाबिन्दु का स्वरूप	४	३०
अहंकार का तात्त्विक स्वरूप	५	३७
बिन्दु का तात्त्विक स्वरूप	६,७	४३
कामकलाविद्या एवं उसके ज्ञान का फल	८	५१
शाब्दी-आर्थी सृष्टि एवं श्वेत बिन्दु से सृष्टि-विधान	९-१०	५५
बिन्दुद्वय एवं विद्या - (वेदक) - वेद्य (देवता) के मध्य अभेद	११	५८
वाक् एवं अर्थ का तात्त्विक स्वरूप	१२	६०
धामत्रय, बीजत्रय, पीठत्रय एवं शक्तित्रय	१३	६२
मातृकात्रय, विद्या एवं तुरीय पीठ का स्वरूप	१४	६२
सूक्ष्मभूत, गुण, नित्या एवं तिथि का स्वरूप	१५-१७	६९
विद्या का तत्त्वात्मक एवं तत्त्वातीत स्वरूप	१८	७२
विद्या एवं देवता की एकात्मता	१९	७२
देवी की मातृका एवं चक्रों के साथ एकात्मता	२०	८०
देवी एवं चक्रों में अभेदात्मता	२१	८०
बिन्दु एवं त्रिकोण का स्वरूप	२२	८३
शक्ति चक्र के त्रिकोण का स्वरूप	२३	८३
श्रीचक्र के अवयव एवं पश्यन्ती का स्वरूप	२४	८९
त्रिबिन्द्वात्मक संयुक्त कामकला का स्वरूप	२५	९२
पश्यन्ती एवं मध्यमा का स्वरूप	२६-२७	९४
सूक्ष्म-मध्यमा एवं स्थूल-मध्यमा में एकत्व	२८	९९
अष्टकोण चक्र और उसका स्वरूप	२९	१०१
दशार चक्र	३०	१०२
दस एवं चौदह त्रिकोणों वाले चक्रों का स्वरूप	३१	१०४
वैखरी की उत्पत्ति	३२	१०६
सर्वसंक्षोभण एवं सर्वाशापरिपूरक चक्रों की वैखरी वर्णात्मकता का प्रतिपादन	३३	१०८

विषय	श्लोकाङ्काः	पृष्ठाङ्काः
महात्रिपुरसुन्दरी के चक्र का स्वरूप	३४	१०९
आवरण देवताओं और गुरुमण्डल का परिचय एवं उनका स्वरूप	३५	११२
आवरण देवता और उनका स्वरूप	३६	११५
मूल शक्ति का स्वरूप	३७	११६
त्रिपुरसुन्दरी देवी का विग्रह	३८	११६
दिव्य दम्पति का वर्णन	३९	१२०
आवरण देवताओं का स्वरूप	४०	१२२
सर्वरक्षाकर चक्र में स्थित निगर्भ योगिनी शक्ति	४१	१२४
सर्वरक्षाकर चक्र एवं तत्रस्थ योगिनियाँ	४२	१२५
सम्प्रदाय योगिनियों का स्वरूप	४३	१२७
गुप्ततर योगिनियों का स्वरूप	४४	१२८
षोडश विकार एवं उनकी शक्तिरूपता	४५	१२९
मुद्रायें एवं उनका स्वरूप	४६	१३१
नौ आधारों का चक्रों के रूप में रूपान्तरण	४७	१३१
अष्ट माताएँ	४८	१३४
परमशिव की अष्ट शक्तियाँ ।	४९	१३५
कामेश का स्वरूप	५०	१३७
उड्डीयान पीठ में स्थित शिव द्वारा कामेश्वरी को आत्मविद्या प्रदान किया जाना	५१	१३९
पराभट्टारिका एवं मित्रदेव का स्वरूप	५२,५३	१४२
ग्रन्थकार द्वारा ग्रन्थ के महत्त्व का प्रतिपादन	५४	१४९
श्रीनाथ को अभिवादन	५५	१४९
श्लोकानुक्रमणिका		१५२

॥ श्रीः ॥

पुण्यानन्दविरचितः

कामकलाविलासः

नटनानन्दविरचितया चिद्वल्ल्यासंवलितः
'सरोजिनी'-हिन्दीव्याख्यया च सहितः

— ☙ ❀ ❧ —

नमश्शिवाय नाथाय चिद्रूपानन्दरूपिणे ।
श्रीमते चटुलापाङ्गोत्पाटितातङ्कशङ्कवे ॥ १ ॥
वन्दे तन्मिथुनं दिव्यमाद्यमानन्दचिद्घनम् ।
अनुत्तरं परं ज्योतिरिति यद्भाव्यते बुधैः ॥ २ ॥
श्रीमते नटनानन्दयोगिने परमात्मने ।
रक्तशुक्लप्रभामिश्रतेजसे गुरवे नमः ॥ ३ ॥
प्रणमत नाथानन्दं परया भक्त्या चिदैक्यबोधानन्दम् ।
उपनिषदर्थनिगूढं सकलजनानन्दभद्रपीठारूढम् ॥ ४ ॥
पुण्यानन्दमुनीन्द्रात् कामकला नाम विश्रुता जाता ।
आख्यां काञ्चिदमुष्या नटनानन्दः करोति सव्याख्यम् ॥ ५ ॥

इह हि शक्तिपातसमुन्मिषत्सकलवेदवेदान्ततात्पर्यनिर्णयविशारदाः सत्सम्प्रदायनिष्णाताः सर्वागमार्थावधारितात्मयाथार्थ्यविदः सच्चिदानन्दसिन्धुविहरणपटीयांसोऽत्रभवन्तः पुण्यानन्दाः स्वयं परमात्मानं प्रकाशयन्तः परमेश्वरमात्मत्वेन समाविशन्तः परेषामपि भक्तिभाजां पुरुषाणामुज्जिहीर्षुतया परमात्मैकत्वलक्षणं रक्षणमाशासते—

सकलभुवनोदयस्थितिलयमयलीलाविनोदनोद्युक्तः ।
अन्तर्लीनविमर्शः पातु महेशः प्रकाशमात्रतनुः ॥ १ ॥

(पञ्चकृत्यकारी, विमर्शात्मक एवं प्रकाशैकस्वभाव महेश एवं उसके 'विश्वमय' तथा 'विश्वातीत' स्वरूपों की वन्दना)

समस्त लोकों की सृष्टि, रक्षा एवं प्रलय रूप वाली आनन्दात्मिका लीला द्वारा ('स्वातन्त्र्यशक्ति' के माध्यम से निष्पादित विश्वाभिनय रूप) क्रीडा करने में प्रवृत्त, स्वलयीभूता विमर्श शक्ति वाले तथा प्रकाशरूप कलेवर वाले (प्रकाशैकमात्रस्वभाव) महेश्वर (आपकी) रक्षा करें ॥ १ ॥

* चिद्वल्ली *

अत्र पुण्यानन्दयोगिनः पुण्यवशात् स्वाभाविकभक्तिपरितोषितपरमगुरुवरकरुणाकटाक्षनिर्धूतनिखिलपाशस्तोमाः सकलविद्याधिदेवताभूतमहात्रिपुरसुन्दरीमन्त्रचक्रपूजाक्रमव्याचिकीर्षुतया तदधिष्ठानभूतकामकामेश्वरीरूपमादावाचक्षते **सकलेत्यादि** । सकलानां भुवनानाम् उदयः उत्पत्तिः, स्थितिः रक्षा, लयः नाशः, एतत्त्रितयं तिरोधानानुग्रहयोरुपलक्षणम् । यथा त्रिवृत्करणं पञ्चीकरणस्य एतत्पञ्चविधकृत्यप्रचुरा या लीला तया विनोदनं क्रीडनम्, तस्मिन्नुद्युक्तः जागरूकः । मयाऽत्र प्राचुर्यार्थे विहितः । अन्नमयो यज्ञ इतिवत् । न तादृशे चिन्मय इतिवत् । कुतः पञ्चविधकृत्यं हि कार्यं जगन्निष्ठम् । लीला तु परमेश्वरनिष्ठा । तस्मादत्र सकलशब्दविशेषितभुवनपदेन भवत्यस्मादिति शिवादिधरण्यन्तं तत्त्वजातमुच्यते । एतेषां तत्त्वानां ब्रह्मणः सकाशादुत्पन्नत्वात्तस्मिन् स्थितत्त्वात्तस्मिन्नेव लयात् ॥ तथा च तैत्तिरीयश्रुतिः—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्मेति ।' उद्युक्त इत्यनेन 'स देव सोम्येदमग्र आसीत् । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति । स्वान्तः स्थितं प्रपञ्चं बहुस्यां प्रजायेयेति । तदात्मानं स्वयमकुरुत' इति सङ्कल्पविशिष्टलक्षणसृष्ट्युन्मुखोऽभूदित्युक्तं भवति ॥ तथा रहस्यगुरवः—'चिदात्मैव हि देवोऽन्तः स्थितमिच्छावशाद् बहिः । योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत् ॥' इति । अत एवेश्वरस्य जगत्सृष्ट्यादिकं लीलामात्रं न प्रयोजनमस्ति ॥ तथा च हृदयसूत्रम्—'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति ।' तथा वचनमपि—'स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि ॥' इति । श्रुतिरपि—'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च' इति ॥ वचनान्तरमपि—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छा तूलिकयात्मनि ।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति परमेश्वरः ॥

एवं च महेश्वर एक एव जगदुत्पादननिमित्तोपादानतामयते बहुस्यामिति बहुभवनश्रुतेः । एकमेवाद्वितीयमित्यधिष्ठानान्तरनिषेधाच्च । प्रत्यभिज्ञानसूत्रेऽपि—'चितिरेव चेतनपदाधिरूढा च ।' इत्यसङ्कोचनीचित्तमित्यनेन परमात्मैव जीवस्वरूपमगमदित्युक्तम् ॥ श्रुतिरपि—'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इत्यब्रवीत् ॥ तथा ललितोपाख्यानेऽपि—

हृदयस्थापि लोकानामदृश्या मोहनात्मिका ।
नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया ॥ इति ।

चतुश्शत्यां च—

अस्यां परिणतायां तु न किञ्चित्परिदृश्यते ।

इत्यादिस्मृतिजालमुदाहर्तव्यम् । तथा छान्दोग्ये—'स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्' इति एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञाय दृष्टान्तमाह—'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं' इत्यादिवचनात्, ब्रह्मैव तत्तदाकारेण परिणम्य विहरतीति सिद्धम् ॥ ननु एतावता प्रकरणेन जगतो

ब्रह्मस्वरूपाव्यतिरिक्तत्वमुक्तम् । एवं च सति जगद्व्यतिरिक्तलक्षणं ब्रह्मस्वरूपं कीदृशमित्याकाङ्क्षायामाह – **अन्तर्लीनविमर्श** इत्यादिना । विमृश्यते परामृश्यते इदमिति विमर्शः प्रपञ्चः । इदमित्येव हि परमात्मना सृष्टस्य जगतः प्रसिद्धपरामर्शः ॥ तथा च श्रुतिः—'आत्मन आकाशः सम्भूत' इत्यारभ्य—'स वा एष पुरुषोऽन्नरसमय' इति शरीरसृष्टिमुक्त्वा तस्येदमेव शिरः, अयं दक्षिणः पक्षः, अयमुत्तरः पक्षः, अयमात्मा, इदं पुच्छं प्रतिष्ठा, इत्यादिवाक्येन इदमिदमित्येव हि प्रपञ्चपरामर्शो दृश्यते ॥ परापञ्चाशिकायामपि—

अहमि प्रलयं कुर्वन्निदमः प्रतियोगिनः । इति ।

ब्रह्मप्रतियोगिभूतस्य प्रपञ्चस्य इदमानिर्देशः कृतः । एवम्भूतो विमर्शः प्रपञ्चः अन्तर्लीनोऽन्तर्गतो विमर्शः यस्येति सः अन्तर्लीनविमर्शः । तदयमर्थः—स्वात्मसात्कृताखिलप्रपञ्चः परिपूर्णाहं भावभावनागर्भितः परमानन्दपरं ज्योतिस्स्वरूपः परमात्मेति ।

एतच्च उत्तरत्र अहमर्थनिर्णयप्रकरणे प्रपञ्चयिष्यते । इहापि प्रसङ्गात् किञ्चिदुच्यते । ब्रह्म चाहमिति परमानन्दी भवति । तथा चोपनिषत्—'तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् अन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः' इति परमात्मानं निर्दिश्य—'तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा ।' इति पूर्णाहन्ताविशिष्टं परब्रह्म ब्रवीति । ननु आनन्द आत्मेति आनन्दरूपत्वमात्मनः प्रतिपाद्यते । न तु पूर्णाहन्ताविशिष्टत्वं, तत्कथमुच्यते पूर्णाहन्ताविशिष्टत्वं परब्रह्मेति । आनन्दो नाम विश्वात्मभावना ॥ तथा सुबालोपनिषदि—'अन्नमयो भूतात्मा, प्राणमय इन्द्रियात्मा, मनोमयः सङ्कल्पात्मा, विज्ञानमयः कालात्मा, आनन्दमयो लयात्मा ।' इति । अत्र लयः पूर्णाहम्भावना ॥ वचनमपि—'ध्यानकोटिसमो लयः' इति चिदानन्दघनं परमित्यत्र व्याख्यानम् । अमृतानन्दयोगिभिः चिच्चैतन्यकला, आनन्दो विश्वाहन्तापरिणाम इत्युक्तत्वात् एवं व्याख्यातम् ॥ अथवा जगदुत्पत्तिस्थितिलय–हेतुभूता कृत्रिमाहम्भावपरामर्शो विमर्शः ॥ तथा नागानन्दाः—'विमर्शो नाम विश्वाकारेण वा, विश्वप्रकाशेन वा विश्वोपसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम् । तस्यां तल्लीनत्वं नाम अन्तर्मुखत्वम् ॥' तथा चायमर्थः—अन्तर्लीनोऽन्तर्मुखीभूतो विमर्शः पूर्णाहम्भावना यस्येति । तथा श्रीस्वच्छन्दशास्त्रे—

स तु योऽन्तर्मुखो भावः सर्वज्ञादिगुणास्पदः ।
तस्य लोपः कदाचित्स्यादन्यस्यानुपलम्भनात् ॥ इति ।

विरूपाक्षपञ्चाशिकायामपि—

स्वपरावभासनक्षमः आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ ।
अहमिति स एक उक्तः अहन्तास्थितिरीदृशी तस्य ॥ इति ।

शिवानन्दस्वामिनोऽपि—

अहमित्यक्लमाक्रान्तसमस्तभुवनत्रयम् । इति ।

तत्तादृशपरब्रह्मणः परमेश्वरस्य प्रकाशैकस्वभावत्वं सर्वस्मात्परत्वं चाह—प्रकाशमात्रतनुर्महेश्वर इति—प्रकाशमात्रा प्रकाशानतिरिक्ता तनुः ॥ तथा च छान्दोग्ये —

यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते,
तं देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् । इति ।

'स एष सप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत' इति ॥ 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।' इत्यादि ॥ तथा रहस्यागमश्च—

स्वरूपज्योतिरेवान्तः परावागनपायिनी ।
वन्दे ज्योतिरनुत्तरम् । इति च ।

परापञ्चाशिकायामपि—'स एकोऽन्तरिदं ज्योतिरसस्तेजांसि तमांसि च ।' इति । सौभाग्यहृदयेऽपि—'तन्महः परमं नौमि' इत्यादि । अत्र प्रकाशत्वं नाम इच्छामि जानामि करोमि इत्युत्तमपुरुषान्तर्गतस्फुरणरूपाहं परामर्श एव । ततश्च सर्वज्ञत्वसर्वेश्वरत्व—सर्वकर्तृत्वपूर्णत्वव्यापकत्वरूपपञ्चशक्तिसंवलितं परं ब्रह्मेत्युक्तं भवति ॥ ननु सूर्यादीनामपि प्रकाशकत्वं दृष्टम् । तत्कथमस्यैव परप्रकाशरूपत्वमित्यत आह—महेश इति—महांश्चासावीशश्च इति महेश इति । महत्त्वञ्च देशकालाकारैरनवच्छिन्नस्वरूपत्वात् । ईशत्वं च सर्वनियन्तृत्वम् ॥ तथा च यजुश्श्रुतिः—'यतो वाचो निवर्तन्ते'—इति सर्वप्रकारेणापरिच्छिन्नं ब्रह्मेति निर्दिश्य—

तस्यैवैषा परा देवी स्वभावामर्शनोत्सुका ।
पूर्णत्वं सर्वभावानां यस्या नाल्पं न वाधिकम् ॥

ब्रवीति । तथाऽथर्वणवेदोपनिषदि—'अथ कस्मादुच्यते महेश्वरः । सर्वान् लोकान् उद्गृह्णाति सृजति विसृजति वासयति । तस्मादुच्यते महेश्वरः' इति । उपनिषदन्तरेऽपि—

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परस्स महेश्वरः ॥

'भीषास्माद्वातः पवत' इत्यादि ॥ 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत' इत्यादि ॥ तथा प्रत्यक्षोपनिषत्—'यत्परं ब्रह्म स एको रुद्रः स ईशानः स भगवान् महेश्वरः स महादेवः' इति ॥ परापञ्चाशिकायामपि—

स एव सर्वभूतानां स्वभावः परमेश्वरः ।
स एव भैरवो देवो जगद्भरणलक्षणः ॥

इति परमेश्वरं निर्दिश्य—

तस्यैवैषा परा देवी स्वभावामर्शनोत्सुका ।
पूर्णत्वं सर्वभावानां यस्या नाल्पं न वाधिकम् ॥

इति सम्पूर्णरूपत्वपराशक्तियोगं परमात्मनो विधाय—

एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडारसोत्सुकः ।
विचित्रान् सृष्टिसंहारान्विधत्ते युगपत्प्रभुः ॥
अतिदुर्घटकारित्वमस्यानुत्तरमेव तत् ।
एतदेव स्वतन्त्रत्वमैश्वर्यं परबोधितम् ॥

इति ब्रह्मस्वरूपं सम्यक्प्रकल्प्य प्रपञ्चितम् । 'एवं पराभट्टारिकासहितः श्री परमेश्वरः । एष सर्वेश्वरः, एष भूताधिपतिः एष भूतपाल एष सेतुर्विधरणः एषां लोकानामसम्भेदाय' इति बृहदारण्यकोक्तरीत्या सर्वप्रकारेण सर्वरक्षकः परमेश्वरः परमात्मा युष्मान् पात्विति निरवधिकदयाशालिनः पुण्यानन्दाः पुण्यपुरुषानाशासते । पालनं चात्र परमात्मैकत्वरूपमेव ॥ तथा चिद्विलासे—'भेदलक्षणविपक्षसङ्कटात् तारणंपरमिहात्मरक्षणम् ।' इत्यभेदेन चिन्तनमभिप्रेतम् । इदं चात्र पुण्यानन्दानामाकूतं सर्वभूतसुहृत्परमात्मैवात्र लोके सद्गुरुरूपमास्थाय कतिचन भक्तिभाजः संरक्षतीति ॥ यजुश्श्रुतिः—'स चाचार्यवंशो ज्ञेयो भवत्याचार्याणामसावसावित्याभगवत्तः ।' 'आचार्यवान् पुरुषो वेद आचार्यस्तु ते गतिं वक्ता।' 'त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयतीति ।' 'परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।' इत्यादिश्रुतिजालं श्रीगुरूपसदनद्वारा ब्रह्मप्राप्तिमभिधत्ते ॥ यथा चागमश्च—

शिवशक्तिसमायोगाज्जन्मान्तरकृताच्छुभात् ।
शिवपूजानुचिन्ता स्यात्कर्म साम्यं यदा भवेत् ॥
शिव एव तदा साक्षादास्थाय गुरुविग्रहम् ।
दीक्षां करोति विश्वात्मा शम्भुशक्त्यनु वेधतः ॥ इति ।

गीता च—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ इति ।

अभियुक्तोक्तिश्च—'कल्याणिदेशिककटाक्षसमाश्रयेण कारुण्यतो भवति शाम्भव-वेधदीक्षा ।' परमशिवादिपदद्वयपारम्पर्यक्रमागतं भाव्यमिति च । अत्र किञ्चित्प्रसङ्गादुच्यते—'पातु महेशः प्रकाशमात्रतनुः ।' इत्यनेन गुरुदेवतामन्त्राणामैक्यं प्रतिपादितम् । कथम् आचार्यस्य प्रकाशकत्वम् अस्त्येव । तथा सूत्रम्—'तथा गुरुरुपायः' इति । तथा तद्वृत्तिकारोऽपि—'गृणातीति गुरुस्तत्त्वं स्तोत्रव्याप्तिप्रदर्शकः । मन्त्रवीर्यस्य तेनासावुपाय इति कीर्तितः ॥' रक्षकत्वं मन्त्रस्याप्यस्ति । मननात् त्रायत इति मन्त्रशब्दार्थः । यथागमश्च—'मननात्त्राणधर्माणो मन्त्राः स्युः परिकीर्तिताः ।' इति । शिवसूत्रमपि—'चित्त मन्त्रे' इति चेतन्यरक्षकत्वं मन्त्रस्य प्रतिपाद्यते । अयमर्थः चतुश्शत्यापि अथषट्कनिरूपण-प्रकरणे निगर्भाभिधेययोः प्रतिपाद्यते—

निगर्भार्थो महादेवि शिवगुर्वात्मगोचरः ।
तत्प्रकारं च देवेशि दिङ्मात्रेण वदामि ते ॥
निष्कलतत्त्वे शिवे बुध्वा तद्रूपत्वं गुरोरपि ।
तन्निरीक्षणसामर्थ्यादात्मनश्च शिवात्मता ॥ इति ।

एतदभिप्रायेणास्मदाचार्यवर्यैः श्रीशङ्करानन्दगुरुभिरपि सम्यक् निरणायि—

नमश्शिवाय नाथाय चिद्रूपानन्दरूपिणे ।
श्रीमते चटुलापाङ्गपाटितातङ्कशङ्कवे ॥ इत्यादि ।

तथा श्वेताश्वतरोपनिषदि—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ इति ।

एवं च सत्सम्प्रदायिभिरेव माहेश्वरैः आत्मा कामेश्वरः प्राप्यते । न तु अन्यैरित्यलं प्रसक्तानुप्रसक्तया । प्रकृतमनुसरामः ॥

ननु कथमयमात्मा परमशिवभट्टारक एव सर्वकर्तेत्युच्यते, तस्य सर्वकर्तृत्वनिषेध-श्रवणात् । श्रूयते हि—'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च विद्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' इति पराभट्टारिकासम्बन्धादेव सर्वकर्तृत्वसर्वाभ्यधिकत्वप्रति-पादनपुरस्सरं पराभट्टारिकाया एव सर्वजगदुत्पत्तिश्रवणात् । किञ्च—'आनीदवातं स्वधया तदेकम् ।' इति । 'श्रद्धया देवो देवत्वमश्नुते ।' इत्यादि ॥ 'सा साक्षिणी विजयते तव मूर्त्तिरिका ।' इत्यभियुक्तस्मृतिश्च । पराभट्टारिकासन्निधानादेव अस्य महेश्वरस्य सत्ताश्रवणाच्च । केवलमीश्वरस्य सर्वकर्तृत्वादिकं न सङ्गत इति सत्यम् । नहि वयं परमेश्वरः परमशिवः पराभट्टारिकारहितः केवलकर्तेति वदामः । किन्तु शिवशक्तिरूपकमेव तत्त्वमिति निश्चित्य तस्य कारणत्वमवोचाम । तथा प्रामाणिकवचनम्—'शिवशक्ति-रिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः' इति ॥ श्री स्वच्छन्देऽपि—'तत्त्वारूढस्स भगवान् शिवः परमकारणम् । शिवस्सर्वस्य कर्तेयं शक्तिः कारणमुच्यते' इति उभयोरपि कर्तृत्वमुच्यते ॥ तत्रैव—

शिवाभिन्ना पराशक्तिः सर्वकर्मशरीरिणी ।
वामादीच्छादिभेदेन मिथुनत्रयतां गता ॥

इति स्मरणात् एकमेव जगत्कारणम् । अन्यथा श्रुतिविरोधः प्रसज्येत सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति एकत्वावधारणम् । तस्माच्छिवस्य कारणत्ववचनं शक्तेरपि समानम् । अत एव शक्तेरपि कर्तृत्वमुच्यमानं शिवस्यापि तुल्यम् ॥

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः ।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥

* सरोजिनी *

यहाँ योगी पुण्यानन्दनाथ समस्त विद्याओं की अधिष्ठात्री त्रिपुरासुन्दरी के मन्त्र, चक्र एवं उनकी पूजा पर प्रकाश डालने का मूल लक्ष्य रखते हुए भी सर्वप्रथम त्रिपुरासुन्दरी के युगनद्ध कामकामेश्वरी वाले स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं ।[१] महेश्वर के दो रूप हैं—(क) विश्वमय एवं (ख) विश्वातीत । पुण्यानन्दनाथ ने प्रथम श्लोक में इन दोनों रूपों की वन्दना की है ।

(क) महेश्वर के विश्वात्मक रूप का विवेचन—

'सकलभुवनोदयस्थितिलयमय'—समस्त लोकों की सृष्टि, रक्षा (पालन) एवं संहार से युक्त । 'भुवन' = 'भवत्यस्मात् इति भुवनम्' अर्थात् वह जो उस परम सत्ता से होता है—उत्पन्न होता है, वह 'भुवन' कहलाता है । यहाँ 'सकल' शब्द से विशिष्ट 'भुवन' शब्द क्षिति से शिव पर्यन्त समस्त छत्तीस तत्त्वों को इंगित करता है । चूँकि षट्त्रिंशदात्मक जगत् एवं उसके कारणरूप ३६ तत्त्व परमशिव से ही उन्मिषित होते हैं, अतः 'सकलभुवन' पदावली केवल चतुर्दश भुवन, तीन लोक या अण्डों को ही नहीं प्रत्युत इन समस्त ३६ तत्त्वों को सङ्केतित करती है ।

'उदय-स्थिति-लय' शब्दावली परमात्मा के पञ्चकृत्यों (सृष्टि-पालन-संहार-तिरोधान एवं अनुग्रह) का उपलक्षण है । अतः इन शब्दों से परमेश्वर के केवल तीन कृत्यों का ही नहीं, प्रत्युत पञ्चकृत्यों का बोध होता है ।

'उदय'—प्रकटीकरण, उन्मेष । 'सकलभुवन उत्पत्ति' पदावली का प्रयोग न करके 'सकलभुवन उदय' पदावली के प्रयोग का रहस्य यह है कि शाक्त दर्शन के अनुसार कोई नव्य पदार्थ उत्पन्न नहीं होता और न तो 'उत्पत्ति' के अर्थ में जगत् का प्रादुर्भाव ही होता है । जो पहले से विद्यमान है वही कभी-कभी तिरोहित हो जाता है और समय आने पर पुनः प्रकट हो जाता है । इस प्रकटीकरण के कार्य को उत्पत्ति नहीं कह सकते प्रत्युत उदय या अभिव्यक्ति ही कह सकते हैं । इसी अभिप्राय से योगी पुण्यानन्दनाथ ने 'सकलभुवन उत्पत्ति' पदावली का प्रयोग न करके 'सकलभुवन उदय' पदावली का प्रयोग किया है । 'स्पन्दकारिका' में भी इसी अभिप्राय से 'उत्पत्ति' शब्द का बहिष्कार करके उसके स्थान में 'उदय' शब्द का प्रयोग किया गया है—'यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ ।' चूँकि 'सत्कार्यवाद' के अनुसार कारण में कार्य पहले से ही विद्यमान रहता है, कार्य की उत्पत्ति नहीं होती, प्रत्युत उसकी अभिव्यक्ति मात्र होती है, अतः शाक्त दर्शन के 'सत्कार्यवादी' होने के कारण पुण्यानन्दनाथ ने 'उदय' शब्द का प्रयोग करके शाक्त दर्शन के सत्कार्यवादी सिद्धान्त की ओर भी संकेत किया है ।

'स्थिति'—रक्षा, पालन, सत्ता का सातत्य बने रहना । **'लय'**—प्रलय, कार्यजगत् का अपने कारण में लीन हो जाना, कार्य का कारण में पुनरावर्तन । पुण्यानन्दनाथ ने 'विनाश' या 'संहार' शब्द का प्रयोग न करके 'लय' पद का प्रयोग भी सोद्देश्य किया है । 'स्पन्दकारिका' में भी इसी शब्द का प्रयोग किया गया है—'यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः

---

१. नटनानन्दनाथः 'चिद्वल्ली' (पृ० २) ।

प्रलयोदयौ ।' अद्वैतवादी शैवशाक्त दर्शन के अनुसार न तो किसी पदार्थ की उत्पत्ति होती है और न तो उसका विनाश । जब शिव एवं शक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता ही नहीं है तब किसकी उत्पत्ति एवं किसका विनाश? जिसे 'प्रलय' कहा जाता है वह विनाश नहीं है प्रत्युत निगिरण है—अनाच्छादित, कारणरूप स्वस्वरूप में निवर्तन है—शक्ति का 'संकोच' है एवं स्वस्वरूप-गोपनात्मिका लीला है । सृष्टि 'उद्गिरण' है न कि प्रादुर्भाव । प्रलय 'निगिरण' है न कि विनाश—'स्वेच्छया जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि[१] ॥' सृष्टि 'उन्मीलन' है न कि नव्याविर्भाव—'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति[२] ॥' जिस प्रकार कोई योगी किसी उपादान के बिना ही पदार्थसमूह को अभिव्यक्त कर देता है उसी प्रकार चिदात्मा अन्तःस्थित जगत् को अपनी इच्छा के अनुसार बाहर अभिव्यक्त कर देता है—'चिदात्मैव हि देवोऽन्तः स्थितमिच्छावशाद् बहिः । योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत् ॥'—लोग इसी 'प्रकाशन' को उत्पत्ति कहने लग जाते हैं और जब परमात्मा अपने अभिव्यक्त प्रसार को अपने में समेट लेता है तो उसी को 'प्रलय' कहा जाता है । किन्तु सामान्य लोग इसे विनाश समझते हैं । उपनिषदों में भी इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि आदिकाल में परमात्मा रूप एक देव ही विद्यमान था । उस एक अद्वितीय ब्रह्म ने अपने भीतर पहले से ही स्थित प्रपञ्च को (या दूसरे शब्दों में अपने को ही) नानारूपात्मक जगत् के रूप में अभिव्यक्त कर दिया, क्योंकि उसने इच्छा की कि मैं एक से बहुत हो जाऊँ—'स देव सोम्येदमग्र आसीत । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति । स्वान्तःस्थितं प्रपञ्चं बहुस्यां प्रजायेयेति । तदात्मानं स्वयमकुरुत' ॥ 'एकोऽहं बहुस्याम' । वही महेश्वर (जीवों के रूप में) अनन्त रूप धारण करके व्यक्त हो जाता है । 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' ॥ जगत् उसी अद्वितीया शक्ति की आत्मपरिणति है, न कि नव्योत्पत्ति । शाक्त दर्शन के इसी सिद्धान्त को 'अविकृतपरिणामवाद' कहते हैं । यह विशिष्टाद्वैतवादियों के परिणामवाद' से पृथक् परिणामवाद है । श्रुतियों में—'यथोर्णानाभिः सृजते गृह्णते च' अर्थात् जैसे मकड़ी तन्तु-जाल को अपने भीतर से निकालती है और फिर अपने भीतर ही निगल जाती है उसी प्रकार परमात्मा शिव अपने भीतर स्थित एवं अपने से अभिन्न जगत् को लीलावश अभिव्यक्त करता है तथा अपने में लय कर लेता है ।

'सकलभुवनोदयस्थितिलयमय' कहकर योगी पुण्यानन्दनाथ ने एक ही श्लोक में शैव-शाक्त-दर्शन की इस विशिष्ट दृष्टि की ओर भी संकेत किया है कि शैव-शाक्त तान्त्रिकों का शिव शाङ्कर ब्रह्म की भाँति निष्क्रिय नहीं है प्रत्युत पञ्चकृत्यकारी है । उसके पञ्च कृत्य निम्नांकित हैं—(१) सृष्टि, (२) स्थिति, (३) संहार (प्रलय), (४) तिरोधान एवं (५) अनुग्रह । शिव पञ्चकृत्यकारी एवं पञ्चशक्तिसम्पन्न दोनों है—'शिवः स्वतन्त्रदृग्रूपः पञ्चशक्तिसुनिर्भरः[३] ॥' 'सृष्टिसंहारकर्तारं विलयस्थितिकारकम् । अनुग्रहकरं देवं प्रणतार्त्ति-विनाशनम्[४] ॥' उस शिव के अन्य पञ्च कृत्य भी हैं—'आभासत शक्तिविमर्शनबीजा-वस्थापनविलापनतस्तानि'[५] ॥ पञ्चविधकृत्यकारित्वं चिदात्मनो भगवतः ॥'[६] तैत्तिरीय श्रुति में भी ब्रह्म के कृत्यकारी होने का प्रतिपादन किया गया है—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते,

---

१. हृदयसूत्र ।
२. प्रत्यभिज्ञाहृदय ।
३. (तन्त्रालोक) (आ० ९) ।
४. स्वच्छन्दतन्त्र (पटल १) ।
५. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (क्षेमराज) ।
६. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् ।

येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति[१] ॥' 'अथ कस्मादुच्यते महेश्वरः? सर्वान् लोकान् उद्गृह्णाति सृजति, विसृजति वासयति । तस्मादुच्यते महेश्वरः[२] ॥' यह 'नित्यक्रीडारसोत्सुक' शिव अनेकविध विचित्र कार्यों का निष्पादक है—

'एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडारसोत्सुकः ।
विचित्रान् सृष्टिसंहारान् विधत्ते युगपत्प्रभुः' ॥

'सकलभुवनोदयलयमय' कथन का वैशिष्ट्य—अद्वैतवादी दार्शनिक परम्परा में (१) अद्वयवाद एवं (२) द्वयात्मक अद्वयवाद दोनों स्वीकृत हैं । शङ्कराचार्य के केवलाद्वयवाद में ब्रह्म निष्क्रिय है, किन्तु तान्त्रिकों के 'द्वयात्मक अद्वयवाद' में ब्रह्म सक्रिय है । चूँकि 'कामकलाविलास' के प्रणेता योगी पुण्यानन्दनाथ द्वयात्मक अद्वयवाद के प्रतिपादक हैं, अतः उन्होंने अपने प्रथम श्लोक में ही अपने प्रतिपाद्य परम तत्त्व के उस स्वरूप का वर्णन किया है जो कि केवलाद्वैतवादी दृष्टि से उसे पृथक् करके एक नव्य दृष्टि या नव्य स्थापना को संप्रस्तुत करता है । केवलाद्वैतवाद का ब्रह्म स्वाभिन्न शक्ति से नित्य समवेत शिव की भाँति किसी नित्य शक्ति से समवेत भी नहीं है, किन्तु पुण्यानन्दनाथ का शिव ऐसी पराशक्ति से नित्य समवेत है । इसीलिए प्रथम श्लोक में ही पहले 'अन्तर्लीनविमर्शः' कहकर विमर्श शक्ति का स्मरण किया गया है और बाद में 'प्रकाशतनुमहेश' का ।

शान्त ब्रह्मवाद एवं ईश्वराद्वयवाद में दृष्टि-भेद—शङ्कराचार्य की अद्वैतवादी दृष्टि में ब्रह्म निष्क्रिय है—'अतः परं ब्रह्म सद्वद्वितीयं, विशुद्धविज्ञानघनं निरञ्जनं प्रशान्तमाद्यन्त-विहीनमक्रियं निरन्तरानन्दरसस्वरूपम्[३] ॥ काश्मीरिक अद्वैतवादी शैव एवं शाक्त परासत्ता को सक्रिय 'पञ्चकृत्यकारी' एवं 'कर्ता' मानते हैं—

'भगवन् देवदेवेश ! पञ्चकृत्यविधायक ।'
'अस्ति देवि ! परं ब्रह्म स्वरूपी निष्कलः शिवः ।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलाशयः[४] ॥
'जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छा तूलिकयात्मनि ।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति परमेश्वरः ॥'

शाङ्करवेदान्त में आत्मा या परमात्मा विश्वोत्तीर्ण, सच्चिदानन्द, अद्वैत, केवलरूप, एक, सृष्टि-स्थिति-लय का कारण, भावाभावविहीन तो है किन्तु उसमें कर्तृत्व नहीं है । वह ज्ञानस्वरूप तो है, किन्तु क्रिया से शून्य है । आगमिक अद्वैतवाद में ज्ञान एवं क्रिया परस्परान्वित हैं । जो ज्ञान है वही क्रिया है तथा जो क्रिया है वही ज्ञान है । स्वातन्त्र्यस्वभाव शिव में ज्ञान एवं क्रिया अविरोध रूप में स्थित है । अतः उसकी क्रिया ही उसका ज्ञान है एवं उसका ज्ञान ही उसकी क्रिया है ।

शङ्कराचार्य के मतानुसार जगत् की उत्पत्त्यादि का कारण परब्रह्म नहीं अपितु कार्यब्रह्म (ईश्वर, सगुण ब्रह्म) है । यह कार्यब्रह्म जगत् का निमित्त एवं उपादान दोनों कारण है, किन्तु परब्रह्म जगत् का विवर्तोपादान है । वेदान्त-परिभाषा के अनुसार जगत् का कारण ब्रह्म

---

१. तैत्तिरीयोपनिषद् ।
२. अथर्वण वेदोपनिषद् ।
३. शंकराचार्य : विवेकचूडामणि ।
४. कुलार्णवतन्त्र ।

नहीं माया है । वेदान्ती वाचस्पति मिश्र एवं सर्वज्ञ मुनि के अनुसार ब्रह्म जगत् का कारण तो है किन्तु सृष्टि आदि कर्म ब्रह्म का स्वरूप लक्षण नहीं तटस्थ (आगन्तुक, आकस्मिक) लक्षण है, जो कि नित्य नहीं अपितु अनित्य एवं औपाधिक है । आगमिक अद्वैतवाद में सृष्टि आदि व्यापार औपाधिक या तटस्थ लक्षण वाले नहीं हैं प्रत्युत स्वस्वरूपलक्षणात्मक एवं आत्मस्वभाव हैं । जीवात्मा भी परमात्मा के स्वभाव हैं—'स एव सर्वभूतानां स्वभावः परमेश्वरः[१] ।' कारण यह है कि जगत् उसकी परिणति मात्र ही तो है और उसके अतिरिक्त कुछ नहीं—'अस्यां परिणतायां तु न किञ्चित्परिदृश्यते ॥'

ईश्वराद्वयवाद एवं शान्तब्रह्मवाद में मुख्य भेदक तत्त्व ये ही हैं—'इह ईश्वराद्वयदर्शनस्य ब्रह्मवादिभ्यः अयमेव विशेषः ॥ यथा च शुद्धेत्वराध्वस्कारणक्रमेण स्वरूपविकासरूपाणि सृष्ट्यादीनि करोति तथा सङ्कुचितचिच्छक्तितया संसारभूमिकायामपि पञ्चकृत्यानि विधत्ते, तथापि तद्वत् पञ्चकृत्यानि करोति' ॥ (सूत्र १०)

अर्थात् ईश्वराद्वयवादी दर्शन का ब्रह्मवादियों से यही वैशिष्ट्य है कि (ईश्वराद्वयवादियों का परमशिव सृष्टि-स्थिति-संहार-निग्रह-अनुग्रहरूप पञ्चकृत्यों का निष्पादक है, किन्तु ब्रह्मवादियों का ब्रह्म निष्क्रिय है ।) यथा भगवान् अशुद्ध अध्वा के विकास-क्रम से स्वरूप-विकासात्मक सृष्टि आदि की रचना करते हैं उसी प्रकार चित् शक्ति के संकुचित हो जाने पर संसार-भूमिका में भी पञ्चकृत्य करते हैं[३] । इसीलिए आचार्य क्षेमराज ने अपने शिव को 'पञ्चकृत्यविधायी' कहकर नमस्कार किया है—'नमः शिवाय सततं पञ्चकृत्यविधायिने । चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्थावभासिने'[४] ॥

'लीला'—पञ्चकृत्यप्रचुरा आनन्दात्मिका विश्वक्रीड़ा ॥ 'लीला' परमशिव के पूर्वोक्त पञ्चकृत्यों से युक्त है । इन्हीं पञ्चकृत्यों के द्वारा शिव जगल्लीला का निष्पादन किया करते हैं । लीला पारमेश्वरी है—'लीला तु पारमेश्वरी' ॥ 'जगत्सृष्ट्यादिकं लीलामात्रं परमेश्वरस्य'[५] । परमशिव अपनी लीला द्वारा ही संसार को नामरूपों में विभाजित करता है—'हृदयस्थापि लोकानामदृश्या मोहनात्मिका । नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया[६] ॥'

'लीलावाद'—आचार्य पुण्यानन्दनाथ ने पञ्चकृत्यात्मक जगत् को शङ्कराचार्य की भाँति 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' स्वीकार न करके उसके विपरीत जगत् को भगवान् की 'लीला' स्वीकार किया है । जगत् के संबन्ध में आगमिकों एवं शाङ्कर ब्रह्मवादियों में जो भेद-दृष्टि है आचार्य पुण्यानन्दनाथ ने उसे भी 'लीला' शब्द प्रयुक्त करके पृथक् रूप में प्रस्तुत कर दिया है । 'लोकवस्तु लीलाकैवल्यम्' कहकर वेदान्तसूत्रकार ने जगत् को भगवान् की लीला स्वीकार किया है । शङ्कराचार्य ने शारीरकभाष्य (२।१।३२-३३) में इस 'लीला' शब्द का भी मिथ्यात्मक इन्द्रजाल अर्थ किया है, किन्तु आगमिक अद्वैतवाद में 'लीला' को परमसत्ता के आत्मविकास, स्वस्वरूप के बाह्योद्घाटन, स्वस्वरूपगोपनात्मिका क्रीड़ा, आत्मप्रच्छादनात्मक विश्वाभिनय आदि अर्थों में गृहीत किया गया है । इसे क्रीड़ाकौतुकी का नाट्य कहा गया है, अतः सदाशिव से लेकर क्षितिपर्यन्त समस्त प्रपञ्च 'क्रीड़ाकौतुकी' का नाट्य मात्र है—

---

१. परापञ्चाशिका ।
२. चतुश्शती ।
३. क्षेमराज : 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' ।
४. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् ।
५. नटनानन्दनाथ : 'चिद्वल्ली' ।
६. ललितोपाख्यान ।

(१) 'जगन्नाट्यं क्रीड़ाकौतुकी ।
(२) जगन्नाट्य क्रीड़ाकौतुकिनात्मना ।
(३) सदाशिवादि क्षित्यन्तं जगन्नाट्यं प्रकाशयेत्[१] ।

जगत् न तो शङ्कराचार्य का 'विवर्त' है और न तो रामानुज का 'परिणाम' प्रत्युत रसात्मिका लीला है – नृत्य है – नाट्य है – क्रीडा है –

१. इच्छा प्रवर्तते देवि ! कूटस्थस्य परात्मनः ।
ततश्च त्रिविधा लीला काले प्रादुर्भवेत्प्रिये[२] ॥
२. तथा प्रपञ्चं लीलेयं रसलीलापि तादृशी ॥
३. अक्षरात्मा तु भगवान् या लीला सृजते प्रभुः ।
४. न तस्येच्छा न कर्तव्या निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
तथापि बालवत् क्रीडन् कोटिब्रह्माण्डसंहतीः ॥
५. नृत्यन्तः परिच्छिन्न स्वस्वरूपावलम्बनाः ।
स्वेच्छया स्वात्मचिद्भित्तौ स्वपरिस्पन्दलीलया ॥
६. नानाभूमिकां प्रपञ्चं स्वपरिस्पन्दलीलयैव
स्वभित्तौ प्रकटयति इति नर्तक आत्मा ।
७. जगन्नाट्यक्रीडाप्रदर्शनाशयेनात्मना इति रङ्गः ।
तत्तद् भूमिकाग्रहणस्थानम् अन्तरात्मा ।
... परिस्पन्दक्रमेण जगन्नाट्यमाभासयति ।
८. योगिनः ... संसारनाट्यप्रकटनप्रमोदनिर्भरं स्वस्वरूपम् अन्तर्मुखतया साक्षात्कुर्वन्ति ।

जहाँ एक ओर ग्रन्थकार परमशिव को 'प्रकाशतनुः' कहकर उन्हें 'स्वयंप्रकाश' सिद्ध करता है (पर निरपेक्ष सत्ता सिद्ध करता है) वहीं उससे 'स्वातन्त्र्यवाद' की भी पुष्टि करता है। 'प्रकाशत्व' क्या है? 'प्रकाशं नाम इच्छामि, जानामि, करोमि—इत्युत्तमपुरुषान्तर्गतस्फुरण-रूपाहं परामर्श एव । ततश्च सर्वज्ञत्व-सर्वेश्वरत्व-सर्वकर्तृत्व-पूर्णत्वव्यापकत्वरूपपञ्चशक्ति-संवलितं परं ब्रह्म इत्युक्तं भवति'[३, ४] ॥

'महेशः' = महान् + ईशः महेशः 'महत्त्व' क्या है ? शिव का महत्त्व यह है कि वे देशकालानवच्छिन्नरूप है । उनका 'ईशत्व' यह है कि वे उनमें सर्वनियन्तृत्व है[४] । अथर्वणवेदोपनिषद् में महेश्वरत्व की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि—'अथ कस्मादुच्यते महेश्वरः ? सर्वान् लोकान् उद्गृह्णाति सृजति विसृजति वासयति, तस्मादुच्यते महेश्वरः ॥' उपनिषदन्तर में कहा गया है—'यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परस्स महेश्वरः ॥'

'बृहदारण्यकोपनिषद्' में पराभट्टारिका सहित परमात्मा को ही 'परमेश्वर' कहा गया है—'एवं पराभट्टारिकासहितः श्रीपरमेश्वरः । एष सर्वेश्वरः । एष भूताधिपतिः । एष

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी (क्षेमराज) । २. चिद्वल्ली । ३. चिद्वल्ली
४. 'एक एव प्रकाशाख्यः परः कोऽपि महेश्वरः ।
तस्य शक्तिर्विमर्शाख्या सा नित्या गीयते बुधैः ॥' (सं० प०)

भूतपालः । एष सेतुर्विधरणः एषा लोकानामसम्भेदाय ॥'[१] इस प्रकार महेश्वर सर्वेश्वर, भूताधिपति, भूतपाल, सेतु आदि हैं ।

'प्रकाश' आत्मा का स्वरूप है और 'विमर्श' प्रकाशरूप परमात्मा के स्वरूप की प्रतीति है । यह विमर्श, ही उसकी अपनी महेश्वरता की पूर्ण प्रतीति है—'स एव विमृशत्वेन नियतेन महेश्वरः'[२] ।

पारमार्थिक दृष्टि से देखा जाय तो 'प्रकाश' ही विमर्श भी है, शक्ति भी है—

'शक्तिमानेव शक्तिः स्याच्छिववत्करणार्थतः ।
शक्तेः स्वातन्त्र्यकार्यत्वाच्छिवत्वं न क्वचिद् भवेत्' ॥

क्योंकि— 'न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी ।
शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते' ॥ (शिवदृष्टि)

भास्कररराय मखिन् ने उस परमशिव की 'प्रकाश' कहकर वन्दना की है और कहते हैं कि वह इतना महान् प्रकाश है कि उसे देख लेने पर आँखें ऐसे चौंधिया जाती हैं कि फिर कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता । 'स जयति महान् प्रकाशो यस्मिन् दृष्टे न दृश्यते किमपि ॥' (वरि० रह०)

'जगत्' स्वात्मभित्ति पर स्वपरिस्पन्दं लीला द्वारा आत्मप्रच्छादन के माध्यम से किया गया एक स्वेच्छाकृत आत्माभिनय है । यह विमर्श शक्ति की आत्मपरिणति है—'विश्वाकारप्रथा षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मना परिणता विमर्शशक्तिः[३] ।' यह पराशक्ति की आत्मपरिणति है—'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी' ।

जहाँ शङ्कराचार्य जगत् को जड़ कहते हैं वहीं आगमिक उसे चेतन मानते हैं—चैतन्यमेव विश्वस्य स्वरूपं पारमार्थिकम्' । 'परमशिव एवात्मा प्रपञ्चस्येति कथ्यते[४] ॥' यही है आगमिकों का सर्वचिन्मयवाद ।

'लीलावाद' का प्रतिपादन करके पुण्यानन्दनाथ ने दर्शनशास्त्र की इस भयानक गुत्थी को भी सुलझा दिया है कि सृष्टि का प्रयोजन क्या है ? क्रीड़ा एवं लीला का कोई प्रयोजन नहीं होता, अतः यदि सृष्टि 'लीला' है तो रसानन्दाप्ति के अतिरिक्त उसका कोई प्रयोजन नहीं है । यही दृष्टि शैव-शाक्त दर्शन की भी है ।

'विनोदनोद्युक्तः'—क्रीडोन्मुख (लीला के द्वारा निष्पाद्य), क्रीड़ा में जागरूक ।

'उद्युक्त'—सृष्टि की ओर उन्मुख । 'एकोऽहं बहुस्याम' के सङ्कल्प से युक्त । परमशिव क्रीड़ाकाम होकर ही सृष्टि करता है । उसकी क्रीड़ा ही जगत् है—

'क्रीडन्करोति पादावधर्मांस्तद्धर्मधर्मतः ।
तथा प्रभुः प्रमोदात्मा क्रीडत्येवं तथा तथा[५] ॥'

---

१. शिवसूत्रवार्तिक (वरदराज) ।
२. माहेश्वर तन्त्र ।
३. दीपिका (अमृतानन्द योगी) ।
४. शिवसूत्रवार्तिक (वरदराज) ।
५. शिवदृष्टि ।

(ख) महेश्वर के विश्वातीत स्वरूप का विवेचन—

आचार्य पुण्यानन्दनाथ श्लोक की एक अर्द्धाली द्वारा महेश्वर के 'विश्वमय' स्वरूप का विवेचन करके अब उसकी उत्तरवर्त्ती अर्द्धाली द्वारा उसके 'विश्वातीत' स्वरूप का विवेचन करते हैं ।

'अन्तर्लीनविमर्शः'—वे महेश जिनमें विमर्शशक्ति-लयीभूत है । 'अन्तर्लीन विमर्शः' कहकर पुण्यानन्दनाथ इस तथ्य की ओर भी इंगित करना चाहते हैं कि विमर्शशक्ति कोई आगन्तुक तत्त्व नहीं है, प्रत्युत वह प्रलयकाल में भी शिव के भीतर पराशक्ति के रूप में विद्यमान रहती है, नित्य है, चिन्मय है और शिव से अभिन्न है और शिव उसी के माध्यम से पञ्चकृत्यों का निष्पादन कर पाते हैं । महेश में विमर्श के अवस्थान का स्मरण दिलाकर पुण्यानन्दनाथ ने शिव के साथ ही शक्ति की भी महत्ता को रेखांकित करते हुए आगमिकों के 'द्वयात्मक अद्वयवाद' वाले विशिष्ट सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया है ।

अन्तर्लीनत्व = अन्तर्मुखत्व । शिव की अन्तर्लीन विमर्शावस्था वह आत्मोन्मुखी (निमेषरूपा) अवस्था है, जिसमें 'पूर्णाहन्ता' अन्तरामिभुखी रहती है । यह 'इदम् प्रत्यय' से पृथक् अवस्था है । इस अन्तर्लीनावस्था में समस्त जगत् बीज में अव्यक्तता स्थित वृक्ष की भाँति स्थित रहता है—'यथा बीजे वृक्षस्तथा षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकं विश्वं परायां कारणता तन्मात्रतामास्थितम्[१] ॥'

अभिनवगुप्तपादाचार्य ने भी इसी अवस्था की ओर सङ्केत करते हुए कहा है—

'अन्तर्विभाति सकलं जगदात्मनीह यद्वद्विचित्ररचना मुकुरान्तराले ।
बोधः पुनर्निजविमर्शनसारवृत्या विश्वं परामृशति नो मुकुटस्तथा तु ॥'

'विमर्श' क्या है ? 'नित्याषोडशिकार्णव' में कहा गया है कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश-रूपिणी पारमेश्वरी परमा शक्ति त्रिपुरा ही 'विमर्श' है—'एषा सा परमा शक्तिरेकैव परमेश्वरी । त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्वीशरूपिणी ॥' आचार्य शिवानन्द कहते हैं कि यही परमा शक्ति ही विमर्श है—'परमा शक्तिरिति विमर्शरूपा[२] ॥' आचार्य अमृतानन्दनाथ का कथन है कि प्रकाशात्मक दीपक रूप शिव की प्रभारूप शक्ति ही 'विमर्श' है—'शिवस्य प्रकाशात्मनो दीपस्य शक्तिर्विमर्शाख्यैव प्रभा' यही मेयमातृ- प्रमा-प्रमाण से सङ्कुचित होकर विश्व बन जाती है—'विश्वाकारामेयमातृप्रमाप्रमाणभेदैः सङ्कुचद्रूपा ॥'

यही 'विमर्शशक्ति' ३६ तत्त्वों के रूप में परिणत हो जाती है—'विश्वाकारप्रमा षट् त्रिंशत्तत्त्वात्मना परिणता विमर्शशक्तिः[४] । 'इदम् प्रत्यय' का संवेदन ही 'विमर्श' है और यह 'इदम्' ही विश्व है । 'इदम्' प्रपञ्च–परामर्श है और अनुभव का विषय रूप यह जगत् ही 'इदम्' है । प्रलयावस्था में यह 'इदम्' ही 'अहम्' में लय हो जाता है । 'विमर्श' इस अनुभूति का भी परिचायक है कि—'मैं सृष्टि-स्थिति-प्रलय का अनुत्पन्न मूल कारण हूँ ।' इसीलिए नागानन्द ने कहा है कि 'विमर्श' एक अनुभूति है और यह अनुभूति 'विश्वाकारेण' 'विश्वप्रकाशेन' एवं 'विश्वसंहारेण' रूप में प्रस्तुत होती है—'विमर्शो नाम विश्वाकारेण

---

१. दीपिका ।
२. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् ।
३. ऋजुविमर्शिनी टीका ।
४. ऋजुविमर्शिनी टीका ।

वा, विश्वप्रकाशेन वा विश्वोपसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम् । तस्यां तल्लीनत्वं नाम अन्तर्मुखत्वम्' । विमर्श 'पूर्णाऽहम्भावना' है[१] । इसी का परिचय 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः' (प्रत्य० हृ०) सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है । सदाशिव से भूमि पर्यन्त विश्व की सिद्धि रूप, निष्पत्ति-स्थिति रूप प्रकाशन एवं परप्रमाता में विश्रान्तरूप, संहार के लिए स्वतन्त्र, अनुत्तर विमर्शमयी, शिवभट्टारक से अभिन्न, पराशक्ति भगवती चिति ही विश्व का मूल कारण है—'पराशक्तिरूपा चितिः एव भगवती स्वतन्त्रा अनुत्तरविमर्शमयी शिवभट्टारकाभिन्ना हेतुः कारणम् ॥'

प्रकाशमूर्त्ति भगवान् परमशिव अपने को 'विमर्शांश' में विभक्त कर लेते हैं[२] । यही चिद्विमर्शशक्ति चिदात्मभित्ति पर विश्व का आमर्शन करती है और यह पूर्णविचिकीर्षा समन्विता है—'चिदात्मभित्तौ विश्वस्य प्रकाशामर्शनि यदा । करोति स्वेच्छया पूर्णा विचिकीर्षा समन्विता[३] ॥'

'इदन्तया हृदयङ्गमीभाव ही 'विमर्श' या 'आमर्शन' है'—'इदन्तया हृदयङ्गमीभावो विमर्श एवामर्शनम्'[४] । 'नित्याषोडशिकार्णव तन्त्र' में इस शक्ति के अन्तर्लीन स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—'कवलीकृतनिश्शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी । अस्यां परिणतायां तु न कश्चित् पर इष्यते ॥' प्रलयावस्था में समस्त तत्त्व इसी पराशक्ति में लीन हो जाते हैं और वह स्वस्वरूप में स्थित हो जाती है । प्रपञ्च का 'सङ्कोच' ही पराशक्ति है तथा विकास परमशिव है—'सङ्कोचः परमा शक्तिः विकासः परमशिवः'[५] । इस प्रकार सङ्कोच-विकासात्मक यह जगत् शिवशक्त्यात्मक है ।

नटनानन्दनाथ ने ठीक ही कहा है कि जगत् की उत्पत्ति स्थिति एवं लय के हेतु अकृत्रिम अहम्भावपरामर्श को ही 'विमर्श' कहते हैं—'जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुभूता कृत्रिमाहम्भावपरामर्शो विमर्शः[६] ॥'

'अन्तर्लीनविमर्शः' का अर्थ है—'स्वात्मसात्कृताखिलप्रपञ्चपरिपूर्णाहम्भावभावनागर्भितपरमात्मा'[७] ।

'प्रकाशमात्रतनुः'—वे महेश्वर प्रकाशशरीरी हैं । परमशिव अपने को दो रूपों में व्यक्त करते हैं—(१) 'प्रकाश' एवं (२) 'विमर्श' । 'प्रकाश' शिव की एवं 'विमर्श' शक्ति की आख्या है । विश्वातीत परमशिव प्रकाशैकस्वभाव है । 'प्रकाश' उसका स्वभाव है । विश्व को प्रकाशित करने का परम कारण होने से एवं स्वप्रकाश होने से शिव को 'प्रकाश' कहा गया है । वह परम ज्योति है और उसकी ज्योति से ही सभी ज्योतित होते हैं, इसीलिए उसे 'प्रकाश' या 'ज्योति' कहा गया है—'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' । छान्दोग्य श्रुति में भी ऐसा ही कहा गया है—'यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते । तं देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम्' ॥ उस शिव का आत्मस्वरूप ज्योति है—'स्वरूपज्योतिरेवान्तः परावागनपायिनी । वन्दे ज्योतिरनुत्तरम् ॥'

---

१. चिद्वल्ली (नटनानन्दनाथ) ।
२. दीपिका (अमृतानन्द) ।
३. योगिनीहृदय ।
४. दीपिका (अमृतानन्द) ।
५. संकेतपद्धति ।
६. चिद्वल्ली ।
७. चिद्वल्ली ।

'मैं इच्छा करता हूँ, मैं जानता हूँ, मैं करता हूँ'—इस प्रकार उत्तमपुरुष के अन्तर्गत ऐसा स्फुरण रूप अहंपरामर्श ही 'प्रकाशत्व' है । सर्वज्ञत्व, सर्वेश्वरत्व, सर्वकर्तृत्व, पूर्णत्व, व्यापकत्व रूप पञ्च शक्ति से संवलित होना ही 'प्रकाशत्व' है[१] । वे शिव 'ज्योतिषां ज्योतिरेकः' हैं । कण्व कहते हैं—'देवगण उसकी उपासना करते हैं, जो अमर है, जो स्वयं जीवन है और जो ज्योतियों की भी ज्योति है ।' कठ श्रुति में कहा गया है कि वहाँ न तो सूर्य चमकता है और न तो वहाँ चन्द्रमा एवं तारे हैं । वहाँ बिजली भी नहीं चमकती तो भला वहाँ अग्नि की पहुँच कहाँ ? सभी प्रकाशमान पिण्ड उसी से अपना प्रकाश प्राप्त करते हैं ।'

'प्रकाश' अहंरूपात्मक आत्मविमर्श है । 'प्रकाश' अहन्ता की एक विराट् अनुभूति है, जो कि शास्त्रों में 'काम' (इच्छा), 'ज्ञान' एवं क्रिया द्वारा संकेतित की गई है । अहं रूप विमर्श ही 'प्रकाश' है । यह अहं रूप विमर्श (अहन्ता की अनुभूति) इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया आदि प्रयुक्त शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है और इसमें पञ्च शक्तियाँ समवेत हैं ।

'महेश'—महत्तम प्रभु । अन्यतम शक्तिसम्पन्न शिव । प्रश्न उठता है कि यदि सूर्यादिक अन्य प्रकाशमान पिण्ड भी ज्योतिष्मान् हैं तब अकेले शिव को ही प्रकाश क्यों कहा जाय? इस शङ्का के निराकरणार्थ ही 'महेश' शब्द का प्रयोग किया गया है । शिव का नाम महेश इसलिए है क्योंकि वे समय एवं काल दोनों की सीमाओं से परे हैं तथा वे सभी पर शासन करने में सक्षम हैं । जो सर्वोपरि एवं सर्वातीत है वही 'महेश' है । आथर्वणवेदोपनिषद् में शिव के माहेश्वर कहे जाने का कारण इस प्रकार दिया गया है । 'अथ कस्मादुच्यते महेश्वरः । सर्वान् लोकान् उद्गृह्णाति सृजति विसृजति वासयति, तस्मादुच्यते महेश्वरः ॥'

पातु—रक्षा करें । महेश से रक्षा करने की प्रार्थना इसलिए की गई है क्योंकि वे सर्वसमर्थ होने से रक्षा करने में सक्षम हैं तथा रक्षा करना उनका एक कृत्य एवं उनकी एक शक्ति है । इसीलिए उन्हें मन्त्र भी कहा गया है, क्योंकि 'मननात् त्रायते अस्मात् इति मन्त्रः' इस व्याख्या के अनुसार मनन करने से त्राण करने वाले को 'मन्त्र' कहा जाता है ।

'अन्तर्लीनविमर्शः महेशः'—'वे परमशिव जिनके भीतर विमर्शशक्ति लयीभूत (लीन) है ।' इस वाक्यांश द्वारा ग्रन्थकार ने प्रपञ्च के उस स्तर को संकेतित किया है जिसे तान्त्रिक दर्शन में 'अभेद भूमि' कहते हैं । विश्व-प्रपञ्च के तीन स्तर हैं —

(१) **अभेद भूमि –**

(क) विश्वोत्तीर्ण शिव—'परमशिव'—इच्छा का प्रथम स्पन्द–शक्ति । विश्व का बीजात्मना अवस्थान ।

(ख) 'सदाशिव'—विश्व की अंकुरायमाण स्थिति, अस्फुट स्थिति ।

(२) **भेदाभेदभूमि—**

(क) 'ईश्वर'—विश्व की अंकुरित स्थिति, स्फुट स्थिति ।

(ख) 'शुद्ध विद्या'—विश्व की स्फुटतर स्थिति, किन्तु सर्वत्र प्रकाशमय ।

---

१. चिद्वल्ली ।

(३) **भेदभूमि** — 'मायाभूमि'—प्रमाता चिन्मय, किन्तु प्रमेय जड़ ।

(क) 'अभेद भूमि का विमर्श : 'अहमस्मि' ।
(ख) 'भेदाभेदभूमि' का विमर्श : 'अहमिदम्' ।
(ग) 'भेदभूमि का विमर्श' : 'इदमहम्' ।

अभेद की भूमिका में शिव शक्त्यात्मना स्थित हैं । वहाँ का प्रत्यय (परामर्श) 'अहं' या 'अहमस्मि' तक ही है । यहाँ 'इदं' का सर्वथा अभाव है । अभेदभूमि है— 'व्यपदेष्टुमशक्त्यासौ अकथ्या परमार्थतः ॥' (विज्ञानभैरव) यहाँ न शिव का पता है और न तो शक्ति का । वस्तुतः यह अवस्था न विश्वमय है और न विश्वोत्तीर्ण । इसीलिए कहा गया है कि यह स्थिति—'व्यपदेष्टुमशक्या' एवं 'अकथ्या' है ।

'परमार्थसार' में इस शिव के स्वरूप का इस प्रकार निदर्शन किया गया है—

'भारूपं परिपूर्णं स्वात्मनि विश्रान्तितो महानन्दम् ।
इच्छासंवित्किरणैर्निर्भरितम् अनन्तशक्तिपरिपूर्णम् ॥ १० ॥
सर्वविकल्पविहीनं शुद्धं शान्तं लयोदयविहीनम् ।
यत् परतत्त्वं तस्मिन् विभाति षट्त्रिंशदात्म जगत्' ॥ ११ ॥ इति ॥ १ ॥

इत्यागमसिद्धान्तरीत्या पराभट्टारिकाया अपि सर्वकारणत्वमाह—

सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरुपमाकारा ।
भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः ॥ २ ॥

(निर्मलदर्पणस्वरूपिणी आद्या विमर्शशक्ति (महात्रिपुरसुन्दरी) के स्वरूप का निदर्शन)

आद्यतमा, आत्मसुखविश्रान्त, शाश्वतसत्ताक, अनुपमेयाकारा, भविष्योत्पन्न निःशेष स्थावरजङ्गमात्मक जगत् की बीज एवं शिव के आत्मसाक्षात्कार के लिए विमल मुकुरस्वरूपा वह (विमर्शशक्ति) (सभी को अतिक्रान्त करके) सर्वोपरि स्थित है ॥ २ ॥

* चिद्वल्ली *

सा आद्या शक्तिरनवच्छिन्ना पराभट्टारिका महात्रिपुरसुन्दरी जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । सैव शिवादिक्षित्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वमयसर्वप्रपञ्चात्मिका तदुत्तीर्णा चेति सर्वोपनिषत्प्रसिद्धा त्रिपुरा अभिधीयते । एवं हि सत्सम्प्रदायविद्भिः महायोगिभिः पुरुषैः त्रिपुराशब्दनिर्वचनं क्रियते । कथं त्रिभ्यस्तेजोऽबन्नादिभ्यः पुरा भूता त्रिपुरेति । तेजोऽबन्नादिभ्यः पूर्वसत्त्वमेव हि सर्वतत्त्वातिक्रान्तत्त्वं ब्रह्मणः तद्द्वारा सर्वतत्त्वात्मकत्वं च उपनिषदप्येवमेवाह—

तथा छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके—'श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तं ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यम् ।' इति पुत्रस्य वेदाध्ययनादिरूपब्रह्मचर्यं विधाय—'स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षस्सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचानमानीस्तब्ध एयाय, तं ह पितोवाच, स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम् ॥ इत्यादिना

शिष्ययोग्यतां निश्चित्य आचार्यो ब्रह्मविद्यामुपादिशत् । तत्र एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानद्वारा सर्वतत्त्वानां तन्मयत्वमुक्तम् । तत्र दृष्टान्तमाकाङ्क्षमाणः शिष्यः पृच्छति । 'कथं नु भगवः स आदेशो भवति ।' इति—

'यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ।' इत्यादिदृष्टान्तपरम्परया परब्रह्मणो विश्वात्मकत्वं तदुत्तीर्णत्वं चाभ्युत्थाय अनन्तरं च—'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्, एकमेवाद्वितीयम्' इत्यादिना विश्वातीतं वस्त्वभिधाय पुनश्च विश्वात्मकमभिधत्ते—'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति सङ्कल्प्य तत्तेजोऽसृजत इति तेजोऽबन्नानि सृष्ट्वा सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ।' तासां त्रिवृतमेकैकां करवाणि सेयं देवता इमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् । तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोदित्यादिना तेजोऽबन्नानामहम्भावेन ब्रह्मणः सर्वपूर्ववर्तित्वं सर्ववस्तुपूरकत्वं च स्वस्वरूपकमित्युक्त्वा तेजोऽबन्नात्मकमेव देवादिस्थावरान्तं तत्त्वजालमाचष्टे । यथा वा अपादाग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यमित्यादिना अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुः तत्पुरीषं भवति । यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्तन्मनः इत्यादिना त्रिवृत्कृतप्रपञ्चपूरणात्रिपुरैव परब्रह्मेत्यभिधीयते ।

इममेवार्थमुत्तरत्र ग्रन्थकारः—

'षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या ।' इति ।

स्मृतिरपि—विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां हृदयं परमेशितुः । इति ।

श्रीवामकेश्वरतन्त्रेऽपि—

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरी ।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका ।
कवलीकृतनिश्शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी ॥ इति ।

श्रीस्वच्छन्देऽपि—

नात्र कालः कलाभावः नैकता न च देवता ।
सुनिर्वाणं परं तत्त्वं रुद्रवक्त्रं तदुच्यते ॥
शिवशक्तिरितिख्यातं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
पश्यातीतं वरारोहे वाङ्मनोऽतीतमद्भुतम् ॥
अनिष्कलं च सकलं नीरूपं निर्विकल्पकम् ।
निर्द्वन्द्वं परमं तत्त्वं शिवाख्यं परमं पदम् ॥ इति ।

अस्मदुक्तसच्चिदानन्दवासनायां च—

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम् ।
परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम् ॥

इत्यादि बहुश्रुतिस्मृत्यादिषु सर्वोत्कृष्टत्वं त्रिपुरायास्तत्र तत्र चोद्घोष्यते । एतदेव विवृणोति—निजसुखमयनित्यनिरुपमाकारेत्यनेन—निजः स्वाभाविकः । सुखमयः दुःख-सम्भिन्नानन्दरूपः । नित्यः सार्वकालिकः । निरुपमः निस्समाभ्यधिकः । आकारः स्वरूपं यस्यास्सा । तदयमर्थः—निरवधिकाकृत्रिमात्मानन्दरूपिणीति । तथैवोपनिषत्—'तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् । स एको मानुष आनन्दः' इत्युपक्रम्य 'स एकः प्रजापतेरानन्द' इत्यन्तम् उत्तरोत्तरशतगुणितक्रमेण मनुष्यादिचतुर्मुखपर्यन्तं पुरुषाणामानन्द-परम्परामुपन्यस्य 'स एको ब्रह्मण आनन्दः स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः' इति । सर्वोत्कृष्टानन्दब्रह्मणः सर्वात्मकत्वं सर्वोत्तीर्णत्वं वक्ति । उपनिषदन्तरेऽपि—'भूमैव सुखं भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः' इत्युक्त्वा 'यत्र नान्यत्पश्यति, नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा' इति अपरिच्छिन्नानन्दमयमेव ब्रह्म श्रूयते । तथा च एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति, इतरेषां ब्रह्मानन्दसमुद्रविप्रुट्त्वमुच्यते । वामकेश्वरतन्त्रे चतुश्शत्यां—

प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम् ।
अद्यापि यस्या जानन्ति न मनागपि देवताः ॥
नित्यानन्दघनं परम् । इति ।

नित्यानन्दे निरुपमपदे निर्मले निर्विकल्पे इति निष्यन्दमानसुखबोधसुधास्वरूपेति परमानन्दसन्दोहप्रमोदभरनिर्भर इति परमानन्दसम्पूर्णपदसौभाग्यदायकमित्याद्यभियुक्तमोक्त्या च सच्चिदानन्दस्वरूपिणी त्रिपुरेति निश्चीयते । भाविचराचरबीजं भाविनोरुत्पद्यमानयोश्चराचरयोः स्थावरजङ्गमयोर्बीजं योनिः कारणमित्यर्थः । यजुश्श्रुतिः—'यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः [१] हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु । स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिः ज्ञः कालकालोगुणीसर्वविद्यो यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोतीति स ईशोऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय । एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं बीजं बहुधा यः करोति' इत्यादिर्द्रष्टव्यः । आगमश्च—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः ॥
यथा न्यग्रोधबीजस्थशक्तिरूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥

ललितोपाख्याने च—

या ससर्ज विधातारं सर्गादौ वारिपूरितम् । इति ।

परावासनायामपि—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वयमेवात्मविग्रहम् ।
स्वयमेव समालोक्य सन्तुष्टां परमाद्भुताम् ॥
प्रकाशजीवसंलीनविमर्शात्मस्वरूपिणीम् ॥ इति ।

---

१. प्रभवश्चोद्भवश्च इति पाठान्तरम् ।

ननु शिवस्य जगन्निर्मातृत्वं शक्त्या विना न सङ्गच्छेत् । एवं पराशक्तेरपि परमशिवेन विना कारणत्वं न बोभवीति तत्कथमुच्यते—भाविचराचरबीजमिति—अत आह शिवरूप-विमर्शनिर्मलादर्श इति—शिवस्य स्वरूपमहमित्येवमाकारं तस्य विमर्शः परामर्शः । परा-मर्शनमहमित्येवं रूपं ज्ञानम् । तस्य प्रकाशने निर्मलादर्शः सम्यक् प्रकाशनचतुर इत्यर्थः । अयमर्थः—यथा सिंहासनारूढः कश्चिद्राजा अतिसुन्दरः स्वात्माभिमुखावस्थितस्वच्छ-दर्पणतले स्वात्मप्रतिबिम्बं सम्यक् प्रसमीक्ष्य तत्प्रतिबिम्बं अयमहमिति जानाति । एवं परमेश्वरोऽपि स्वाधीनभूतां स्वात्मशक्तिं सम्यगवलोक्य स्वस्वरूपमवगच्छति परिपूर्णोऽह-मिति एवं च दर्पणस्य स्वसन्निहितवस्तुसम्बन्धाभावे स्वान्तर्गतप्रतिबिम्बावभासनमनुपपन्नं भवति । तद्वत् पराशक्तिरपि परमशिवसम्बन्धाभावे स्वान्तस्थितप्रपञ्चनिगरणं न सङ्घटत इत्यर्थात् लभ्यमेवैतत् । तस्मान्न केवलेन शिवेन वा केवलया शक्त्या वा जगन्निर्मीयते । किन्तु उभाभ्यामेव कामकामेश्वराभ्याम् अखिलं तत्त्वजातमातन्यते । यथा श्वेताश्वतरो-पनिषदि—'य एको जालवानीश ईशनीभिः सर्वान्लोकानीशत ईशनीभिः य एवैक उद्भवे सम्भवे च । य एको वर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति । विचैतिचान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयनक्तु' इति । यथोक्तमभियुक्तैश्च—

स्वेच्छाविभावितानन्दजगद्रश्मिविलासवत् ।
नौमि संविन्महापीठं शिवशक्तिपदाश्रयम् ॥ इति ।
अखण्डितस्वभावोऽपि विचित्रां मातृकल्पनाम् ।
स्वहन्मण्डलचक्रे यः प्रथयेत्तं नुमश्शिवम् ॥ इति ॥ २ ॥

* सरोजिनी *

(आचार्य पुण्यानन्दनाथ ने महात्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया है— (१) महात्रिपुरसुन्दरी (विमर्शशक्ति) विश्व की सर्वाद्य सत्ता है। (२) वे विश्व की सर्वोच्च महाशक्ति हैं। (३) वे नित्य हैं। (४) वे चराचर जगत् की बीज हैं। (५) वे अनुपमेयाकारा (अनिर्वचनीया) हैं। (६) वे शिव के आत्मसाक्षात्कारार्थ निर्मल दर्पण हैं। (७) वे स्वाभाविक निजानन्द में लीन हैं। (८) वे अद्वितीयाकारा या अतुल्यस्वरूपा हैं। (९) वे सृष्टि, तथा सृष्टि के समस्त अस्तित्वों (सत्ताओं) को अतिक्रान्त करके सर्वोपरि स्थित हैं। (१०) वे महाविजयिनी महाशक्ति हैं।)

'सा जयति शक्तिराद्या'—वे पराभट्टारिका महात्रिपुरसुन्दरी आद्याशक्ति (सभी को अतिक्रान्त करके) सर्वोपरि स्थित हैं। 'सा' = महात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिका विमर्श शक्ति।

उपनिषदों में कहा गया है कि इन्हीं त्रिपुरा देवी में शिव से लेकर क्षिति पर्यन्त समस्त ३६ तत्त्व निहित हैं। वे 'सर्वप्रपञ्चात्मिका' हैं—विश्व के अनन्त रूपों में वे ही स्थित हैं। वे 'तद्रूप' एवं तदुत्तीर्ण (विश्वात्मिका एवं विश्वोत्तीर्ण) दोनों हैं—वे विश्व भी हैं और विश्वातीत भी हैं—साकार भी हैं और निराकार भी हैं—व्यक्त भी हैं और अव्यक्त भी हैं। अन्य शास्त्रकारों ने कहा है कि वह त्रिरूपात्मक तेजों (सूर्य–चन्द्र–अग्नि) से ऊपर स्थित हैं और 'त्रिपुरा' शक्ति कहलाती हैं—'तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षिणी । अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा अधिष्ठायै नामजरा पुराणी । महत्तरा महिमा देवतानाम् ॥' आचार्य भास्करराय ने

इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि 'त्रिपुरा' वह शक्ति है जो तीनों पुरों की अधीश्वरी है और जिसके तीन पन्थ हैं—(१) सामीप्य, सारूप्य एवं सायुज्य का पन्थ, (२) सालोक्य का पन्थ एवं (३) कैवल्य मुक्ति का पन्थ । वह 'विश्वचर्षिणी' है (समस्त प्राणियों की उत्पादिका है), विश्व उसकी प्रजा है और वह अकथ-अक्षरा है (अकारादि १६, ककारादि १६ एवं थकारादि १६ अक्षर रूपों में सन्निविष्ट हैं) । वह जराशून्य अपूर्वपुरातन, आद्यतमा एवं समस्त देवताओं की महिमा का अधिष्ठान है । वह 'विश्वचर्षिणीं' और परब्रह्म की सिसृक्षा है ।

'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति' 'सोऽकामयत तपोऽकुरुत' एवं 'स्वाभाविकी ज्ञानबल-क्रिया च' आदि वाक्यों द्वारा उसे ब्रह्म की अभिन्न एवं प्राथमिक वृत्ति (इच्छा–ज्ञान–क्रिया) का रूप माना गया है । वही वृत्ति इच्छा–ज्ञान–क्रिया के समष्टि रूप से 'शान्ता'; पश्यन्ती—मध्यमा—वैखरी के समष्टि रूप से 'परा' एवं वामा-ज्येष्ठा-रौद्री के समष्टि रूप से 'अम्बिका' कही गई है । वह शान्तात्मिका देवता ही श्रीचक्र में स्थित बिन्दुचक्र है—'प्रसृतं विश्वलहरी स्थानं मातृत्रयात्मकाम् । बैन्दवं चक्रं'—यह वह महाशक्ति है जिसके बिना शिव भी 'शव' हो जाता है—'शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः ।' और इससे युक्त होने पर शिव 'शक्तिमान्' कहलाने लगते हैं, किन्तु उसके बिना वे हिल भी नहीं सकते—'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं, (आनन्दलहरी) न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥'

'निजसुखमयनित्यानिरुपमाकारा'—'निजसुखमय'—स्वस्वभाव में निहित परमानन्द से युक्त । 'निज' = स्वाभाविक, स्वभाव में निहित, प्राकृतिक । 'सुखमय' = आनन्दपरिपूर्ण । चूँकि शक्ति–शक्तिमान् अभिन्न हैं अतः ब्रह्म के आनन्दमय होने के कारण उसकी स्वाभिन्ना शक्ति भी आनन्दमयी है । 'आनन्द' ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है—'आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम् । तस्याभिव्यञ्जकं द्रव्यं योगिभिस्तेन पीयते ॥'

'विमर्शशक्ति' आनन्दरूपा है । परमात्मा की जो ५ शक्तियाँ हैं उनमें एक शक्ति 'आनन्द शक्ति' भी है । वह शक्ति जिसके द्वारा परमेश्वर निरतिशय आनन्द का (बाह्य वस्तु की अपेक्षा किये बिना) स्वयं अनुभव करता है । वही है—'स्वातन्त्र्यरूपा आनन्दशक्ति'–'आनन्दः स्वातन्त्र्यं, स्वात्मविश्रान्तिः स्वभावाह्लादप्राधान्यात्' (तन्त्रसार) ॥

'निजसुखमय' पदावली का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि जहाँ सांसारिक प्राणी 'परमसुखमय' होते हैं — स्वपृथग्भूत पदार्थों एवं ऐन्द्रिय भोगों द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं वहीं 'विमर्शशक्ति' आनन्दरूपा होने के कारण अपनी आनन्दाप्ति के लिए परापेक्षी नहीं है प्रत्युत निजसुखापेक्षी है और इसीलिए उसे 'निजसुखमय' कहा गया है । इसीलिए उसे 'नित्या-षोडशिकार्णव' में 'परमानन्दरूपिणी' कहा गया है । 'प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम् ॥' यही मूल एवं शाश्वत आनन्दशक्ति सृष्टि का मूल केन्द्र भी है—'आनन्दाद्ध्येवा खल्विमानि भूतानि जायन्ते' । वैष्णव दर्शन में भी मूल शक्ति को 'आह्लादिनी शक्ति' कहा गया है ।

'नित्या'—त्रिकालाबाधित शाश्वत शक्ति । नित्य वर्तमान **'निरुपमाकारा'** अनुपमेया । (चूँकि विश्व में ऐसी कोई सत्ता नहीं है जिससे कि इस शक्ति की तुलना की जा सके, अतः उसे 'निरुपमाकारा' कहा गया है ।

'आकार' = स्वस्वरूप । निरुपमेयता उस शक्ति का स्वरूप है, उसकी प्रकृति है । उनका स्वभाव ही नित्य एवं असीम आनन्द है, अतः उन्हें 'नित्या रूपमाकारा' कहा गया है । छान्दोग्य श्रुति में इसी आद्याशक्ति को 'भूमा' एवं 'सुख' कहा गया है ।

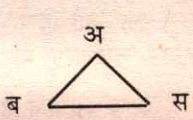
'भाविचराचरबीजम्' = भविष्य में उत्पन्न होने वाले चराचर जगत् का बीज (मूल कारण) । 'शक्ति' सृष्टि का मूल बीज है । शाक्त दर्शन के अनुसार 'प्रकाश' (प्रकाशित करने) एवं 'विमर्श' (प्रतिबिम्बित करने) एक ही तत्त्व के दो पक्ष हैं । शक्ति की इस विमर्शरूपता के कारण ही जगत् की अभिव्यक्ति होती है और यह जगत् शक्ति या शक्तिमान् की स्वतः सञ्चालित इच्छा की अभिव्यक्ति है । 'विमर्श' का अर्थ है—'परिपूर्णोऽहं' (I am all) (मैं सबकुछ हूँ) की अनुभूति । जीव की अनुभूति है—'I am I' (मैं मैं हूँ) एवं शिव की अनुभूति है 'I am all' । यह 'I am all' की अनुभूति ही 'विमर्श' है ।

शाक्त दर्शन के अनुसार मूल शक्ति की अभिव्यक्ति तीन प्रकार से होती है—आद्यमूला शक्ति तो गुणातीता है—विश्वातीता है, अतः सृष्टि से परे है ।

जब इस मूलभूता आद्या शक्ति में सिसृक्षा उत्पन्न होती है तब इसका स्वरूप एक 'बिन्दु' के समान होता है और इस बिन्दु के प्रतीक के रूप में इच्छाएँ आसपास घनीभूत एवं केन्द्रीभूत हो उठती हैं । यह प्रतीकस्वरूप बिन्दु 'पर बिन्दु' या अनुभवातीत बिन्दु है । यह स्थिति है सृजनप्राक् अवस्था की । इस सृजन प्राक् स्थिति में शक्ति का केन्द्रीयकरण रहता है और इस स्तर पर 'अहं' (Ego) का उन्मेष नहीं हो पाता, क्योंकि 'अहं' के प्रादुर्भाव के साथ ही द्वैतप्रथा या भेदक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, चेतन प्रकाशित होने लगता है, जो है उसका जानना प्रारम्भ हो जाता है । आद्यशक्ति के चेतन अभिविन्यास (Conscious orientation) को 'सबिन्दु वर्तुल' कहा गया है और तन्त्राम्नाय में इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है –



इस अनुभवातीत बिन्दु द्वारा त्रिगुणारूपा शक्ति (ज्ञान–इच्छा–क्रिया) की अभिव्यक्ति एक 'त्रिकोण' द्वारा प्रकट की गई है, जो निम्नांकित है—



सर्वप्रथम ज्ञानाविर्भाव होता है । यह इस त्रिकोण के शिखर 'अ' द्वारा व्यक्त किया जाता है । 'अ' बिन्दु ज्ञान का प्रतीक है और अनुभवैकगम्य है । इसे ही 'शब्द', 'शब्दब्रह्म' या 'ब्रह्म' कहा गया है । इसके बाद द्वितीयाभिव्यक्ति का स्तर 'ब' आता है और इसे ही 'क्रियाबिन्दु' या 'नाद' कहा गया है । शाक्त दर्शन के अनुसार—(१) भुवन, (२) भोग्य, (३) भोग, (४) साधन एवं (४) भोगभूमि के रूप में वर्गीकृत १५ सृजनात्मक शक्ति कलाएँ हैं । शक्ति का अन्तिम अभिव्यक्तिस्तर 'स' बिन्दु से द्योतित किया जाता है । इसी 'स' बिन्दु को 'बीज' का अभिधान दिया गया है । इस प्रकार 'त्रिकोण' के तीन कोण निम्नानुसार हैं—(१) 'शब्दब्रह्म', (२) 'नाद', (३) 'बीज' । यह 'बिन्दु' जगत् की अभिव्यक्ति का परिचायक है । तीन बिन्दु क्रमशः—(१) ज्ञान, (२) सृजन, (३) इच्छा हैं । इस प्रतीक को तन्त्र-साहित्य में 'सबिन्दुत्रिकोण' कहा गया है । तन्त्र की अधिष्ठात्री

देवी भगवती त्रिपुरा सुन्दरी हैं । त्रिपुराविषयक विज्ञान ही 'श्रीविद्या' है । सृष्टि का परम चैतन्य ही भगवती त्रिपुरा हैं । यही विश्व की आत्मा हैं और इसी आत्मशक्ति की अभिव्यक्ति ही जगत् है ।

परमेश्वर के मानस में सिसृक्षा का सूत्रपात होते ही उनके दो रूप हो जाते हैं—(१) शिव, (२) शक्ति । 'शिव' प्रकाशरूप हैं और शक्ति विमर्शरूप । 'विमर्श' का अर्थ है—पूर्ण अकृत्रिम की स्फूर्ति । यह स्फूर्ति—(१) सृष्टिकाल में विश्वाकार रूप में, (२) स्थिति काल में विश्व-प्रकाशन के रूप में एवं (३) संहारकाल में विश्वसंहरण रूप से होती है । 'विमर्श' के द्वारा 'प्रकाश' का अनुभव होता है और 'प्रकाश' की स्थिति में विमर्श की कल्पना सार्थक होती है । यथा बिना दर्पण के मुख के रूप का दर्शन सम्भव नहीं हो पाता उसी प्रकार बिना 'विमर्श' के 'प्रकाश' का स्वरूप सम्पन्न नहीं होता । शक्ति के बिना शिव को अपने प्रकाशरूप का ज्ञान नहीं होता । शिव में अपनी चेतनता का ज्ञान 'शक्ति' के द्वारा होता है और इसी कारण शक्तिशून्य 'शिव' शव हो जाता है ।

शाक्त दर्शन के अनुसार सृष्टि–विधान—प्रकाशस्वरूप आद्यतत्त्व 'शिव' विमर्शस्वरूप (स्फूर्तिमय) आद्यतत्त्व (शक्ति) में प्रविष्ट होते हैं और तदनन्तर 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेते हैं । इसी भाँति 'शक्ति' शिव में अनुप्रविष्ट होती है । तदनन्तर बिन्दु संवर्द्धित होता है । उससे 'नाद' (स्त्रीतत्त्व) निर्गत होता है । 'बिन्दु' एवं 'नाद' मिलकर 'मिश्रबिन्दु' हो जाते हैं । यह स्त्री–पुरुष शक्तियों का योग है और 'काम' कहा जाता है । 'श्वेत' और रक्त 'बिन्दु' (पुरुष एवं नारी के प्रतीक) उसकी कलाएँ हैं । ये तीनों एक 'संयुक्त बिन्दु' बन जाते हैं । श्वेत–रक्त–मिश्र बिन्दु मिलकर एक हो जाते हैं और 'कामकला' कहलाते हैं । इस प्रकार यहाँ चार शक्तियों का सामरस्य होता है—(१) मूल बिन्दु (विश्व का मूल उपादान), (२) नाद (जिसके आधार पर बिन्दु–संवर्धन से जन्म लेने वाले तत्त्वों का नामकरण होता है) यद्यपि 'बिन्दु' एवं 'नाद' में उत्कट प्रेम होता है किन्तु इतने मात्र से सृष्टि नहीं हो पाती । अतः इनके साथ, (३) श्वेत 'पुरुष बिन्दु' एवं (४) रक्त 'स्त्री बिन्दु' रूप में उत्पादक शक्तियों का योग होता है । जब ये चारों तत्त्व मिलकर 'कामकला' का रूप धारण करते हैं तब वागर्थमय सृष्टि का समारम्भ होता है ।

अन्य आचार्यों के अनुसार जब स्त्री तत्त्व प्रथम बार बिन्दु में प्रविष्ट होता है तब 'नाद' के साथ 'हार्धकला' नामक एक अन्य तत्त्व भी विकसित होता है । ग्रन्थान्तर में कहा गया है कि देवी 'कामकला' हैं और सूर्य (संयुक्त बिन्दु) उनका मुख है, अग्नि एवं चन्द्र (रक्त एवं श्वेत बिन्दु) उसके स्तन हैं और 'हार्धकला' उसकी योनि है । इसी से सृष्टि का आरम्भ होता है । इस प्रकार 'त्रिपुरासुन्दरी' ही सृष्टि की विधायिका हैं । इनका नामान्तर है—परा, ललिता, भट्टारिका, त्रिपुरा, त्रिपुरासुन्दरी आदि ।

जब 'प्रकाशबिन्दु' विमर्शबिन्दु में प्रविष्ट होता है तब बिन्दु में उच्छूनता (Swelling) होती है और तब इस बिन्दु से 'नाद' आविर्भूत होता है । इसी 'नाद' में समस्त सृष्टि–तत्त्व निहित हैं । यही 'नाद' व्यक्त होकर 'त्रिकोण' रूप धारण कर लेता है । उक्त त्रिकोण में एक बिन्दु 'प्रकाश' है और दूसरा 'विमर्श' है । इन दोनों के संयोग से 'काम' या 'रवि' नामक 'मिश्रबिन्दु' व्यक्त होता है । अग्नि एवं सोम इसी 'काम' या 'रवि' की कलाएँ हैं, अतः 'कामकला', प्रकाश, विमर्श एवं काम (रवि) इन तीनों का बोधक है ।

'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति' कहकर प्रत्यभिज्ञाहृदयकार क्षेमराज ने भी शक्ति के सृष्टि–विधायकत्व की पुष्टि की है । 'परात्रिंशिका' में कहा गया है कि जिस प्रकार वट–बीज में शक्तिरूप से वट महावृक्ष रहता है, उसी प्रकार समस्त चराचर जगत् हृदय रूप शक्ति बीज में स्थित रहता है—'यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः । तथा हृदयबीजस्थः विश्वमेतच्चराचरम् ॥'

'भावि'—वह जो भविष्य में उत्पन्न होने वाला है । 'शक्ति' वर्तमान, भूत एवं भविष्य के समस्त चराचर पदार्थों का मूल कारण है । इस शक्ति के 'भाविचराचरबीजं' वाले रूप की ओर ही कठश्रुति कहती है—'जो समस्त उत्पन्न प्राणियों की आत्मा है और सभी का नियन्त्रक है, अपनी एकता को बहुत्व में रूपान्तरित कर देता है ।' (५।२।१२) 'योगिनीहृदय' में कहा गया है—'जब वह विश्वरूपिणी परमाशक्ति अपनी स्फुरत्ता (अभिव्यक्तोन्मुखता) देखती है तब चक्र का जन्म हो जाता है । 'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी । स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः' ॥ आचार्य भास्कर 'सेतुबन्धु' में कहते हैं—'सा देवी स्वेच्छया स्वनिष्ठां स्फुरत्तां यदा पश्यति तदा चक्रस्य विश्वाभिन्नस्य त्रिकोणादिचक्रस्य सम्भवः उत्पत्तिर्भवति ॥' 'आज्ञावतार' में भी कहा गया है—'स्वेच्छयैव जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि' । अमृतानन्द भी 'दीपिका' में इसी की पुष्टि करते हैं—'स्वान्तः संहृतविश्वसिसृक्षतया सैव पराशक्तिर्विमर्शरूपिणी स्वेच्छया विश्वरूपिणी विश्वं सृजति ॥'

प्रश्न उठता है कि यदि शक्ति के बिना शिव सृष्टि नहीं कर सकते तो शक्ति भी बिना शिव के सृष्टि नहीं कर सकती, फिर शक्ति को ही 'भाविचराचरबीज' क्यों कहा गया ? इसी प्रश्न के समाधानार्थ आचार्य पुण्यानन्दनाथ आगे कहते हैं—'शिवरूप विमर्शनिर्मलादर्शः' ।

'शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः'—शक्ति विशुद्ध दर्पण है, जिसमें शिव अपना साक्षात्कार करते हैं । शिव का स्वरूप या प्रकृति 'अहं' है—'अहं विश्वस्य स्वरूपम् अहं इत्येवं आकारम्' । शिव का अनुभव (विमर्श) अहन्ता (अहं का अनुभव) है—'अहं इत्येवं रूपं ज्ञानम्' । यह विशुद्ध दर्पण इस ज्ञान को अभिव्यक्त करता है –'तस्य प्रकाशने निर्मलादर्शः ॥' पुण्यानन्दनाथ ने कहा है कि जिस प्रकार कोई राजा निर्मल दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर अपने सुन्दर मुख का ज्ञान प्राप्त करता है उसी प्रकार शिव भी स्वाधीनभूता स्वात्मशक्ति को देखकर अपनी परिपूर्ण अहन्ता और प्रकाशमय स्वरूप को जानता है । 'प्रकाश' विमर्शात्मक एवं विमर्श प्रकाशात्मक है । इसी विमर्श का नाम है—'स्फुरत्ता', 'स्पन्द', 'परावाक्', 'महासत्ता' आदि ।

शिव अपनी स्वाधीनभूता (अन्तर्लीना) स्वात्मशक्ति को देखकर ही अपने इस स्वस्वभाव को जान पाते हैं कि 'मैं परिपूर्ण हूँ'—'परिपूर्णोऽहं' । यदि दर्पण के समक्ष कुछ भी न रहे तब उसमें कुछ भी प्रतिबिम्बित नहीं होगा । यदि 'पराशक्ति' परमशिव के साथ संयुक्त न रहे तो अपने भीतर स्थित जगत् को उत्पन्न नहीं कर सकती । अकेले 'शिव' एवं 'शक्ति' दोनों सृष्टि नहीं कर सकते । सृष्टि के लिए 'यामलभाव' आवश्यक है । इसीलिए दोनों की परस्परानुविद्धता आवश्यक है । कहा भी गया है—

'न शिवेन विना देवी, न देव्या च विना शिवः ।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥'

आचार्य सोमानन्दपाद ने भी 'शिवदृष्टि' में कहा है –

'न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी ।
शिवः शक्तस्तथा भगवानिच्छया कर्तुमीहते ।
शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते ॥'

नागानन्द कहते हैं कि अकृत्रिम अहम्भाव का स्फुरण या 'पूर्णाहम्भावना' ही विमर्श है—'विश्वाकार' विश्वप्रकाश एवं विश्वसंहार के रूप में अहमाकारभावना ही 'विमर्श' है—'विमर्शो नाम विश्वाकारेण वा विश्वप्रकाशेन वा विश्वोपसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम् । तस्यां तल्लीनत्वं नाम अन्तर्मुखत्वम् ॥'

परमशिव का जो 'पूर्णाहन्ता' है वही आख्यान्तर में 'विमर्श' है । 'प्रकाश' शिवरूप है और 'विर्मश' शक्तिरूप है । शिव एवं शक्ति का नित्य सामरस्य ही 'परमशिव' है । 'शक्ति' आत्मारूपी परमशिव का 'विमर्श' है और इस विमर्श से ही वह 'कर्तुम्', 'अकर्तुम्' एवं 'अन्यथाकर्तुम्' स्वभावी होता है—'विमर्शो हि सर्वंसहः परमपि आत्मीकरोति, आत्मानं च परीकरोति, उभयम् एकीकरोति, एकीकृतं द्वयमपि न्यग्भावयति इत्येवं स्वभावः'[१] ॥

शैवदर्शन के अनुसार तत्त्वातीत शक्ति ही 'परमशिव' है । इसे ही 'चिति' या 'परासंवित्' कहा गया है । शिवसूत्रों में इस 'चिति' या परमशिव की संज्ञा 'आत्मा' है 'चैतन्य आत्मा' (शिवसूत्र १।१) । यही 'परतत्त्व'[२] एवं 'अनुत्तर' है—'यत् परतत्त्वं तस्मिन् विभाति षट्त्रिंशदात्मजगत्' 'अनुत्तरं न विद्यते प्रकृष्टमुत्तरं यतस्तदनुत्तरं चिद्घनम्'[३] । यह चिदात्मा ('चैतन्यमात्मा') प्रकाशविमर्श रूप है । ये 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' कहने के लिए भले ही पृथक्–पृथक् हों किन्तु ये हैं अभिन्न ही — 'प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात् । स च प्रकाशो न पृथग् विमर्शात्[४] ॥' शिव से लेकर धरणी तक छत्तीस तत्त्वों में अभेदरूपता से स्फुरित आत्मा का इच्छा–प्रसार ही उसका विश्वात्मक रूप है । शैवागम में इसकी संज्ञा 'विमर्श' है, क्योंकि 'विमर्श' परमशिव की शक्ति है और उसकी शक्ति का स्फार ही यह नानारूपात्मक विश्व है—'क्रियाशक्तेरेव (स्वातन्त्र्यामर्शरूपायाः) अयं सर्वो विस्फारः[५] ॥' परमेश्वर का शक्ति–स्फार होने के कारण नाना रूपों में दृष्टिगोचर होने वाले सभी पदार्थ भी प्रकाशरूप ही हैं और परमेश्वर से अभिन्न हैं । 'विमर्श' एक नैसर्गिकी स्फुरत्ता है, एक शक्ति है । इसी की सहायता लेकर शिव जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार कर पाने में समर्थ हो पाते हैं —

'नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः ।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति, संहरति[६] ॥'

परमेश्वर के हृदय में जब सिसृक्षा उत्पन्न होती है तब उसके दो रूप हो जाते हैं— शिव एवं शक्ति । शिव ही 'प्रकाश' है एवं शक्ति ही 'विमर्श' है ॥ २ ॥

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (भाग २ पृ० २०५) । २. परमार्थसारकारिका ।
३. परात्रिंशिकाविवृति । ४. विज्ञानभैरवविवृति ।
५. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (भाग २, ५।४२) ६. वरिवस्यारहस्यम् ॥

सशक्तिकमहमित्येवं रूपं परब्रह्मेति निर्णीतम् । अत्र यद्वक्तव्यं तदुत्तरत्र सम्यक् प्रपञ्च इत्यलम् ॥ ननु निर्विमर्शमेव ब्रह्म वदन्ति केचन । तत्कथम् उच्यते सविमर्शकं ब्रह्मेत्यत आह—

स्फुटशिवशक्तिसमागमबीजाङ्कुररूपिणी पराशक्तिः ।
अणुतररूपानुत्तरविमर्शलिपिलक्ष्यविग्रहा भाति ॥ ३ ॥

('पराशक्ति' = महात्रिपुरसुन्दरी के स्वस्वरूप का विवेचन)

शिव एवं शक्ति के सुव्यक्त सामरस्य के रूप में स्थित (अतः) बीजांकुररूपिणी, सूक्ष्मतमा, पराशक्ति, आद्यक्षर 'अ' एवं विमर्शाक्षर 'ह' के संयोग द्वारा व्यक्तीभूत स्वरूपवाली (अन्तर्गर्भित सर्ववर्णरूपा) होकर सुशोभित हो रही हैं ॥ ३ ॥

*** चिद्वल्ली ***

अस्यार्थः—अत्र पराशक्तिशब्देन प्रकृत्याख्या महात्रिपुरसुन्दरी अभिधीयते । चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियारूपेति या श्रुतिः जगत्प्रसिद्धा सा त्वेवमुच्यते—**स्फुटशिवशक्ति**—समागमबीजाङ्कुररूपिणीति । शिवश्च शक्तिश्च शिवशक्ती, तयोस्समागमः संयोगः । स्फुटः व्यक्तः शिवशक्तिसमागमो योऽयं तेन बीजाङ्कुररूपिणी बीजादङ्कुरं अङ्कुरा—द्बीजमितिवत्, शिवतत्त्वादि क्षितितत्त्वपर्यन्तं तत्त्वजालमुत्तरोत्तरमुद्भावयेदित्यर्थः । अत्र शिव-शब्देन ज्ञानशक्तिरभिधीयते । ज्ञानशक्त्यधिष्ठितत्त्वात् शिवतत्त्वस्य शक्तिशब्देनापि क्रिया-शक्तिरभिधीयते क्रियाशक्त्यधिष्ठितत्त्वाच्छक्तितत्त्वस्य चिदानन्दस्वरूपिण्याः सर्वत्र ज्ञान-क्रियाभ्यामेव प्रपञ्चनिर्माणदर्शनात् । तथा श्वेताश्वतरोपनिषदि—'यदिदं ते दृश्यते तदानन्दयोनिः तेन जीवति, तदेषाभ्युक्ता परो वा एष आनन्दः सभोगयोनिः, कामरूपावेतौ स आनन्दयोनिः आनन्दो ब्रह्म ब्रह्मैवैषा देवी एकानेकप्रपञ्चा स्यात् चतुर्थपौरुषार्थे आनन्दरूपेति' यथागमश्च—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।
स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः ॥

प्रत्यभिज्ञासूत्रेऽपि—'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः' इति ।

अभियुक्तोक्तिश्च—'सा योनिस्सर्वदेवानां शक्तीनां च' इत्यादि । एवं चार्थो वर्णयितव्यः । सैव पराशक्तिः स्वयमेव शिवशक्तीभूय विश्वं सृजतीति तथा च श्रुतिः—'या लिङ्गमया निर्विततान हेतुर्याभ्यामिदं विश्वमादौ बभूव' इत्यादि द्रष्टव्या । तथा चिद्विलासे—'मेदिनीप्रमुखमाशिवं मतं तत्त्वचक्रमिह चक्रमुत्तमम् । स्वस्वभावसमयाव-भासिनी देवता भवति सांविदी कला ॥ विसर्गशक्तीर्विश्वस्य कारणं च निरूपिता । ऐतरेयाख्यवेदान्ते परामर्शेन विस्तरात् ॥' इत्यभियुक्तोक्तिः । पुनस्तामेव विशिनष्टि—अणुतररूपानुत्तरविमर्शलिपिलक्ष्यविग्रहा भातीति—अणुतरमत्यन्तसूक्ष्मं रूपम् अस्या इति अणुतररूपा । यजुश्श्रुतिः—

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ।
यत्तदद्रेश्यमग्राह्यम् ॥ इत्यादि ।

'एष आत्मान्तरहृदयेऽणीयान्व्रीहिरूपाद्वा सर्षपाद्वा' इति ॥

तथा वचनमपि—

अणोरणुतरा देवी महतोऽपि महीयसी ।

अत्रेदं अतिरहस्यम्—अनुत्तरालिपिरकारः विमर्शलिपिर्हकारः । ताभ्यां लक्ष्यं विग्रहं स्वरूपं यस्याः सा तयोक्तम् । अत्रानुत्तरविमर्शलिपिलक्ष्यविग्रहेत्यनेनाहमात्मिकान्तर्गर्भित समस्तवर्णकदम्बकपरा वाक् अकारादि हकारान्तं पञ्चाशदक्षररूपिणी वर्णपदमन्त्रकलातत्त्व-भुवनात्मकसमस्तप्रपञ्चजनयित्री पराभट्टारिका समस्तभूतान्तरात्मा सर्वत्र वेदान्ते अहमहमित्येवमाकारेण प्रतीयमाना दृश्यत इत्युक्तं भवति । तथा बृहदारण्यके—'ब्रह्म च वा इदमग्र आसीत् । तदात्मानं एव वेद अहं ब्रह्मास्मि' इति । ऐतरेयेऽपि—'अ इति ब्रह्म तत्रागतमहम्' इति । तापनीयेऽपि—'कस्त्वमित्यहमिति होवाच । एवमेवेदं सर्वम् । तस्मादहमिति सर्वाभिधानं तस्यादिरयमकारः । स एव भवति । सर्वं ह्यमात्मा । अहं हि सर्वान्तरात्मा न हीदं सर्वम् । निरात्मकमात्मैवेदं सर्वम् । तस्मात्सर्वात्मकेनाकारेण सर्वात्मकमात्मानमन्विच्छेद्- ब्रह्मैवेदं सच्चिदानन्दरूपम्' इति । तत्रैवात्यत्र—'तद्वा एतद्ब्रह्म अद्वयं बृहत्त्वात् । नित्यं शुद्धं बुद्धं मुक्तं सत्यं सूक्ष्मं परिपूर्णम् अद्वयं सच्चिदानन्दं चिन्मात्रमेव' इति परमात्मानमभिधाय तदुपासनाप्रकारमप्याह—'सुविभान्तं सकृद्विभान्तं पुरतोऽस्मात्सर्वस्मादविभान्तमद्वयं पश्यतो हंसस्सोऽहमिति । ब्रह्म भवति । य एवं वेद ।' इति रहस्यमिति ॥ पूर्णाहम्भावभावनारूप-मात्मोपासनमत्यन्तगोपनीयम् । गुरुमुखादेवावगन्तव्यमितिश्रुतिरेवाह ।

तथा छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके—'तदैक्षत सेयं देवतैक्षत' इत्यादिना । तेजोवन्नात्मक-रूपत्रयां सर्वजगन्निर्मात्री त्रिपुरामभिधाय, 'यो वै भूमा तत्सुखं यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा' इति । निरतिशयानन्दरूपिणीं तामेव निर्दिश्य 'स एवाधस्तात्' इत्युपक्रम्याहमात्मानं निर्दिशति ॥ 'अहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वमिति' इति । तथा बृहदारण्यके—'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवतैतासां वै त्वमसि भगवो देवता' इत्यादि । स्मृतिरपि—

हृद्यकारं द्वादशान्ते हकारं स्थविरा विदुः ।
अहमात्मैकमद्वैतं यत्प्रकाशात्मविश्रमः ॥
अकारस्सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमश्शिवः ।
हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः ।
उभयोस्सामरस्यं यत्परस्मिन्नहमिति स्फुटम् ॥ इति ।

श्रीविरूपाक्षपञ्चाशिकायामपि—

स्वपरावभासनक्षम आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ ।
अहमिति स एक उक्तो हन्ता स्थितिरीदृशी तस्य ॥

इत्यादिवचनसहस्रमनुसन्धेयमिति अलमतिविस्तरेण ॥ ३ ॥

* सरोजिनी *

(आचार्य पुण्यानन्दनाथ ने इस श्लोक में महात्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहा है कि वे 'परा' हैं, बीज हैं, अंकुर हैं, अरूपिणी हैं, अनुत्तररूपा हैं और शिव-शक्ति के व्यक्त (स्फुट) एकीभाव (Manifested union of Shiv and Shakti) हैं । उनका स्वरूप वर्णमाला के प्रथमाक्षर 'अ' एवं विमर्शाक्षर 'ह' के संयोग ('अहं') से व्यक्त होता है ।)

यह संशय होने पर कि यदि 'परिपूर्णोऽहं' का विमर्श ही ब्रह्म है तब सर्वोच्च 'अहं' के अनुभविता (विमर्शक) को ब्रह्म कैसे कहा जा सकता है—इसी संशय के निवृत्त्यर्थ ग्रन्थकार कहते हैं—'स्फुट ... ... भाति ॥'

'स्फुटशिवशक्तिसमागमबीजांकुररूपिणी'—वे बीज एवं अंकुर दोनों हैं । वह 'पराशक्ति' शिव एवं शक्ति का स्फुट (अभिव्यक्त) सामरस्य है । इसलिए वह बीज एवं अंकुर दोनों है । क्योंकि कहा गया है कि बीज से अंकुर एवं अंकुर से बीज जन्म लेते हैं । 'वह' शिवतत्त्व से क्षितिपर्यन्त समस्त तत्त्वों को जन्म देती है । इसीलिए कहा गया है—'स योनिः सर्वदेवानां शक्तीनां चाप्यनेकधा । अग्नीषोमात्मिका योनिस्तस्याः सर्वं प्रवर्तते' ॥

'शिव'—यहाँ शिव शब्द 'ज्ञानशक्ति' का बोधक है, क्योंकि शिवतत्त्व 'ज्ञानशक्ति' में अधिष्ठित है और तद्रूप है । 'शक्ति'—शक्ति का अर्थ है 'क्रियाशक्ति', क्योंकि शक्ति क्रियाशक्ति में अधिष्ठित है और उससे अपृथक् है । शक्ति जो कि 'चिदानन्दस्वरूपा' है, ज्ञान एवं क्रिया के द्वारा प्रपञ्च की सृष्टि करती है ।

शक्तिवाद का सिद्धान्त—शाक्तों के मतानुसार शक्ति ही सृष्टि, स्थिति एवं संहार तीनों की विधायिका है । वह तिरोधान एवं अनुग्रह की भी विधायिका है । समस्त विश्व उसी का स्वस्वरूप है, अतः वह विश्व का उपादान भी है । वह शिव की सिसृक्षा, उसका हृदय, उसकी आत्मा एवं उसका स्फार एवं स्फुरण है । शिव को शिवत्व प्रदान करने वाली सत्ता ही शक्ति है । 'शक्ति' शिव की सिसृक्षा और उसका 'सार' है । शक्ति ही शिव की इच्छा, ज्ञान, क्रिया, चैतन्य एवं आनन्द है । शक्ति विश्वरूप भी है और विश्वातीत भी ।

पाश्चात्य दार्शनिकों में प्लाटिनस (Platinus) शाक्तदर्शन के अत्यन्त निकट है । अरस्तू ने कहा था कि परमात्मा चिन्तन एवं सङ्कल्प करता है, किन्तु प्लाटिनस इसे अस्वीकार करता हुआ भी यह मानता है कि अभिव्यक्ति के प्रथम सोपान में ईश्वर का सत् (Being) चिन्तन एवं विचारों में विभाजित हो सकता है । ईश्वर अपने विचारों का चिन्तन करता है किन्तु इस अवस्था में चिन्तन एवं विचार, उद्देश्य एवं विधेय देश-काल में प्रकट नहीं होते प्रत्युत दैवी मनस् में एक ही रहते हैं । ईश्वर में चिन्तन पूर्ण सत्य होता है और विचार एवं वस्तु की एकता ही सत्य की प्रत्यभिज्ञा है । ईश्वर स्वयं अपने विचारों का चिन्तन करता है । ये विचार उसके सार से निकलते हैं । दैवी मनस् में विचारक एवं विचार की क्रिया एवं अन्तर्वस्तु पृथक् नहीं प्रत्युत एक ही होते हैं । शुद्ध चिन्तन देशकालातीत, पूर्ण, शाश्वत एवं समन्वित होता है । ईश्वर के विचार ही जगत् की वस्तुओं की अभिव्यक्ति का मूल है ।

ईश्वर की असीम शक्ति का अभिव्यक्तिकरण (Emanation) ही जगत् है । ईश्वर स्रष्टा नहीं है प्रत्युत एक सोते की भाँति है, जिससे जगत् की धारा प्रवाहित होती रहती है । इस प्रकार 'कारण' कार्य में परिवर्तित नहीं होता और न तो कार्य कारण को सीमित ही कर पाता है । जिस प्रकार बालक के जन्म होने के उपरान्त भी माता-पिता में कोई कमी नहीं आती उसी प्रकार ईश्वर से जगत् की उत्पत्ति होने पर भी ईश्वर में कोई कमी नहीं आती ।

ये समस्त विचार शाक्त दर्शन को भी मान्य हैं । इस प्रकार प्लाटिनस 'आरम्भवाद', 'परिणामवाद', 'विवर्तवाद', 'शून्यवाद', 'अजातिवाद' एवं 'असत्कार्यवाद' में से किसी को भी नहीं मानता । वह शाक्तों की भाँति 'आभासवाद' एवं 'स्वातन्त्र्यवाद' मानता है, क्योंकि वह जगत् को परमात्मा की असीम शक्ति की अभिव्यक्ति मानता है और इस अभिव्यक्ति के तीन सोपान स्वीकार करता है—(१) शुद्ध विचार, (२) आत्मा और (३) जड़ तत्त्व । प्लाटिनस ने सृष्ट्योन्मुख अवस्था को देशकालातीत एवं शुद्ध विचार की अवस्था माना है । इसके साथ ही उसने जगत् को शक्ति एवं शुद्ध चिन्तन का स्वाभाविक उच्छलन स्वीकार किया है । ये समस्त सिद्धान्त शाक्तमत के अनुकूल हैं ।

'पराशक्तिः'—यहाँ 'पराशक्ति' से तात्पर्य 'महात्रिपुरसुन्दरी' देवी है । वे 'परा' इसलिए कहलाती हैं क्योंकि वे सृष्टि एवं प्रकृति से परे हैं, सर्वोच्च शक्ति हैं, सबको अतिक्रान्त करके स्थित हैं तथा सृष्टि के पूर्व भी विद्यमान हैं । उन्हें 'परा' इसलिए भी कहा जाता है कि क्योंकि श्रुतियों में उन्हें सृष्टि का सर्वोच्च तत्त्व, चिति, इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति भी कहा गया है । वे 'चिदानन्देच्छाज्ञानक्रिया रूपा' हैं । 'योगिनीहृदय' में उन्हें 'परमा शक्ति' कहा गया है—'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।' श्रुतियाँ भी उन्हें 'पराशक्ति' का अभिधान देती हैं—'न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ वे 'परा' इसलिए भी हैं क्योंकि उनसे न तो कोई पर है और न परे । सृष्टि के लिए उन्हें अपने अतिरिक्त किसी अन्य उपादान, निमित्त, आधार एवं सहायक की भी आवश्यकता नहीं होती । समस्त सम्भाव्य उसी के रूप हैं और वह विश्वमय एवं विश्वातीत दोनों हैं । वह 'परा' इसलिए भी है क्योंकि उसकी सहायता के बिना शिव भी सृष्टि नहीं कर सकते और न तो वे कोई क्रिया कर सकते हैं । यहाँ तक कि उसके बिना स्पन्दित तक भी नहीं हो सकते –

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥' (सौन्दर्यलहरी) शक्ति के बिना सृष्टि–स्थिति–संहार करने में अशक्त शिव, शक्ति की सहायता से सभी कुछ करने में सशक्त हो उठते हैं—

'परोऽपि शक्तिरहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि ।
सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तः शक्त एव हि' ॥ (वामकेश्वरतन्त्र)

इन्हीं कारणों से शक्ति को 'परा' एवं 'परापरा' कहा गया है—'सारात् सारां परापराम्' (नित्याषोडशिकार्णव) ॥

'अनुत्तररूपा' = अत्यन्त सूक्ष्म । श्रुति कहती है—'सत्त्व सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है । तुम वही हो ।' आगम कहता है कि देवी अणु से भी अणुतर है एवं महान् से भी महत्तर है—'अणोरणीयान् महतो महीयान्' ।

'अनुत्तरविमर्शलिपिलक्ष्यविग्रहा'—'अनुत्तरलिपि'—वह जिसके पूर्व कोई अक्षर विद्यमान ही न हो । यह अक्षर है—'अ' । **'विमर्शलिपि'** = 'ह' अक्षर । वर्णमाला का अन्तिम वर्ण । प्रथमाक्षर 'अ' एवं अन्त्यक्षर 'ह' का संयोग होने पर 'अहं' निर्मित होता है । इन दोनों अक्षरों के संयोग से निःसृत 'अहं' द्वारा शक्ति का विग्रह (स्वरूप) ज्ञात (लक्ष्य = दिखाई पड़ने योग्य) हो पाता है । इस पदावली का भाव यह है कि 'पराशक्ति' अहमात्मिका है—'अहन्ता' (I-ness) है । इन 'अ' एवं 'ह' वर्णों के भीतर ही वर्णमाला के समस्त वर्ण स्थित हैं । 'शक्ति' को अकारादि हकारान्त रूपवाला माना गया है । 'शक्ति' वर्ण, पद, मन्त्र, कला, तत्त्व एवं भावना से निर्मित निःशेष जगत् की जनयित्री है । वह 'पराभट्टारिका' एवं 'समस्तभूतान्तरात्मा' है । कण्वश्रुति में कहा गया है कि प्रारम्भ में केवल ब्रह्म मात्र था । उसने अपने को जाना—'तदात्मानं एवं वेद' । 'अहं ब्रह्मास्मि' । 'अ' ब्रह्म है और उससे 'अहं' का आविर्भाव हुआ । आत्मोपासना का शुद्धरूप केवल यह अनुभव है कि 'मैं पूर्ण हूँ'—'मैं सब कुछ हूँ'—यह भावना ही ब्रह्मतत्त्व है—'परिपूर्णोऽहं इति विमर्शम् एव ब्रह्म ॥'

जिस 'अकार' एवं 'हकार' के सामरस्य स्वरूप वाली 'पराशक्ति' का उल्लेख किया गया है उसमें 'अकार' प्रकाशस्वरूप परमशिव है तथा 'हकार' कलास्वरूप विमर्शशक्ति है[१]—'सा परा पररूपेण परा देवी प्रकीर्तिता' (वि० भै०) ।

'अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः ।
हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः' ॥

'पराशक्ति'—समयाचार वालों के अनुसार सहस्रार ही भगवती पराशक्ति का स्थान है । यही सहस्रार ही 'श्रीचक्र' है—अमृत का स्थान 'सरघा' है—वही 'बैन्दवस्थान' है । यही भगवती परा संवित् रूप से सहस्रार में निवास करती हैं । ज्योत्स्ना से परिपूर्ण 'समयलोक' (सहस्रार) में जाकर वे शिवतत्त्व से मिलकर सादाख्य तत्त्व को जीतती हैं—

'ततो गत्वा ज्योत्स्नामयसमयलोकं समयिनां
पराख्या सादाख्या जयति शिवतत्त्वेन मिलिता ।
सहस्रारे पद्मे शिशिरमहसां बिम्बपरं
तदेव श्रीचक्रं सरघमिति तद् बैन्दवमिति[२] ॥

'पराशक्ति' वही है जो 'परमशिव' है, क्योंकि वह परमशिव से अभिन्न है और परमशिव में अन्तर्लीन रहती है । वही सिसृक्षा के समय जगत् के रूप में परिणत हो जाती है । यह शिव से अभिन्न, सर्वकर्मशरीरिणी तथा वामादिक एवं इच्छादि शक्तियों के रूप में अभिव्यक्त हो जाती हैं—

---

१. 'प्रकाश' की शक्ति ही 'विमर्श' है—'एक एव प्रकाशाख्यः परः कोऽपि महेश्वरः । तस्य शक्तिर्विमर्शाख्या सा नित्या गीयते बुधैः' ॥
'संकेतपद्धति' में विमर्श को 'षोडशी' कहा गया है—'विमर्शरूपिणी नित्या षोडशी या प्रकीर्तिता ॥'

२. सुभगोदय स्तुति ॥ 'पराशक्ति' प्रकृत्याख्या महात्रिपुरसुन्दरी ही हैं । (चिद्वल्ली)

'शिवाभिन्ना पराशक्तिः सर्वकर्मशरीरिणी ।
वामादीच्छादिभेदेन मिथुनत्रयतां गता' ॥

शिवशक्ति का यह अभेद चन्द्र-चन्द्रिका के अभेद के समतुल्य है—

'न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः ।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव' ॥

आचार्य सोमानन्दपाद ने 'शिवदृष्टि' में सामान्य शक्तिदशा से भी परे की दशा को 'परा' कहा है—

'अथ शक्तेः परावस्था यैर्भक्त्या परिगीयते ।
युक्त्या प्रकाशितो देवस्ततः शक्तिदशा यतः' ॥ (शिवदृष्टि)

'शक्ति' की परावस्था के बाद ही 'शक्तिदशा' का अवतरण होता है—'परावस्थातोऽनन्तरं शक्तिदशा किञ्चिदुच्छूना' । 'पराशक्ति' के बाद समागत 'शक्तिदशा' किञ्चित् उच्छून दशा होती है । यही दोनों में भेद है ॥ ३ ॥

इतः परं प्रबन्धेन प्रतिपाद्यां कामकलाक्षररूपिणीं विवेक्तुकामस्तदक्षरस्वरूपं वक्तुमुपक्रमते—

परशिवरविकरनिकरे प्रतिफलति विमर्शदर्पणे विशदे ।
प्रतिरुचिरुचिरे कुड्ये चित्तमये निविशते महाबिन्दुः ॥ ४ ॥

('महाबिन्दु' का स्वरूप) –

प्रकाशैकस्वभाव परशिवभट्टारक रूप सूर्य की रश्मियों के समूह का विमर्शरूपी स्वच्छ मुकुर में (स्वस्वरूपावलोकनरूप) प्रतिफलन होने से (तदुत्पन्न) प्रतिप्रकाश द्वारा सुरम्य चित्त रूपी दीवार पर 'महाबिन्दु' प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

*** चिद्वल्ली ***

इत्यादिकला च दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू इत्यन्तं, परशिवः प्रकाशैकस्वभावः परशिवभट्टारक एव । रविर्दिनकरः, तस्य कराः किरणाः । तेषां निकरः पुञ्जः तस्मिन् विशदे निर्मले विमर्शदर्पणे विमर्शो नाम अनवधिकाकारविस्फुरणशक्तिः । तथा प्रत्यभिज्ञायाम्—'सा स्फुरत्ता' इत्यादि । सैव दर्पणत्वेन निरूप्यते । स्वस्वरूपप्रकाशत्वात्तत्र प्रतिफलनं नाम स्वरूपावलोकनम् । तादृशप्रतिफलनस्वरूपावलोकने सति चित्तमये ज्ञानैकस्वरूपे प्रतिरुचिरुचिरे प्रतिप्रकाशमनोहरे कुड्ये महाबिन्दुर्निविशते प्रविष्टो भवति । चित्तस्य कुड्यत्वनिरूपणमहाबिन्द्वाविर्भावकारणत्वात् । लोकेऽपि सूर्याभिमुखस्थितदर्पणतले सूर्यकिरणप्रतिफलनानन्तरं निकटगतकुड्ये सूर्यकिरणप्रतिहततेजोबिन्दुः प्रत्यक्षं प्रतिपद्यते । तद्वत्प्रकाशरूपपरमेश्वरस्य दर्पणवत् स्वस्वरूपविमर्श-सम्बन्धे जाते तदानीं तत्र महाबिन्दुः पूर्णोऽहमित्येवंरूपः परमेश्वरोऽवभासत इत्यर्थः । तथा च छान्दोग्ये—'स देव सोम्येदमग्र आसीत् । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म तदैक्षत सेयं देवतैक्षत इति च ब्रह्म वा इदमग्र

आसीत् तदात्मानमेव वेदाहं ब्रह्मास्मीति स ईक्षत इमान् लोकान् सृज ।' इत्यादि श्रुतिषु स्वात्मशक्तिनिरीक्षाभिमुखं परब्रह्मं जगत्कारणमित्युच्यते । आगमश्च—

स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः । इति ।

प्रत्यभिज्ञायामपि—

सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालविशेषिणी ।
सैषा सारतया चोक्ता हृदये परमेष्ठिनः ॥ इति ।

परमानन्दयोगिनोऽपि—

ईदृगियत्तादिवचो दूरतरं स्वानुभूतिसंवेद्यम् ।
तत्तादृशस्फुरत्ताशेषं संवित्कथानुसाराख्यम् ॥ इत्यादि ।

अन्यत्सर्वं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्श इत्यत्र प्रपञ्चितं तत्रैवावलोकितव्यमित्यलम् ॥ ४ ॥

* सरोजिनी *

परमशिव रूपी सूर्य की किरणों के समूह के ऊपर जो कि निर्मल विमर्श दर्पण में प्रतिबिम्बित होता है, महाबिन्दु चित्त की दीवार पर (प्रतिबिम्बित किरणों द्वारा) प्रकाशित होता है ।

ग्रन्थकार ने इस श्लोक में 'महाबिन्दु' का परिचय देते हुए कहा है कि 'परशिव' रवि है एवं 'विमर्श' दर्पण है, 'महाबिन्दु' चित्त की दीवार पर दृष्टिगत होता है । चित्त की दीवार 'महाबिन्दु' की किरणों से प्रकाशित है । 'महाबिन्दु' चित्त की दीवार पर प्रकाशित होता है । 'रवि' रूप 'महाबिन्दु' की रश्मियों द्वारा प्रकाशित चित्तरूपी दीवार पर 'महाबिन्दु' प्रतिबिम्बित होता है ।

समस्त वर्णों के रूप में 'कामकला' की विवेचना की आकांक्षा रखते हुए आचार्य पुण्यानन्दनाथ उसकी अक्षररूपता का वर्णन करते हैं ।

'परशिवरविकरनिकरे'—परम शिव रूपी सूर्य की किरणों के समूह के ऊपर । **'परशिव'**—परमशिव । यह 'परमशिव' मात्र प्रकाश है—प्रकाशैकस्वभाव है । उसकी रश्मियों का समूह अमल विमर्श दर्पण है । **'विमर्श'**—विमर्शशक्ति वह विस्फुरण शक्ति है जो कि सीमाहीन है, अतः उसे 'स्फुरत्ता' (Movement) कहा गया है । शक्ति को दर्पण की उपमा इसलिए दी गई है क्योंकि वह अपने को उसी के माध्यम से व्यक्त करती है । **'प्रतिफलति'**—प्रतिबिम्बित । **'प्रतिफलन'** = प्रतिबिम्बित होने की क्रिया । 'प्रतिफलन' का अर्थ है—स्वस्वरूपावलोकन । जब प्रतिबिम्ब के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होता है तब 'महाबिन्दु' चित्त की दीवार पर दृष्टिगत होता है । **'कुड्य'** = दीवार । 'चित्त' की दीवार से तुलना दी गई है, क्योंकि इस पर 'महाबिन्दु' का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है । यदि दर्पण को सूर्य की ओर करके रखा जाय तो उसके द्वारा प्रतिबिम्बित रश्मियाँ किसी भी दीवार पर पड़ने पर एक प्रकाशमय वृत्त के रूप में (बिन्दुरूप में) दिखाई पड़ती हैं, जिसे कि सूर्य की

किरणें उत्पन्न करती हैं । इसी प्रकार जब परमशिव, जो कि 'प्रकाश' है, दर्पणस्वरूप विमर्श के सम्पर्क में आता है तब 'पूर्णोऽहम्' की अनुभूति वाला परमेश्वरस्वरूप 'महाबिन्दु' प्रकाशित हो उठता है ।

श्रुति भी कहती है कि 'ओ सौम्य ! चूँकि सृष्टि के प्रारम्भ में वह अकेला था अतः सृष्टि के पूर्व वह अद्वय था । उसने कहा—'मैं एक हूँ, मैं बहुत हो जाऊँ' । श्रुतियाँ कहती हैं कि परब्रह्म जो कि अपनी शक्ति की ओर दृष्टिपात करता है, प्रपञ्च की सृष्टि का मूल कारण है । आगम का कथन है कि जब परमाशक्ति अपने स्वरूप का अवलोकन करती है तब चक्रों का आविर्भाव हो उठता है । प्रत्यभिज्ञा में कहा गया है कि वह स्फुरत्ता रूप महासत्ता देशकालातीत है । उसी के विषय में कहा गया है कि वह परमशिव के हृदय में सभी के सार अंश के रूप में विद्यमान है ।

'परशिव' = परशिवभट्टारक, परमशिव । **'रवि'** = दिनकर । **'कर'** = किरण । **'निकर'** = पुञ्ज । **'विशद'** = निर्मल । **'विमर्शदर्पणे'** = विमर्श रूपी दर्पण में । **'विमर्श'** = यह एक नैसर्गिकी स्फुरत्ता है—

'नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः ।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति'[१] ॥

विश्वाकार, विश्वप्रकाश एवं विश्वसंहार रूप से अकृत्रिम अहमाकार का स्फुरण ही 'विमर्श' है ।

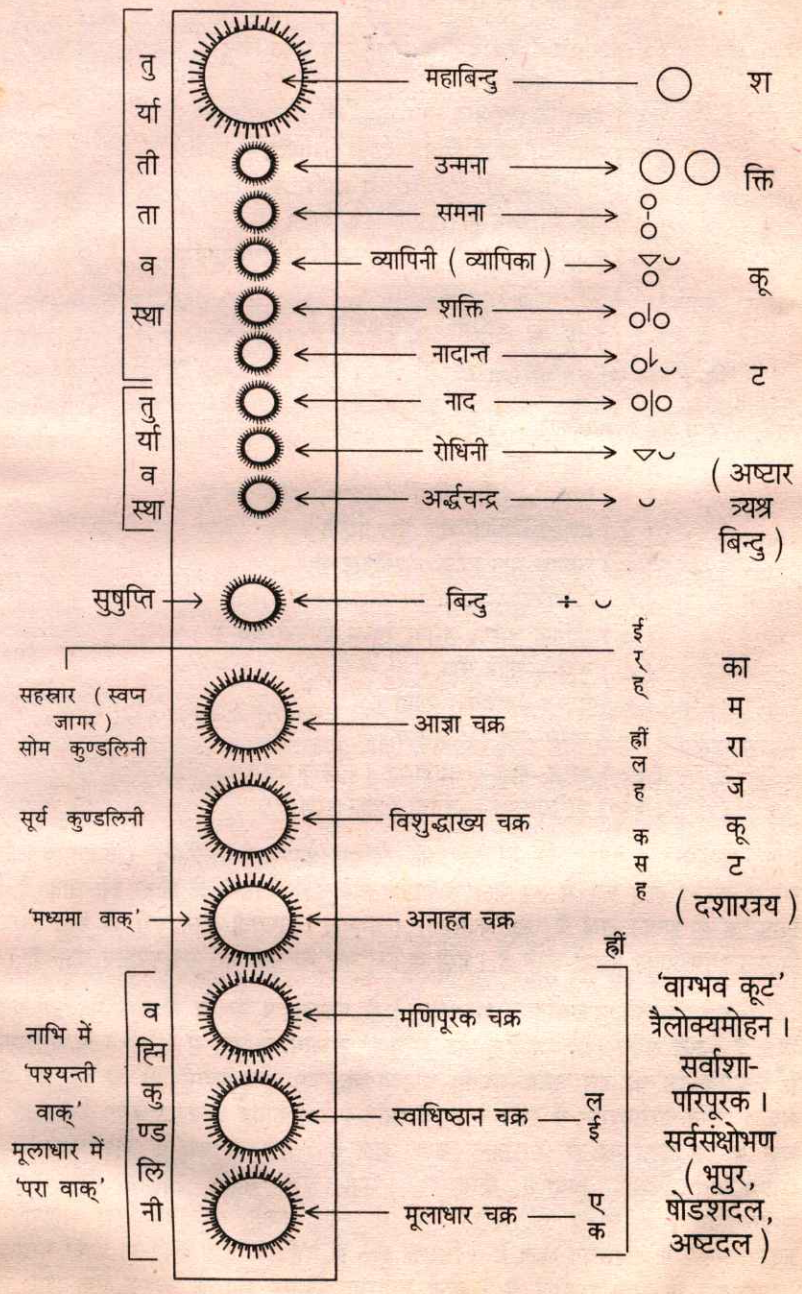
'प्रतिरुचिरुचिरे' = प्रतिप्रकाश के कारण अत्यन्त मनोज्ञ । **'कुड्ये'**—दीवार पर ॥ **'चित्तमये'** = ज्ञानैकस्वरूप चित्त पर । (सूर्याभिमुख स्थित दर्पणतल पर सूर्य की किरणों का प्रतिफलन होने के बाद निकटगत दीवार पर सूर्यकिरण से प्रतिहत तेजोबिन्दु प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगत होता है । उसी प्रकार प्रकाश रूप परमेश्वर का दर्पण के समान स्थित स्वस्वरूप विमर्श के साथ सम्बन्ध होने पर वहाँ 'मैं पूर्ण हूँ' इत्याकारक परमेश्वर या 'महाबिन्दु' अवभासित होता है । छान्दोग्योपनिषद् में कहा भी गया है—'स देव सोम्येदमग्र आसीत् । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म तदैक्षत सेयं देवतैक्षत इति च ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानमेव वेदाहं ब्रह्मास्मीति स ईक्षत इमान् लोकान् सृज ॥' अर्थात् स्वात्मशक्तिनिरीक्षणाभिमुखत्व ही ब्रह्म का जगतकारणत्व है । ठीक भी है—'स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः ॥')

'महाबिन्दु'—महाबिन्दु ही सदाशिव है, जिसके ऊपर चित्कला या चिच्छक्ति स्वातन्त्र्यमयी होकर खेलती है । यह खेल 'परावाक्' का विलास है । श्रीचक्र के तीन भाग हैं—(१) चतुष्कोण से त्रिकोण तक, (२) बिन्दु से उन्मना तक और (३) महाबिन्दु ॥ उन्मना के बाद ही 'महाबिन्दु' का अवस्थान है । 'महाबिन्दु' विश्व का हृदय है—यही विश्वातीत परमेश्वर शिव-शक्ति का आविर्भावस्थान है । 'महाबिन्दु' ही निष्कल भूमि है । 'महाबिन्दु' के स्पन्दन से ही 'महात्रिकोण' का आविर्भाव होता है ।

'निविशते' = प्रविष्ट होता है ।

---

१. वरिवस्यारहस्यम् । 'उन्मना' के ऊपर 'महाबिन्दु' है—
'सैवोर्ध्वबिन्दुहीनोन्मना तदूर्ध्वं महाबिन्दुः ॥' (वरिवस्या ०) ।


तुर्यातीतावस्था
तुर्यावस्था
महाबिन्दु
उन्मना
समना
व्यापिनी (व्यापिका)
शक्ति
नादान्त
नाद
रोधिनी
अर्द्धचन्द्र
बिन्दु
सुषुप्ति
श
क्ति
कू
ट
(अष्टार त्र्यश्र बिन्दु)
सहस्रार (स्वप्न जागर) सोम कुण्डलिनी
सूर्य कुण्डलिनी
'मध्यमा वाक्'
नाभि में 'पश्यन्ती वाक्' मूलाधार में 'परा वाक्'
वह्निकुण्डलिनी
आज्ञा चक्र
विशुद्धाख्य चक्र
अनाहत चक्र
मणिपूरक चक्र
स्वाधिष्ठान चक्र
मूलाधार चक्र
ह्रीं र्ई ह्रीं ल ह क स ह
ल ई
ए क
कामराजकूट (दशारत्रय)
ह्रीं
'वाग्भव कूट' त्रैलोक्यमोहन । सर्वाशा-परिपूरक । सर्वसंक्षोभण (भूपुर, षोडशदल, अष्टदल)

'महाबिन्दु' का संक्षिप्त विवरण –

(१) आकार—रक्तबिन्दु के भीतर गुप्त श्वेत बिन्दु ।
(२) रङ्ग—श्वेत ।
(३) खण्ड—निर्गुण ।
(४) चक्र—(सृष्टि–स्थिति–संहार) समष्टि ।
(५) वर्णाक्षर—'क्ष' एवं 'म' का समष्टि रूप ।
(६) चक्र में स्थित मूल शक्ति—पराशक्ति ।
(७) चक्रेश्वरी—प्रकाश–विमर्श–रूपिणी पराभट्टारिका ।
(८) शरीर–स्थान—ब्रह्मरन्ध्र ।
(९) शरीर की अवस्था—तुरीयातीता ।

'बिन्दु' का संक्षिप्त परिचय—

(१) आकार—बिन्दु ।
(२) रङ्ग—रक्त ।
(३) चक्र—(सृष्टि–स्थिति–संहार) सृष्टि चक्र ।
(४) वर्णाक्षर—'क्ष' वर्ण मूल प्रकृति ।
(५) चक्रस्थ मूल शक्ति—ललिताम्बा ।
(६) चक्रेश्वरी—श्रीललिता महाचक्रेश्वरी ।
(७) योगिनी चक्र—परापर रहस्य योगिनी चक्र ।
(८) मुद्रा—योनि मुद्रा ।
(९) देहस्थ अवयव—श्रद्धा ।
(१०) शरीर–स्थान– –भ्रूमध्य ।
(११) शरीर–चक्र—आज्ञाचक्र (द्विदल पद्म) ।
(१२) शरीरावस्था—तुरीया (महाकारण) ।

महाबिन्दु से बिन्दु तक की अवस्थाएं योगिमात्रैकगम्य है । 'बिन्दु' (अहम्भाव) में समस्त प्रपञ्च बीज रूप से आ जाने के कारण बिन्दुचक्र भी इसी के भीतर आ जाता है । बिन्दुचक्र ही प्रधान चक्र है जहाँ कामेश्वर (भगवान्) भगवती कामेश्वरी के साथ नित्य नित्यानन्दमय होकर विहार करते हैं । इसी से इस चक्र का नाम भी 'सर्वानन्दमय चक्र' है ।

महाशक्ति विश्रमणावस्था (प्रलयकाल) में प्रकाशरूप परब्रह्म के रूप में अवस्थित रहती है । उस समय इसे 'महाबिन्दु' या 'परब्रह्म' परमात्मा के नाम से अभिहित किया जाता है । प्रलयकाल की इस भास्य-भासक, श्रष्टव्य-श्रष्टृभाव शून्य महासुषुप्ति की अवस्था में सकल जगत् परमकारण में लीन रहता है और ब्रह्म एकमात्र स्वरूपावस्थित रहता है । चक्र में इस दशा को ही 'महाबिन्दु' कहा जाता है । यही अवस्था है 'शिवविश्राम'—'सुप्त्याह्वयं किमपि विश्रमणं शिवस्य' (सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति') । विश्व को अपने गर्भ में लीन करके आदिविमर्शमयी महाशक्ति प्रकाशस्वरूप में अवस्थित रहती है । सिसृक्षा होते ही वह प्रकाश से बाहर-सी होकर परब्रह्म (परशिव) के सम्मुख होती है । दोनों दर्पणवत् निर्मल होने के कारण एक-दूसरे में

प्रतिबिम्बित हो उठते हैं । अपनी शक्ति में प्रतिबिम्बित ब्रह्म में शक्ति का प्रतिबिम्ब पड़ने से सर्वप्रथम उसमें पूर्णाहम्भावविमर्श उत्पन्न होता है । यही 'अहम्' (यह अहमाकार स्फुरण या ज्ञान) ही विमर्शशक्ति है—

'विमर्शो नाम विश्वाकारेण विश्वप्रकाशेन ।
विश्वसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम्' ॥

यही है सृष्टि–स्थिति–संहार का कारण । यह अहम्भाव विमर्शमय है । पूर्णाहन्ता शिव भाव है । समस्त जगत् इसी अहम्भाव में स्थित है । अहम्भाव ही समस्त प्रपञ्च है । अहम्भाव का द्योतक है—'बिन्दु' । यह बिन्दु ही यन्त्र का प्राण है—नवों (९) चक्र इसी के विस्तार हैं । महाबिन्दु से बिन्दु तक पहुँचने में—उन्मनी, समनी, व्यापिनी, शक्ति, नादान्त, नाद, रोधिनी, अर्धचन्द्र एवं बिन्दु तक ९ अवस्थाएँ हैं । ये ही ९ चक्र हैं । विमर्श शक्ति सृष्टि करने की इच्छा से 'बिन्दु' रूप में प्रकट होती है—'विचिकीषुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम् ॥' इसी बिन्दुभाव में निःशेष ज्ञेय–ज्ञातृ–ज्ञानभाव एवं प्रपञ्च-वासना वटबीज के भीतर बीज एवं वृक्ष की भाँति सूक्ष्मभाव से लीन रहती है—

'यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्' ॥

अपने भीतर लयीभूत विश्व को व्यक्त करने की इच्छा से वह महाशक्ति रूप 'बिन्दु' त्रिकोण के रूप में परिणत हो जाता है । अपने त्रिकोणस्वरूप को प्रकट करता है –

'कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा'

बिन्दु रूप परावाक् (मूल कारणभूत बिन्दु) से ही पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी रूप त्रिपुटी के द्वारा त्रिकोणात्मक शब्दसृष्टि होती है और उससे अर्थसृष्टि । प्रलयकाल में निःशेष अर्थप्रपञ्च परावाक् रूप शब्दब्रह्म में लीन हो जाता है और सृष्टिकाल में पुनः प्रकट हो जाता है –

'विश्रान्तमात्मनि पराह्वयवाचि सुप्तौ
विश्वं वमत्यथ विबोधपदे विमर्शः'[१] ॥

बिन्दु रूप परावाक् की ही अभिव्यक्ति पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी है । यह बिन्दु रूप परावाक् ही 'कारणबिन्दु' है । पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी 'कार्यबिन्दु' है । इन चारों को क्रमशः 'शान्ता', 'वामा', 'ज्येष्ठा' और 'रौद्री' तथा 'अम्बिका', 'इच्छा', 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' कहा गया है । 'परावाक्' बिन्दु तत्त्व का अध्यात्म रूप है । यही 'बिन्दु' पश्यन्ती आदि कार्यबिन्दुओं के सृजन में प्रवृत्त होने पर 'र व' कहलाता है—'स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति गीयते ॥' यही 'शब्दब्रह्म' कहा जाता है ।

(१) निस्पन्द रवात्मक शब्दब्रह्म विवक्षोत्पन्न प्रयत्न से संस्कृत होकर शारीर वायु द्वारा नाभि में आता है और मनोमात्र विमर्श से युक्त किन्तु अ, क आदि वर्णविशेषशून्य, स्पन्दात्मक एवं प्रकाशमात्र रूप में 'कार्यबिन्दु' 'पश्यन्ती वाक्' कहलाता है ।

---

१. मातृकाचक्रविवेक ।

(२) इस रवात्मक ब्रह्म के पश्यन्ती रूप धारण कर लेने पर यह शब्दब्रह्म शारीर वायु द्वारा हृदय में पहुँचता है और निश्चयात्मिका बुद्धि से युक्त होकर अ, क आदि वर्ण विशेष के सहित स्पन्द से प्रकाशित होकर 'मध्यमा वाक्' कहलाता है ।

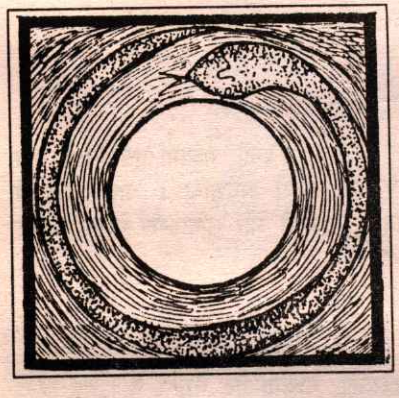
(३) जब यह रवात्मक शब्दब्रह्म मध्यमा वाक् बन कर हृदय में स्थित वायु से प्रेरित होकर मुख में आता है तब कण्ठताल्वादि स्थानों से स्पृष्ट होकर श्रोत्रगम्य अ, क, च, ट, त, प आदि वर्णों के रूप में बीजात्मक वैखरी वाक् कहलाता है ।

उपर्युक्त श्लोक के इसी भाव को अभिनवगुप्तपादाचार्य ने 'परमार्थसार' में इस प्रकार व्यक्त किया है कि यथा किसी निर्मल दर्पण में व्यक्ति का अपना मुख सुस्पष्टतः दृष्टिगत होता है उसी प्रकाश शिव के शक्तिपात के कारण निर्मल धीतत्त्व में शिव दृष्टिगत होता है—

'आदर्शे मलरहिते यद्वत् वदनं विभाति तद्वत् अयम् ।
शिवशक्तिपातविमले धीतत्त्वे भाति भावरूपः' ॥

'कामकलाविलास' के—'प्रतिरुचिरुचिरे कुड्ये चित्तमये निविशते महाबिन्दुः' में व्यक्त भाव इसी के समतुल्य है ।

महाबिन्दु : प्रथम स्वरूप



सहस्रार में महाबिन्दु

'महाबिन्दु' ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है । वहीं सहस्र दलों वाला श्वेत पङ्कज स्थित है, जिसमें कामेश्वर एवं कामेश्वरी (आदि – दम्पति) विराजमान हैं । उसी पङ्कज में द्वादश दल कमल भी स्थित है –

'ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहोदरे
नित्यलग्नमवदातमद्भुतम् ।
कुण्डलीविवर-काण्ड-मण्डितं
द्वादशार्णसरसीरुहं भजे ॥'

'व्यामृशामि युगमादिहंसयोः' इसी आदि दम्पति, शिव-शक्ति, कामेश्वर-कामेश्वरी, प्रकाश-विमर्श, पुरुष-प्रकृति को यहाँ 'आदि-हंस' कहा गया है—

'युगमादिहंसयोः ।' (पादुकापञ्चक) ॥ ४ ॥

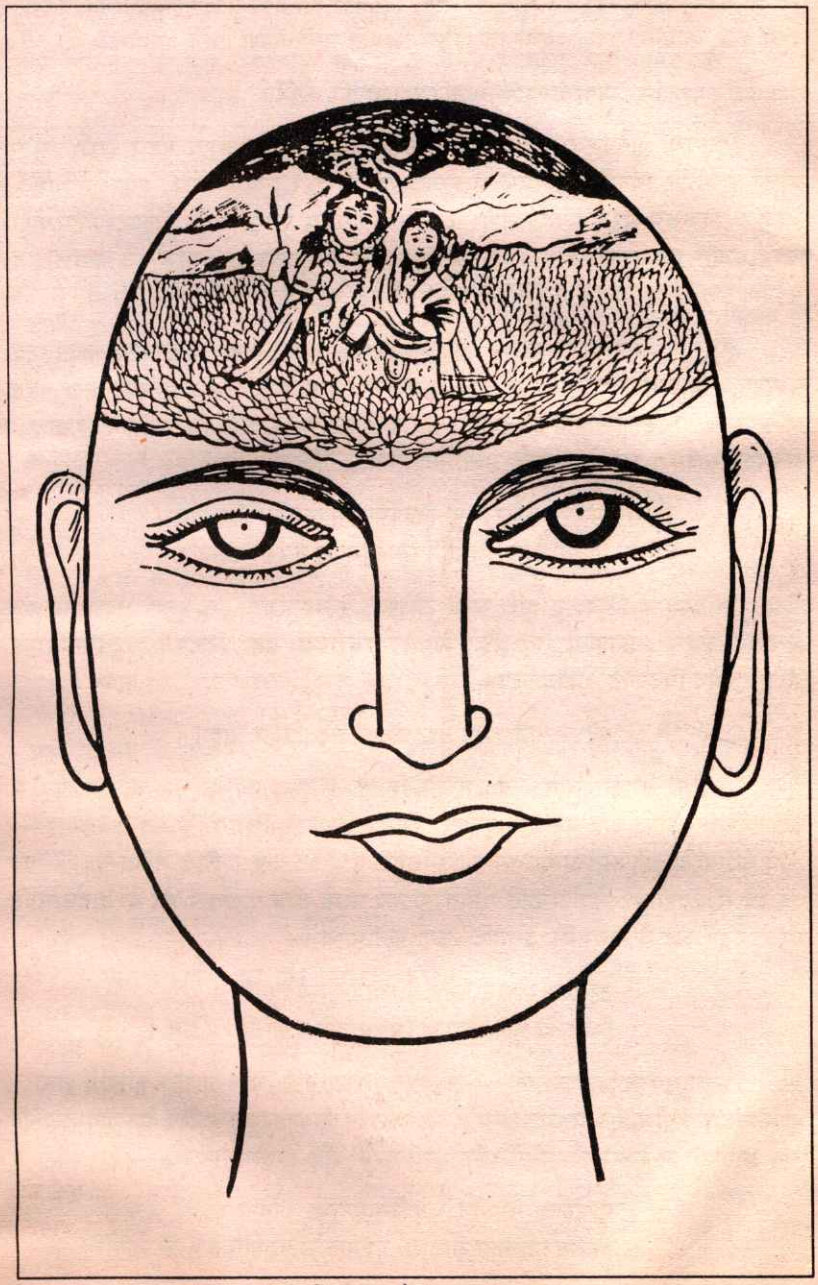
तादृगुज्ज्वलात्मकशक्त्यवलोकनोद्भूताहम्भावमेव विशिनष्टि—

चित्तमयोऽहङ्कारः सुव्यक्ताहार्णसमरसाकारः ।
शिवशक्तिमिथुनपिण्डः कवलीकृतभुवनमण्डलो जयति ॥ ५ ॥

('अहङ्कार' के तात्त्विक स्वरूप का विवेचन)

'अ' एवं 'ह' वर्णों के सुव्यक्त सामरस्य वाला, प्रकाश एवं 'विमर्श' के एकीकृत स्वरूप वाला (दिव्य दम्पतिमय), अन्तर्गर्भित विश्वसमूह वाला एवं चित्तमय (ज्ञानैक-स्वरूप) 'अहङ्कार' उत्कृष्टता में सभी का अतिक्रमण करके सर्वोपरि स्थित है ॥ ५ ॥

महाबिन्दु : द्वितीय स्वरूप
ब्रह्मरन्ध्र सरोवर के श्वेत कमल में शिव-शक्ति



सहस्रार में समय और समया का सामरस्य

* चिद्वल्ली *

अस्यार्थः—अहङ्कार इत्युद्भूतात्मस्मरणानुभवाभिव्यञ्जको योऽहमहमहमित्येवं विमर्शः । तस्य कारः कारणमहङ्कारः । एवम्भूतोऽहङ्कारः जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । तथोक्तं—

प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहम्भावेति कीर्तितः ।

चित्तमयो ज्ञानैकस्वभावः । सुव्यक्ताहार्णः समरसाकारः। अश्च हश्च अहौ । सुतरां व्यक्तौ सुव्यक्तौ स्पष्टौ । परस्परोद्भूतरूपौ सुव्यक्ताहौ । तयोस्समरसः एकलोलीभूतः । आकारः निजरूपं यस्य शिवप्रकाशः । शक्तिर्विमर्शश्च एतद्रूपमिथुनं दिव्यदम्पतिमयम् । पिण्डीभवति एकलोलीभवति । यत्र स शिवशक्ति मिथुनपिण्डः । अत एव कवलीकृत-भुवनमण्डलः कवलीकृतम् अन्तःस्थापितं भुवनमण्डलं षट्त्रिंशत्तत्त्वसङ्घातमयं येन सः ।

अयमर्थः—प्रत्याहारन्यायेन अन्तर्गर्भितसमस्तवर्णकदम्बकाहङ्काररूपप्रकाशविमर्श मम्पुटादेव शब्दार्थात्मकसर्वप्रपञ्चविकासो भवति । तथा च श्रुतिः—'य एको वर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति ।' तापनीयेऽपि—'कस्त्वमित्यहमिति होवाच । अहमेवेदं सर्वम् । तस्मादेवाहमिति सर्वाभिधानमिति ।' कैवल्योपनिषदि—

उमासहायं परमेश्वरं विभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

'स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमस्स्वराट्' इत्युक्त्वा 'तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ।' इति कामकामेश्वरीरूपं ब्रह्म निर्दिश्य तदुपासनमप्यहं ब्रह्मात्मकमेव विदधाति । तत्रैवान्यत्र—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।

इति अहमात्मकमेव ब्रह्मेति निर्दिश्यते । बृहदारण्यकेऽपि—'तद्वैतत्पश्यन् स ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवं सूर्यश्च' इत्यहंरूपमुपासनमभिधाय विपरीते बाधकमाह—'अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योऽवसान्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरिति' तत्रैवान्यत्र—'यत्र देव इव गजेवाहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः' इति । 'त्वं वा अहमस्मीति भगवो देवते अहं वै तत्त्वमसि' इत्यादि—तथा गीताभाष्ये—

उत्मृज्य स्वयमात्मानं ये ध्यायन्त्यन्यदेवताम् ।
भिक्षित्वा भूरि वित्तास्ते भिक्षित्वापि बुभुक्षिताः ॥ इति ।

विरूपाक्षपञ्चाशिकायामपि—'यस्य विमर्शस्य वर्णः पदमन्त्रार्णात्मकस्त्रिधा शब्दः । भुवनकलातत्त्वार्थो धर्मिण इत्थंप्रकाशस्य ॥ अहमेकोऽनस्तमितप्रकाशरूपोऽस्मि तेजसान्तमसामिति तथा अहमिति स एक उक्तोऽहन्तास्थितिरीदृशी तस्य' इति । रहस्यागमेऽपि—

पूर्णाहन्तात्मभावेन कृत्रिमाहन्तया विना ।
आत्मानमात्मना साक्षाद्यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥

* सरोजिनी *

आचार्य पुण्यानन्दनाथ ने इस श्लोक में 'अहङ्कार' के उस तात्त्विक स्वरूप का विवेचन किया है जो कि 'प्रकाश' की आत्मविश्रान्ति है—'प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहम्भावो प्रकीर्तितः ॥' अहङ्कार 'अ' एवं 'ह' अक्षरों का (या प्रकाश एवं विमर्श का) पूर्णतया अभिव्यक्त (fully manifested) सङ्गम है । यह अपने भीतर समस्त जगत् को धारण किये हुए है । यह वर्णमाला के निःशेष वर्णसमुदाय को अन्तर्गर्भित करके स्थित है । शिव द्वारा शक्ति का ईक्षण करने से एवं 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' का संयोग होने से जिस ज्ञान का उदय होता है उसी का अभिधान है—'अहङ्कार' । यह शिवशक्ति मिथुनपिण्ड है । 'अहङ्कार' अहन्ता (अहम्भाव – अहमस्मि) का विमर्श है ।

'चित्तमयो'—ज्ञानैकस्वभाव । **'सुव्यक्ताहार्णसमरसाकारः'**—'सुव्यक्त' = पूर्णाभिव्यक्त । **'हार्ण'** = 'ह' एवं 'अ' अक्षर । **'अहं'** = 'अ' एवं 'ह' वर्णों का अभिव्यक्त सामरस्य है । यह शिवशक्तिमिथुन के सङ्गम की स्थिति का प्रतीक या परिचायक है । यह 'परस्परोद्भूतरूप' है । **'समरस'** = एकलोलीभूत । दो अक्षरों के युगनद्ध एकीभाव की अहङ्कारात्मक वह स्थिति है जिसमें प्रत्येक पक्ष एक-दूसरे के समान परिमाण या अंश में समन्वित (एकीभूत) होना चाहता है ।

'शिवशक्तिमिथुनपिण्डः'—'शिव' = प्रकाश । 'शक्ति' = विमर्श । शिव एवं शक्ति दोनों मिलकर 'दिव्य दम्पति' बनते हैं । इन दोनों का सम्मिलन (सामरस्य) जिसमें कि एक-दूसरे के साथ समान अंश में (समभाव में, समान परिमाण में) मिलकर एक होना चाहते है—'शिवशक्तिमिथुनपिण्ड' कहलाता है । **'कवलीकृतभुवनमण्डलो जयति'**—अहङ्कार अपने भीतर समस्त भुवनों को अन्तर्गर्भित करके स्थित है । **'भुवनमण्डल'**—भुवनमण्डल से तात्पर्य लोक-लोकान्तर, अण्ड=पिण्ड एवं चतुर्दश भुवनादि मात्र ही नहीं है प्रत्युत इसका तात्पर्य उन समस्त विश्व एवं वैश्विक सत्ताओं से है जो ३६ तत्त्वों से निर्मित हैं । 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' के सामरस्य (जिसे 'अहङ्कार' कहा जाता है और जिसमें समस्त वर्ण अन्तर्भूत हैं) द्वारा शब्दार्थमय समस्त प्रपञ्च का आविर्भाव होता है । श्रुति कहती है कि 'अवर्ण' शक्ति के साथ सामरस्य प्राप्त करके निहितार्थमय अनेक वर्णों को अनेक प्रक्रियाओं द्वारा उत्पन्न करता है । अन्य उपनिषदों में 'तुम कौन हो ?' यह प्रश्न उठाते हुए इसके उत्तर-स्वरूप कहा गया है कि—'वह मैं हूँ । निश्चय ही यह सब कुछ मैं ही हूँ ।' इस प्रकार 'अहं' पद समस्त वस्तुओं को इंगित करता है—यह 'सर्वभिधानम्' एवं 'सर्ववाचम' है ।

'परात्रिंशिका' का अहं-विमर्श—'कामकलाविलास' में अहं तत्त्व का जो तात्त्विक स्वरूप प्रस्तुत किया गंया है उससे भी पूर्व 'परात्रिंशिका' में उसे और सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत किया गया है, जो कि निम्नानुसार है –

(१) 'अहं' शब्द की आद्य ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति के साथ ही 'अ' से 'ह' तक की समस्त मातृकाओं का आविर्भाव हुआ । 'अहं' = अ से ह पर्यन्त समस्त वर्णमाला 'अहं' से समस्त वर्णसमुदाय (अ से ह पर्यन्त) का जन्म हुआ*।

(२) इसके अनन्तर 'इच्छाशक्ति' में शाखाएँ फूटीं जो कि 'ज्ञानशक्ति' एवं 'क्रियाशक्ति' के रूप में प्रकट हुईं) । 'ज्ञानशक्ति' से अन्तःकरणचतुष्टय एवं ५ ज्ञानेन्द्रियाँ

एवं क्रियाशक्ति से १० प्राण एवं ५ कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुई ।

(३) वर्णमाला का निचोड़ या सार 'अहं' है । यही सृष्टि का 'प्रथम स्पन्द' है ।

(४) 'अ' या 'अनुत्तर शब्द' से समस्त मातृकाओं का आविर्भाव होता है ।

(५) 'अ' एवं 'ह' मिलकर जिस 'अहं' का निर्माण करते हैं वह 'परावाक्' का भी निचोड़ है—वह 'अघोर' की पदवी है ।

(६) 'अहं' की महत्ता पर ध्यान केन्द्रित करने से साधक को मोक्ष प्राप्त होता है ।

(७) वर्णमाला के दो भेद हैं—(१) 'स्वर' (२) 'व्यञ्जन' ।

(८) 'स्वर' शिवतत्त्व एवं 'व्यञ्जन' शक्तितत्त्व है ।

(९) अ से अनुस्वार पर्यन्त १५ स्वरों से १५ तिथियों का एवं क से म पर्यन्त समस्त व्यञ्जनों से पृथ्वी से पुरुष पर्यन्त समस्त २५ तत्त्वों का आविर्भाव होता है । इसका विस्तृत विवरण निम्नानुसार है –

'क' → पृथ्वी । 'ख' → जल । 'ग' → अग्नि । 'घ' → वायु । ङ → अम्बर । ट से ण → कर्मेन्द्रियाँ । त से न → ज्ञानेन्द्रियाँ । य, र, ल, व → राग, विद्या, कला, माया । च से ञ → ५ तन्मात्राएँ । प से म → अन्तःकरण ॥ श से क्ष → महामाया, शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति । 'क्ष' = क + ष । 'क्ष' नामक संयुक्ताक्षर में प्रपञ्च का रहस्य निहित है । यह शिव एवं शक्ति की एकता या अभिन्नता का प्रतिपादक है । 'क' अ का एवं 'ष' विसर्ग का विकसित रूप है । इस प्रकार 'क' या 'अ' 'शिवरूप' एवं 'ष' या विसर्ग 'शक्तिरूप' है । 'क' एवं 'ष' के संयोग से 'क्ष' का आविर्भाव होता है, जो कि शिवशक्तिसामरस्य का प्रतीक है । विश्व की सृष्टि तत्त्वों से एवं तत्त्व मातृकाओं से तथा मातृकाएँ 'अ' से जन्म लेती हैं । इस प्रकार सृष्टि का अनुत्तर तत्त्व 'अ' है, जो कि शिवरूप है और जिसमें समस्त विश्व अन्तर्गर्भित है । 'तात्पर्यदीपिका' में कहा गया है कि द्वादशान्त (आज्ञाचक्रोपरि ललाट में स्थित 'अर्धचन्द्र') से जो अमृतबिन्दु क्षरित होते हैं वे ही 'मूलाधार', 'स्वाधिष्ठान' आदि ६ कमलों में आकर वर्णों के रूप में परिणत हो जाते हैं ।

'कामकलाविलास' में अहं की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि—

(१) 'अन्तर्लीनविमर्श' (अतः निष्कल, तत्त्वातीत परम शिव) ही विश्व के मूल केन्द्र में उत्तीर्ण रूप से विद्यमान रहते हैं । विश्व-विकास के प्रति उनकी उन्मुखता या स्फुरत्ता ही प्रकाशैकस्वभाव परमशिव के रश्मिपुञ्ज से निर्मित निर्मल विमर्शात्मक दर्पण है ।

(२) इस विमर्शमय आदर्श (दर्पण) में प्रतिफलित परमशिव को सर्वप्रथम 'अहं' का बोध होता है ।

(३) यह 'अहं' अकारादि वर्णरूप वाचकों एवं तज्जात पदार्थरूप वाच्यों से पूर्ण विश्व के विकास रूप सोपान का प्रथम पर्व है ।

(४) ३६ तत्त्वों से युक्त समस्त भुवनमण्डल को 'मयूररस न्याय' से कवलित करके स्थित इस 'अहं' (पूर्णाहन्ता) को शिवशक्तिरूप 'दिव्य दम्पति' के सामरस्य के नाम से अभिहित किया जाता है । यह 'अहन्ता' अपने गर्भ में ५० वर्णों को प्रत्याहारन्याय से समेटे हुए स्थित है । इस 'अहं' में अकार 'अनुत्तर' संज्ञक शिव को इंगित करता है एवं हकार

'विमर्श' शक्ति को सङ्केतित करता है। इन दोनों का रूप ही एकाक्षरा वाक् या प्रणव है। इसी 'अहन्ता' रूप 'महाबिन्दु' में 'सित', 'शोण' एवं 'मिश्र' नामक बिन्दुत्रय स्थित है। विमर्श 'रक्तबिन्दु' है, प्रकाश 'शुक्लबिन्दु' है एवं दोनों का समरसभाव 'मिश्रबिन्दु' या 'सूर्य' है। इसी 'सूर्य' को परमात्मा या 'काम' भी कहा गया है। अग्नीषोमात्मक विमर्श (कला) शक्ति तदुभयात्मक काम से अविनाभूत बिन्दु समष्टि को 'कामकला' या 'त्रिपुरसुन्दरी' कहते हैं। इच्छा–ज्ञान–क्रिया के समुदित रूप एवं इच्छात्मक 'पश्यन्ती' मातृका, ज्ञानात्मक 'मध्यमा' मातृका एवं क्रियात्मक वैखरी मातृका को अन्तर्गर्भित किये हुए पूर्णाहन्तारूपिणी 'कामकला' ही परमातृका शक्ति है। ब्रह्माण्ड में जो त्रिपुरसुन्दरी या परमातृका है वही पिण्डाण्ड में कुण्डलिनी है। इस प्रकार 'अहं' मे सम्पूर्ण शब्द एवं अर्थ (वाचक–वाच्य) रूपा सृष्टि युगपत् सूक्ष्मरूप में घनीभूत होकर स्थित हैं। समस्त वर्णात्मक शब्दों एवं उनके वाच्यात्मक (सदाशिव से लेकर प्रकृति–पुरुष एवं पृथ्वी पर्यन्त) समस्त अर्थों का मूलकेन्द्र यही 'अहं' है।

'अहं' के अकार एवं हकार में अविभाज्य सम्बन्ध है—'अकारश्च हकारश्च द्वावेतावेकतः स्थितौ। विभक्तिर्नानयोरस्ति मरुताम्बरयोरिव॥ (तन्त्रालोक) नादात्मक हकार रूप शक्ति से तादात्म्यापन्न, अकार–हकारात्मक परामर्शस्वभाव परमेश्वर (अनुत्तर शिव) ही ५० वर्णों के रूप में अनुत्तर विसर्गात्मक माता–पिता के रूप में स्फुरित हो रहे हैं—

'इत्थं नादानुवेधेन परामर्शस्वभावकः।
शिवो मातापितृत्वेन कर्ता विश्वत्र संस्थितः॥' (तन्त्रालोक)

विश्वात्मक होते हुए भी विश्वोत्तीर्ण, स्वतन्त्र, दिव्य अक्षर तत्त्व ही 'अहं' है। ('विमर्शदीपिका')[१]

अनुत्तर विसर्गात्मक शिव-शक्ति का अद्वय सामरस्य ही 'अहं' है। यहाँ शिव एवं शक्ति का पृथक् पृथक् परामर्श नहीं होता। 'अहन्ता' स्वात्ममात्रस्फुरत्ता रूपा होती है। हकार पर्यन्त स्थूल रूप से प्रस्फुटित अनुत्तर परमेश्वर की यह विसर्गशक्ति लौटकर निखिल वाच्यवाचक जगत् को क्रोडीकृत करके शिवबिन्दु के रूप में निर्विभाग, परप्रकाशस्वभाव, अनुत्तरात्मकता का अवलम्बन ग्रहण करती है और इस प्रकार 'अहं' के रूप में स्थित होती है (तन्त्रालोक)—

'विसर्ग एव शाक्तोऽयं शिवबिन्दुतया पुनः।
गर्भीकृतानन्तविश्वः श्रयतेऽनुत्तरात्माम्।
अनुत्तरविसर्गात्मशिवशक्त्यद्वयात्मनि ।
परामर्शो निर्भरत्वादहमित्युच्यते विभोः॥' (तन्त्रालोक)

सम्पूर्ण वर्णों का विकास अहं (अहन्ता) द्वारा होता है। (तन्त्रालोक)॥ विश्व 'शक्ति' में एवं 'शक्ति' अनुत्तर तत्त्व में स्थित है। सम्पूर्ण विश्व शक्तिमय है। शक्ति शिव में विश्राम कर रही है। शक्ति 'हकार' है और शिव 'सकार'। इसी अकार–हकार (अहं) में सभी विश्रान्त हैं। इसी अनुत्तरात्मक, अरूपात्मक परसंवित् के द्वारा 'ह' रूपात्मक, कलात्मक विश्व भासित हो रहा है। 'अ' एवं 'ह' तथा 'बिन्दु' रूप त्रितय ही संघटित

---

१. 'विश्वात्मविश्वोत्तीर्णं च स्वतन्त्रं दिव्यमक्षरम्।
अहमित्युत्तमं तत्त्वं समाविश्य बिभेति कः'॥ (विमर्शदीपिका)

होकर भैरव का एक अखण्ड अहमात्मक पररूप है—

'तदेतत् त्रितयं द्वन्द्वयोगात्सङ्घाततां गतम् ।
एकमेव परं रूपं भैरवास्याहमात्मकम्' ॥ (तन्त्रालोक)

अहं एवं सृष्टि–विज्ञान—'परात्रिंशिका' की भाँति अन्य ग्रन्थों में भी 'अहं' का सृष्टि के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया है । 'अहं' कारण है और जगत् उसकी तद्रूपात्मक परिणति या रूपान्तरण है । 'प्रपञ्चसार तन्त्र', के अनुसार जनक-गत का संबन्ध निम्नानुसार है—(राशियों की उत्पत्ति) अ, आ, इ, ई → मेष । उ, ऊ, च, ट → वृष । ऋ, ॠ, ऌ, ॡ मिथुन । ए, ऐ → कर्क । ओ, औ → सिंह । अं, अः आदि → कन्या । कवर्ग → तुला । चवर्ग → वृश्चिक । टवर्ग → धनु । तवर्ग → मकर । पवर्ग → कुम्भ । य र ल व क्ष → मीन ।

नक्षत्रों की उत्पत्ति—अ, आ → अश्विनी । इ → भरणी । ई, उ, ऊ → कृत्तिका। ऋ, ॠ, ऌ ॡ → रोहिणी । ए → मृगशिरा । ऐ → आर्द्रा । ओ, औ → पुनर्वसु । क → पुष्य । ख, ग → श्लेषा । घ, ङ → मघा । च → पूर्वा । छ, ज → उत्तरा । झ → हस्त । ट, ठ → चित्रा । ड → स्वाती । ढ, ण → विशाखा । त, थ, द → अनुराधा । ध → ज्येष्ठा । न, प, क → मूल । ब → पूर्वाषाढ । भ → उत्तराषाढ । म → श्रवण, । य, र → श्रविष्ठा । ल → शतभिषा । व, श → प्रोष्ठपदा । ष, स, ह, क्ष → उत्तराभाद्रपद ॥ अं, अः → रेवती । (प्रपञ्चसारतन्त्र)

'वर्ण' साङ्केतिक ध्वनियाँ मात्र नहीं हैं प्रत्युत समस्त मन्त्रों, विद्याओं एवं तत्त्वों के जनक भी हैं –

'सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानां च यशस्विनि ।
इयं योनिः समाख्याता सर्वतन्त्रेषु सर्वदा ॥' (परात्रिंशिका)

हृदयप्रदेश में 'अकार' एवं द्वादशान्त में 'हकार' का उदय होता है । यही प्रत्याहार क्रम से अपने गर्भ में समस्त वर्णों को एवं विश्व को रखकर 'अहं' स्वरूप अद्वैत तत्त्व के रूप में और प्रकाश की आत्मविश्रान्ति के रूप में स्थित है—'हृद्यकारो द्वादशान्ते हकारस्तदिदं विदुः । अहमात्मकमद्वैतं यः प्रकाशात्मविश्रमः' ॥ (तन्त्रालोक : ६ आ० २३८)

यह 'अहम्भाव' क्या है ? 'प्रकाश' की आत्मविश्रान्ति ही अहम्भाव है—'प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहम्भावो हि कीर्तितः । उक्ता सैव विश्रान्तिः सर्वापेक्षानिरोधतः । स्वातन्त्र्यमथ कर्तृत्वं मुख्यमीश्वरतापि च[१] ॥ 'विरूपाक्षपञ्चाशिका' में भी अहं तत्त्व की इस प्रकार व्याख्या की गई है –

'स्वपरावभासनक्षमः आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ ।
अहमिति स एक उक्तः अहन्तास्थितिरीदृशी तस्य[२] ॥'

'पूर्णाहन्ता, ही सर्वोच्च अहङ्कार है ।
'विमर्श' ही परमशिव का पूर्ण 'अहम्' है[३] ॥ ५ ॥

---

१. अज० प्र० सि० २३ । २. विरू० पं० ।
३. 'अ' प्रकाश है । 'ह' विमर्श है । दोनों का संयोग 'म' बिन्दु है । शिवतत्त्व में 'अहं', सदाशिव में 'अहमिदं' एवं ईश्वर में 'इदमहं' विमर्श होता है ।

इतः परतरं द्वाभ्यां चित्तमये निविशते महाबिन्दुः, इत्युक्तं बिन्दुस्वरूपनिरूपणद्वारा कामकलामुपदिशति—

सितशोणबिन्दुयुगलं विविक्तशिवशक्तिसङ्कुचत्प्रसरम् ।
वागर्थसृष्टिहेतुः परस्परानुप्रविष्ट विस्पष्टम् ॥ ६ ॥
बिन्दुरहङ्कारात्मा रविरेतन्मिथुनसमरसाकारः ।
कामः कमनीयतया कला च दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू ॥ ७ ॥

('बिन्दु' के तात्त्विक स्वरूप का विवेचन)

श्वेत एवं लोहित वर्ण वाले 'बिन्दुद्वय' अन्योन्यप्रसरणशील शिव-शक्ति हैं, जो (अपने पारस्परिक आनन्दोपभोग या गुप्त ऐकान्तिक पारस्परिक आनन्दक्रीड़ा में) संकुचित एवं प्रसृत हो रहे हैं । वे शाब्दी एवं आर्थी सृष्टि के कारण हैं तथा परस्पर एक-दूसरे में प्रविष्ट होते हुए भी परस्पर एक-दूसरे से पृथक् हो रहे हैं । 'बिन्दु' जो कि अहङ्कार का रूप है, श्वेत एवं लोहित बिन्दुओं का सामरस्य है । सूर्य 'काम' है । (यह) 'काम' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें कमनीयता है । 'कला' बिन्दुद्वय है, जो कि चन्द्रमा एवं अग्नि के रूप में स्थित है ('कला' चन्द्राग्निशरीरी बिन्दु है ।) ॥ ६–७ ॥

*** चिद्वल्ली ***

इति सितः शुभ्रः शोणो रक्तः तद्रूपौ बिन्दू तयोर्युगलम् । अत एव विविक्तशिवशक्ती अन्योन्यविहरणशीले शिवशक्ती यस्मिन् कर्मणि तत् । अत एव सङ्कुचत्प्रसरं सङ्कुचन्मुकुली भवन् प्रसरः जगत्सृष्टिरूपो विकासो यस्मिन् तत् । वाचः परापश्यन्त्यादिरूपसमस्तशब्दार्थाः शिवादिक्षित्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वरूपाः तेषां सृष्टि षडध्वात्मकजगन्निर्मितिः । तत्र हेतुः कारणम् । तथा सौभाग्यहृदये—

वर्णः कला पदं तत्त्वं मन्त्रो भुवनमेव च ।
इत्यध्वषट्कं देवेशि भाति त्वयि चिदात्मनि ॥

परस्परानुप्रविष्टविस्पष्टं परस्परम् अन्योन्यम् अनुप्रविष्टमन्तर्गतम् । विस्पष्टं पृथग्भूतं च तत् । एवम्भूतं सितशोणबिन्दुयुगलं कामकामेश्वरीरूपं दिव्यमिथुनं विभावयेदिति पूर्वेण सम्बन्धः । अत्रेदमतिरहस्यम्—'यः परस्स महेश्वरः' इति श्रुत्युक्तरीत्या निखिलवेदादिशब्दोत्पादकोऽनुत्तराक्षराभिधेयः परमेश्वरः स्वात्मभूताखिलप्रपञ्चनिलयात्मकविमर्शशक्तिमनुप्रविश्य बिन्दुभावमयते । ततः सा विमर्शशक्तिरपि स्वान्तर्गतप्रकाशमयबिन्दुमनुप्रविशति। ततश्च बिन्दुरुच्छूनो भवति तस्माद् बिन्दोर्नादात्मिका समस्ततत्त्वगर्भिणी तेजोमयी नीवाराग्रसूक्ष्मरूपिणी निर्गत्य शृङ्गाररूपतामुद्वहते एवं च बिन्दुनादस्वरूपयोः तयोः प्रकाशविमर्शयोरहमिति शरीरं भवति । एवं द्विरूपयोस्तयोर्मध्ये एको विमर्शो रक्तबिन्दुरूपं भजते अपरः प्रकाशः शुक्लबिन्दुभावमेति । उभयोर्मेलने मिश्ररूपं सर्वतेजोमयं परमात्मस्वरूपं भवति । तथा रहस्याम्नाये प्रकाशविमर्शसंवादचन्द्र चन्द्रिकाख्यप्रकरणे अयमर्थः सम्यक् निरणायि—

'प्रसीद भगवन् शम्भो ममात्मोपासनं प्रति ।
यो यो भवति सन्देहः तं भवान्वक्तुमर्हसि ॥
आत्मानुसन्धयात्मानं परात्मीकृतरूपिणः ।
भगवन् यः परानन्दः स कथं वद मे प्रभो' ॥
इति पृष्टवतीं देवीं प्रत्याह परमेश्वरः ।
सकलाधारभूतो यः समस्तस्योपरि स्थितः ।
तस्मिन्नात्मनि सन्धाय स्वात्मानं परमं व्रजेत् ॥
आवयोर्जगदात्मत्वात् तदात्म्यादावयोरपि ।
आत्मोपासनमानन्दं सर्वेषां विद्धि जानताम् ॥
तादात्म्यादावयोर्नित्यं जगत्प्राणावुभौ हि नौ ।
ज्ञात्वैतान्सकलान्सम्यग्जानीयात्संविदं पराम्' ॥

विमर्शः—

आवयोरपि तादात्म्यं कथं योगोऽपि सम्भवेत् ।
कर्मसाम्यं कथं केन निराचारावधूतकौ ॥

इत्यादि प्रश्नपञ्चकस्योत्तरमाह शिवः—

'शिवकामात्परं तत्त्वं वर्ण्यते इति चेच्छृणु ।
स चोदयः प्रिये वक्तुं नालं वाग्विषयातिगम् ॥
पार्णाख्यशिवेच्छायां सत्यां सा विमर्शा तदा ।
अजायत परार्णाख्या बीजादङ्कुरवत्प्रिये ॥
अनुप्रविश्यतां शक्तिं वामाद्यैः पिण्डितो भवेत् ।
समस्तबीजगर्भाढ्यः सूक्ष्मबिन्दुत्वमेति सः ।
तत्प्रविश्याम्बिका भूत्वा सानन्दाकारतां गता ॥
तद्व्याप्त्या जृम्भिता तस्माद् बिन्दुरुच्छूनतां गतः ।
तथा सा बिन्दुमुद्भिद्य नीवाराग्रवदुत्थिता ॥
तुल्यकालोदिता नित्यरश्मिकोटिविडम्बिनी ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वगर्भाढ्या परमाद्यर्णगर्भिणी ॥
सा पुम्भावपरं बिन्दुं प्रविश्य ध्वनितां गता ।
सोऽपि नादात्मिकां शक्तियोनिमेति स्वशक्तिताम् ॥
तयोर्विभेदयोरेको रक्तोऽन्यश्शुक्लतां गतः ।
मध्यबिन्दुविमिश्रं तत्सुषुम्नाकन्दखात्मकम्' ॥

इत्यादिना बिन्दुत्रयनिरूपणं कृतम् । तदिह प्रसङ्गात् किञ्चिदुक्तम् । अन्यत्सर्वं गुरुमुखादेवावगन्तव्यम् । श्रुतिरपि—'एको वर्णो बहुधा शक्तियोगात्' इत्यादि । एतदेव बिन्दुत्रयनिरूपणं विवृणोति-बिन्दुरहङ्कारात्मेति-बिन्दुः उक्तस्वरूपः । अहङ्कार अन्तर्गर्भित-समस्तवर्णराशिरनुत्तरास्फाररूपाकारहकारतादात्म्यं स्वरूपं यस्य सः । वर्णात्कार इति सूत्रेण

अहं शब्दात् कारप्रत्ययः । एकार इतिवत् । अत एव एतन्मिथुनसमरसाकारः एतयोरकारहकारवाच्ययोः प्रकाशविमर्शयोः । मिथुनं द्वन्द्वम्, तस्य दिव्यदम्पतिरूपस्य मिथुनस्य । समरसः परस्परानुप्रविश्यमानमानुकूल्य तदेवाकारः स्वरूपं यस्य सः । एवंभूतो रविः । सितशोणबिन्दुसमरसीभूतो मिश्रबिन्दुरित्यर्थः । लोकेऽपि सूर्यस्य मिश्ररूपत्वं अग्नीषोमयोः प्रवेशनिर्गम-श्रवणादेवं वर्णयति—

'तथा उद्यन्तं वा वादित्यमग्निरनुसमारोहति । अग्निं वा वादित्यः सायं प्रविशति' इति श्रुतेः । अमा सह सूर्याचन्द्रमसावस्यां तिथौ तिष्ठत इत्यमाशब्दव्युत्पत्त्या चन्द्रसूर्ययोः प्रवेशनिर्गमने प्रसिद्धे तस्माद् रविर्मिश्रबिन्दुरेवात एव तस्योपास्यत्वमाह—काम इति । काम्यते इत्यभिलष्यते स्वात्मत्वेन परमार्थविद्भिः महद्भिः योगिभिरिति कामः तत्र हेतुः कमनीयतयेति कमनीयत्वम् । तथा चोपनिषदि—'हिरण्यश्मश्रुः हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्ण' इति । ईशावास्येऽपि—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरंशुद्धमपापविद्धम् । इति ।

तथा तत्रैव—'यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषस्सोऽहमस्मि' इति । महासुन्दरं कामेश्वरमभिधाय तादृशमहिमानं परामृशति । रहस्याम्नाये—

निरुत्तरं निराधारं सच्चिदानन्दसागरम् ।
यदेतच्छाम्भवं निर्वाणाधारतां गतम् ॥ इत्यादि ।

कलाविमर्शशक्तिः । दहनो वह्निः । इन्दुः चन्द्रः । तावेव विग्रहावाकारौ ययोर्बिन्द्वोः तौ दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू । अयमर्थः—अग्नीषोमरूपिणी विमर्शशक्तिः । तदुभयभूत-कामेश्वराविनाभूता महात्रिपुरसुन्दरी बिन्दुसमष्टिरूपा कामकलेत्युच्यते । सैवोपास्यतया सर्वागमेषु च उद्घोष्यते । तथा हि—

शुक्रः शिवो रक्तशक्त्यां पराशाम्भववेधतः ।
रक्तशाम्भवरूपेण परातत्त्वेन शक्तितः ॥
रक्तः शिवः शुक्लशक्त्यां परशाम्भवैक्यभावतः ।
रक्तः शिवः शुक्लशक्त्यां सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ इति ।

अन्यत्रापि—

अग्रबिन्दुपरिकल्पिताननामन्यबिन्दुरचितस्तनद्वयीम् ।
नादबिन्दुरशनागुणास्पदां नौमि ते परशिवे परां कलाम् ॥
मिहिरबिन्दुमुखीं तदधोल्लसच्छशिहुताशनबिन्दुयुगस्तनीम् ।
सहपरार्धकलारशनास्पदां भजति नित्यमिमां परदेवताम् ॥
ईकारोर्ध्वगतो बिन्दुर्मुखं भानुरधोगतौ ।
स्तनौ दहनशीतांशू योनिहार्द्धकला भवेत् ॥ इति रहस्यम् ।

अयमत्र निष्कर्षः—स्वान्तर्गतानन्ताक्षरराशिमहामन्त्रमयी पूर्णाहन्तामयी प्रकाशानन्दसारा बिन्दुत्रयसमष्टिभूतदिव्याक्षररूपिणी कामकला नाम महात्रिपुरसुन्दरी मातृकापरमयोगिभि—

र्महामहेश्वरैरनिशमनुस्मर्तव्येति । एवम्भूतमाहात्म्यं ब्रह्मोपनिषदि च प्रतिपाद्यते । यथा—'अथास्य पुरुषस्य चत्वारि स्थानानि भवन्ति । नाभिर्हृदयं कण्ठं मूर्धा च । तत्र चतुष्पादं ब्रह्म विभाति । जागरिते ब्रह्मा स्वप्ने विष्णुः सुषुप्तौ रुद्रः । तुरीयमक्षरम् । स आदित्यो विष्णुश्चेश्वरश्च । स्वयमनस्कमश्रोत्रमपाणिपादं ज्योतिर्विदितम् ।'

अस्यार्थः—अस्य एषदेवस्य सम्प्रसादोऽन्तर्यामिखग इत्यादि । पूर्वतनवाक्यजालैर्निर्णीतार्थकस्य पुरुषस्य चत्वारि स्थानानि मूलाधारहृदयकण्ठदेशोत्तमाङ्गरूपाणि भवन्ति । तेषु चतुर्षु स्थानेषु चतुष्पादं चतुर्विंशचरणं ब्रह्म सर्वव्यापनशीलं शुभ्रं स्वच्छप्रकाशम् । अक्षरं न क्षरतीति व्युत्पत्त्या जगदुत्पत्तिकारणत्वान्मूलकारणभूतं विभाति ।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।

इति निरवधिकतेजोमयं सत् विद्योतत इत्यर्थः । एवम्भूताक्षरस्य स्थानदेशेषु उपदेशद्वारा अवयवस्वरूपमुक्त्वा तुरीयं समुदायरूपं परमाक्षरबिन्दुद्वादशान्ते कामकलात्मकं परं ज्योतिर्मयमिति व्याचष्टे— 'तुरीयमक्षरमिति' । स आदित्य इत्यारभ्य स ईश्वरो जाग्रदित्यन्तमन्तरम् । आदित्यः प्रकाशरूपः विष्णुः व्यापनशीलः । प्राणः जीवः सर्वजीवनदायकः । पुरुषः सर्वंजीवति जीवः प्राणादिरूपी । अग्निरग्रनेता । एवम्भूतस्स ईश्वरः विमर्शाख्यकामेश्वरीयुक्तः परमशिव इत्यर्थः । तथा चोक्तमथर्वशिरसि—

'अथ कस्मादुच्यते ईशान इत्युक्त्वा स्वयमेव व्याचष्टे । यस्सर्वान् भावान् ईशत ईशनीभिः परमशक्तिभिः' इति । तथान्यत्र—'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च ।' इति । एवम्भूतः कामेश्वरः तुर्याक्षररूपः । जागर्ति जाग्रतीत्यर्थः । 'व्यत्ययो बहुलमिति सूत्रेण सुप्तिङ्व्यत्ययविधानात् । अत्र जागरणं नाम परापश्यन्ती—मध्यमावैखरीमयमातृकाचक्रात्मिका श्रीचक्रप्रथममध्यभूतसर्वानन्दमयाख्ये निरवधिकतेजोमण्डलभवने ।

बैन्दवानलसंरूढं संवर्तानलचिद्घनम् ।
कामेश्वराङ्कपर्यङ्कनिविष्टमतिसुन्दरम् ॥

इत्युक्तरीत्या प्रकाशानन्दनाथरूपत्वम् । एतदभिप्रायेण लीलाविनोदनोद्युक्त इत्यनेन जागरूक इति व्याख्यातम् । तत्तादृगक्षरं ज्योतिर्मयं निष्कलमित्याचष्टे—तेषां मध्ये इत्यादिना । तेषाम् आधारहृदयकण्ठप्रदेशोत्तमाङ्गरूपस्थानविशेषोपासनाक्लृप्तावयवाक्षराणां मध्ये यत्परं तुरीयभूतमक्षरं ब्रह्म निर्वाणाख्यम् । विभाति विद्योतते । एवम्भूतनिष्कलमित्याह—अच्छायमपवनमित्यादिना परमप्रकृतिमक्षरं निरूपयति—ज्योतिर्विदितमिति । वन्दे ज्योतिरनुत्तरमित्यादिना प्रकाशात्मकत्वादेव ज्योतिर्मयत्वं विदितं सर्ववेदान्तैर्वेदितमित्यर्थः । पुनरपि ज्योतिर्मयमक्षरं ब्रह्म सर्वात्मकं सर्वेश्वरं निर्वाणरूपमिति स्वयमेव श्रुतिः स्पष्टमाचष्टे । यथा 'यत्र लोका न लोका देवा न देवा वेदा न वेदा यज्ञा न यज्ञा माता न माता पिता न पिता स्नुषा न स्नुषा चण्डालो न चण्डालः पुल्कसो न पुल्कसः श्रमणो न श्रमणः तापसो न तापसः । एकमेवेत्परं ब्रह्म विभाति' । इति सर्वात्मकं ब्रह्म निर्दिश्य 'हृद्याकाशे तद्विज्ञानमित्यारभ्य स

विभुः प्रजासु ध्यानेन यो वेदेति' उपासनास्वरूपमुक्त्वा पुनरप्याह—तत्परं ब्रह्म विभाति । निर्वाणं न तत्र देवा ऋषयः पितर ईशते प्रतिबुध्यः सर्वविद्येति । अन्यत्र च—दृश्यतेत्यन्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः—इत्यादि श्रुत्या परमार्थविद्भिस्तादृशमक्षरं सम्यगवगम्यते । तथा चतुश्शत्यां द्वादशश्लोक्याम्—

यदक्षरमहासूत्र प्रोतमेतज्जगत्त्रयम् ।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते ॥ इति ।
यदक्षरशशिज्योत्स्नांमण्डितं भुवनत्रयम् ।
यदक्षरैकमात्रेण संसिद्धचै स्पर्धते नरः ॥
रविताक्ष्यैन्दुकन्दर्पशङ्करानलविष्णुभिः ।
वन्दे ताहक्षय्यां मातृकाक्षररूपिणीम् ॥ इति ।

प्रत्यभिज्ञायां च—

सर्वदा त्वन्तरानन्दः सर्वतत्त्वौघनिर्भरः ।
शिवश्चिदानन्दघनः परमाक्षरविग्रहः ॥ इति ।

तथा—

स्वात्मैव सर्वजन्तूनामेक एव महेश्वरः ।
चित्स्वरूपोऽहमहमित्यखण्डामर्शबृंहितः ॥ इति ।

यथा स्वच्छन्दे 'तदूर्ध्वे चोन्मना स्मृता' इत्युपक्रम्य—

नात्र कालः कलाभावो नैकता न च देवता ।
सुनिर्वाणं परं शुद्धं रुद्रवक्त्रं तदुच्यते ॥
शिवशक्तिरिति ख्यातं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
पश्यातीतं वरारोहे वाङ्मनोऽतीतमद्भुतम् ॥
अनिष्कलं च सकलं नीरूपं निर्विकल्पकम् ।
निर्द्वन्द्वं परमं तत्त्वं शिवाख्यं परमं पदम् ॥ इति ।

विज्ञानभैरवभट्टारकेऽपि बिन्दुरूपस्य चक्रस्य स्थूलवर्णक्रमेण तु अर्धेन्दुबिन्दुनादान्तं शून्योच्चारात् भवेच्छिवा ॥ इत्यादि । अमृतानन्दयोगिनश्च—

'बैन्दवे परमाकाशे सच्चिदानन्दलक्षणे ।
निष्पञ्चे निराभासे निर्विकल्पे निरामये ॥
अनुत्तरचमत्कारपरामर्शपवित्रिते ।
निरुत्तरमहाशून्ये शून्यशून्यान्तवर्जिते ॥
स्त्रीपुंनपुंसकाख्याभिः कल्पनाभिरकल्पिते ।
आदिमध्यान्तनिर्मुक्ते भावपञ्चकभासिते ।
सर्वोपमानरहिते प्रकाशानुभवात्मिके ॥ इति ।

शिवानन्दस्वामिनोऽपि—

सकलाद्या स्थिते हृद्ये कामराजकलात्मिके ।
बिन्दुनादकलाकारे नमस्त्रिपुरसुन्दरि ॥

वयमपि चिदानन्दवासनायाम्—

चतुरण्डमहारत्नमण्डितं विश्वविग्रहम् ।
क्षित्यादि शिवपर्यन्तं व्याप्यावस्थाचतुष्टयम् ॥
पिण्डं विभाव्य तन्मध्ये सर्वातीतघनां पराम् ।
तुर्यातीतां चिदानन्दरससारामनुत्तराम् ॥
तत्रापि स्वेच्छयोपात्तजागरादिदशां पराम् ।
अशेषसंविदामन्तर्मुखविश्रान्तिरूपिणीम् ॥
अनन्तकोटिचन्द्रार्कसन्निभां षोडशाधिकाम् ।
स्वान्तर्गतैकतापन्नषट्त्रिंशत्तत्त्वसञ्चयाम् ।
सर्वोत्तीर्णां महाबिन्दुरूपामाराधयाम्यहम् ॥
एवमादिकं श्रुतिस्मृतिजालमनुसन्धेयम् ॥ ६–७ ॥

* सरोजिनी *

ग्रन्थकार पुण्यानन्दनाथ ने इस श्लोक में 'बिन्दु' के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहा है कि 'बिन्दु' के दो भेद हैं—(क) श्वेत बिन्दु या रवि (ख) रक्तबिन्दु या काम । (क) श्वेत बिन्दु या शिव (ख) रक्तबिन्दु या शक्ति । ये दोनों पारस्परिक आनन्दोपभोग में विस्तार एवं संकोच दोनों प्राप्त कर रहे हैं । सित, शोण बिन्दु शब्द एवं अर्थ के मूल कारण हैं । बिन्दु शब्दोत्पत्ति एवं अर्थोत्पत्ति दोनों का केन्द्र है । ये दोनों बिन्दु एक-दूसरे में प्रवेश करते हैं एवं एक-दूसरे से पृथक् भी हो जाते हैं । वागर्थसृष्टि के लिए बिन्दुद्वय का परस्परानुप्रवेश आवश्यक है । 'बिन्दु' अहङ्कारात्मा है । 'बिन्दु' सूर्य है और श्वेत–रक्त बिन्दुओं का संयोग है । सूर्य को 'काम' भी कहा गया है, क्योंकि उसमें कामना है । 'कला' बिन्दुद्वय (चन्द्र एवं अग्नि) है । 'अर्थ' ३६ तत्त्व (शिव से क्षितिपर्यन्त ३६ तत्त्व) हैं ।

'सितशोणबिन्दुयुगलम्'—'श्वेत' एवं 'आरक्त' बिन्दुद्वय । ये श्वेत एवं रक्त बिन्दु शिव एवं शक्ति हैं । शिवशक्ति 'अन्योन्य विहरणशील' हैं । **'विविक्त'** = अन्योन्य विहरणशील । पृथग्भूत, एकान्त, निर्जन, एकान्त स्थल, विजन । **'संकुचत् प्रसरम्'** = संकुचित एवं प्रसरणशील । **'प्रसर'** = जाग्रत सृष्टिरूपो विकासः प्रसरः । **'वागर्थसृष्टिहेतु'** = यहाँ 'वाक्' से तात्पर्य वाणियों के समस्त प्रकार अर्थात्—'परा', 'पश्यन्ती', 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' से है । **'अर्थ'** = ३६ तत्त्व (शिवतत्त्व से पृथ्वी पर्यन्त ३६ तत्त्व)

शास्त्रों में भी कहा गया है कि 'ओ देवेशि ! चिद्रूपा आपमें ही वर्ण, कला, पद, तत्त्व, मन्त्र एवं भुवन – 'षडध्व' स्थित हैं ।'

ये दोनों 'बिन्दु' जो परस्परानुप्रविष्ट होते हैं एवं पृथक् हो जाते हैं ('परस्परानुप्रविष्टविस्पष्टम्' हैं) – परस्पर संयुक्त श्वेत–रक्त बिन्दु (सितशोणबिन्दुयुगल)

हैं और ये काम–कामेश्वरी नामक दिव्य दम्पति (पति–पत्नी) हैं । श्रुति भी कहती है — 'जो सर्वोच्च (पर) महेश्वर है' यह परस्वरूप परमेश्वर जो कि वेदों की समस्त ध्वनियों का उत्पादक, अनुत्तर, आद्यवर्ण 'अ' है, बिन्दुभाव (बिन्दुता) प्राप्त करता है । यह बिन्दुभाव तब प्राप्त करता है जब कि अपनी स्वाङ्गभूता विमर्शशक्ति में प्रवेश करता है । यह 'विमर्श शक्ति' भी वह पराशक्ति है जिसमें समस्त प्रपञ्च लयीभूत है । इसके अनन्तर विमर्शशक्ति भी अपने में स्थित प्रकाशमय बिन्दु में प्रवेश करती है । इस स्थिति में 'मिश्रबिन्दु' उच्छ्रूनावस्था प्राप्त करता है – कार्योन्मुख होता है । उस 'बिन्दु' से वह 'नादात्मिका शक्ति' आविर्भूत होती है जिसके गर्भ में समस्त तत्त्व स्थित हैं, जो समस्त तेजों का तेज या मूलाशक्ति है, बीजरूपा है, केशाग्रसन सूक्ष्मा है एवं 'शृङ्गाटक' के आकार की है । इसी प्रक्रिया से 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' जो कि नाद–बिन्दुस्वरूप हैं, अहं के रूप में शरीर धारण करते हैं । इनमें से 'विमर्श' रक्तबिन्दु, 'प्रकाश' श्वेतबिन्दु एवं दोनों का एकीभूत रूप 'मिश्रबिन्दु' है, जो कि सर्वतेजोमय एवं परमात्मस्वरूप है ।

श्रुति भी कहती है—''अवर्ण जो कि 'निहितार्थ' (अर्थों से परिपूर्ण) है शक्ति के साथ संयुक्त होकर अनेक वर्णों का आविर्भाव करती है'' । आचार्य पुण्यानन्दनाथ इन्हीं तीन बिन्दुओं का 'अहङ्कारात्मा' आदि कहकर भी विशद व्याख्या करते हैं ।

'मिश्र बिन्दु' जो कि रक्त एवं श्वेत बिन्दुओं से निर्मित होता है, उस 'अ' एवं 'ह' का संयुक्त रूप है, जिसमें समस्त वर्ण अन्तर्गर्भित हैं । 'बिन्दु' अकार एवं हकार का एकीभूत रूप है—'प्रकाश' एवं 'विमर्श' का संयुक्त स्वरूप है—दिव्य दम्पति का सामरस्य है । इस 'दिव्य दम्पति का सामरस्य' परस्पर एक-दूसरे में प्रविष्ट होने एवं परस्पर सहयोग करने की दशा है । यह पारस्परिक क्रिया 'बिन्दु' के अपने मूल स्वभाव में निहित है । 'सूर्य' मिश्र बिन्दु है, क्योंकि यह श्वेत-रक्त बिन्दुओं का सामरस्य है । सामान्यतया भी 'सूर्य' के मिश्रित स्वरूप का ही वर्णन किया जाता है, क्योंकि कहा गया है कि 'सूर्य' अग्नि एवं चन्द्रमा में प्रवेश करता है एवं उसी से निःसृत होता है । श्रुति कहती है कि उसी प्रकार अग्नि भी उदित सूर्य में प्रवेश करती है । सन्ध्या के समय पुनः सूर्य अग्नि में प्रवेश कर जाता है । दिन में सूर्य अग्नि के प्रकाश को अन्तर्निविष्ट किये रहता है और उसके लुप्त होने पर सन्ध्या के समय अन्य प्रकाश दिखाई पड़ने लगता है । 'अमावस्या' को अमावस्या इसलिए कहा जाता है क्योंकि सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों का सङ्गम होता है । 'अमा' = साथ, 'वसतः' = हैं । सूर्य एवं चन्द्र का अपने में परस्परानुप्रवेश सर्वविदित है अतः सूर्य 'मिश्रबिन्दु' है ।

'काम' = जिसकी कामना की जाय, जो काम्य हो वही 'काम' कहा जाता है । योगियों द्वारा काम्य तत्त्व ही 'काम' है । जो उपास्य है वही 'काम' है । सौन्दर्य ही 'काम' है, इच्छा है । 'छान्दोग्योपनिषद्' में सूर्य में पुरुष की अवस्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'स्वर्णश्मश्रु, स्वर्णकेशी एवं नखशिखान्त स्वर्ण' । 'ईशावास्योपनिषद्' में भी कहा गया है कि ज्योतिष्मान्, अकाय, अक्षर, सूक्ष्मकाय, शून्य, स्थूल शरीरशून्य, विशुद्ध, धर्माधर्म से परे वह परमात्मा सभी को व्याप्त करके स्थित है । उसी उपनिषद् में पुनः कहा गया है कि सर्वाधिक परोपकारी स्वरूप को तुम्हारी अनुकम्पा से देखता हूँ । वह पुरुष जिसका आदित्यमण्डल में व्याहृतियों से शरीर निर्मित हुआ है—वह मैं हूँ । कामेश्वर को परोपकारी कहकर ग्रन्थकार ने उनकी प्रशंसा की है ।

'दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू'—'विमर्शशक्ति' अग्नि एवं चन्द्रमा की प्रकृति की है । वह अग्निसोमरूपिणी है । जो इन दोनों में अनुस्यूत है और कामेश्वर से अभिन्न है । वह 'महात्रिपुरसुन्दरी' बिन्दुओं की समग्रता एवं 'कामकला' है । सभी आगमों में यह कहा गया है कि वह उपास्या है । अतः कहा गया है कि जब 'श्वेत'-शिव 'रक्त'-शक्ति में स्थित रहते हैं तब शम्भु के द्वारा परा के वेधित होने से रक्तशम्भु शक्ति में पर तत्त्व के रूप में रहते हैं । जब रक्तशिव श्वेतशक्ति में रहते हैं तब उसे 'परशम्भु' की दशा कहते हैं और इस प्रकार श्वेत शक्ति में रक्त शिव अवस्थान की दशा 'सच्चिदानन्द' की दशा कही जाती है । यह भी कहा गया है कि 'ओ परशैवी ! मैं तुम्हारी उस परमा कला का अभिवादन करता हूँ जिसका ऊर्ध्व बिन्दु तुम्हारा चेहरा है, दो अन्य बिन्दु तुम्हारे स्तनद्वय हैं एवं नादबिन्दु (हार्धकला) रसना है । ('नाद बिन्दु रसनागुणास्पदम्') । वह 'बिन्दु' जो कि 'एकार' (प्रकाशरूप अकार एवं इच्छाशक्ति रूप ईकार से निर्मित बीज) से ऊपर है, 'सूर्य' है और उसका चेहरा एवं उसका निम्नभाग अग्नि एवं चन्द्रमा है, उसके दो स्तन एवं कला (जो हकार के अर्धभाग हैं) तुम्हारी योनि है । सारांश यह कि योगिगण त्रिपुरसुन्दरी की निरन्तर पूजा किया करते हैं । महात्रिपुरसुन्दरी—'कामकला' (बिन्दुत्रय समष्टि रूप दिव्याक्षररूपिणी), प्रकाशानन्दसार, पूर्णाहन्तारूपिणी, अनन्ताक्षरस्वरूपिणी एवं महामन्त्रस्वरूपिणी हैं । 'पादुकापञ्चक' में नाद-बिन्दु को गुरु के सिंहासन के रूप में प्रतिपादित किया गया है, 'चिन्तयामि हृदि चिन्मयं वपुः । नादबिन्दु मणिपीठमण्डलम् ।' 'परबिन्दु' → १. बिन्दु, २. नाद, ३. बीज ।

'विज्ञानभट्टारक' में भी कहा गया है कि श्रीचक्र के विभिन्न मण्डलों के भीतर से यात्रा करते हुए जहाँ स्थूल वर्ण 'अर्धेन्दु', 'बिन्दु', 'नादान्त' एवं 'शून्य' के ऊपर तक उत्थित हो रहे हैं व्यक्ति वहाँ पहुँचकर शिव हो जाता है । वैखरी वृत्ति के स्थूलाक्षर मण्डल के बाह्यरूप हैं । शब्दों के सूक्ष्मस्वरूप के भीतर से अन्तर्यात्रा करते हुए साधक 'शब्दब्रह्म' एवं 'शून्य' को प्राप्त कर लेता है ।

'महाबिन्दु' का स्वरूप—जो 'महाबिन्दु' श्रीचक्र का गुह्यतम केन्द्र है उसका स्वरूप निम्नांकित है—**आकार**—रक्तबिन्दु के भीतर गुप्त श्वेतबिन्दु । **रङ्ग** = श्वेत । **खण्ड** = निर्गुण । चक्र (सृष्टि-स्थिति-संहार) समष्टि । **वर्णाक्षर** = क्ष एवं म का समष्टि रूप । **चक्रस्थ मूल शक्ति**—पराशक्ति । **चक्रेश्वरी**—प्रकाश-विमर्शरूपिणी पराभट्टारिका । **शरीरस्थान**—ब्रह्मरन्ध्र । **शरीर चक्र**—सहस्रदल कमल । **शरीरावस्था**—तुरीयातीता ।

शिव-शक्ति के सामरस्य रूप 'बिन्दु' के बिना विश्व का आविर्भाव सम्भव नहीं है । शुक्ल-रक्त बिन्दु (प्रकाश-विमर्श) के संघट्ट से चित्कला की अभिव्यक्ति होती है । श्रीचक्र के अङ्गभूत 'बिन्दु' का स्वरूप निम्नांकित है ।

'बिन्दु' का स्वरूप—(सर्वानन्दमय चक्र रूप) । **आकार** = बिन्दु । **रंग** = रक्त । **चक्र**—(सृष्टि-स्थिति-संहार) सृष्टि-चक्र । **वर्ण** = 'क्ष' वर्णमूल प्रकृति । **'चक्रस्थ मूल शक्ति'** = ललिताम्बा । **चक्रेश्वरी**—श्रीललिता महाचक्रेश्वरी । **योगिनी चक्र** = परापर रहस्य योगिनी चक्र । **मुद्रा** = योनिमुद्रा । **देहावयव** = श्रद्धा । **शरीरस्थान**—भ्रूमध्य । शरीर चक्र = आज्ञा चक्र । **शरीरावस्था** = तुरीया, महाकारण ।

जैसे अग्नि के संयोग से घी पिघल कर बहने लगता है वैसे ही साम्य-भङ्ग होने से यह बिन्दु 'रक्त' एवं 'शुक्ल' दो दो बिन्दुओं में प्रकट होता है । इसे ही 'हार्धकला' कहते हैं ।

परमशिव (परा संवित्, निर्गुण, तत्त्वातीत) तत्त्व दो रूपों में विभक्त होता है—१. प्रकाश और २. विमर्श । 'प्रकाश' = शिव । 'विमर्श' = शक्ति तत्त्व । शिव-शक्ति का सामरस्य ही 'महाबिन्दु' है । इसे ही 'कामबिन्दु' या 'सूर्य' भी कहते हैं ।

'सितशोणबिन्दु', 'रवि', 'दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू' इत्यादि शब्दों का अपना विशिष्ट अर्थ है । जो दो बिन्दु शिवरूप एवं शक्तिरूप में आत्मप्रकाश करते हैं उनमें से एक को 'अग्नि' कहा जाता है और दूसरे को 'इन्दु' कहा जाता है । पूर्ण बिन्दु सूर्यरूप में ऊपर की ओर मध्य में रहता है । अग्नि एवं इन्दु रूप में दो बिन्दु दो स्तन रूप में उनके नीचे की ओर दोनों तरफ रहते हैं । यही त्रिबिन्दु का अवस्थान है । 'अग्नि' संहार का एवं 'इन्दु' सृष्टि का प्रतीक है । इन्दु की कला विगलित होकर सृष्टि के उपादान के रूप में परिणत होती है । इस विगलन के मूल में जो कार्य होता है वही है 'अग्नि' । अग्नि की सहायता से चन्द्रकला से सृष्टि होती है । कामकला का प्रधान बिन्दु ही 'सूर्य' है, जगत् में है सोमशक्ति—अग्नि-शक्ति का व्यापार ॥ ६–७ ॥

एवं बिन्दुस्वरूपमुपदिश्य तद्ज्ञानोपासनयोः फलं परब्रह्मभाव एवेत्याह—

इति कामकला विद्या देवीचक्रमात्मिका सेयम् ।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः[१] ॥ ८ ॥

('कामकला विद्या' एवं उसके ज्ञान का फल)

यह कामकला विद्या है जो कि देवी के चक्रों के क्रम का वर्णन करती है । जो कोई भी इसे जानता है वह मुक्त एवं महासुन्दरीस्वरूप हो जाता है ॥ ८ ॥

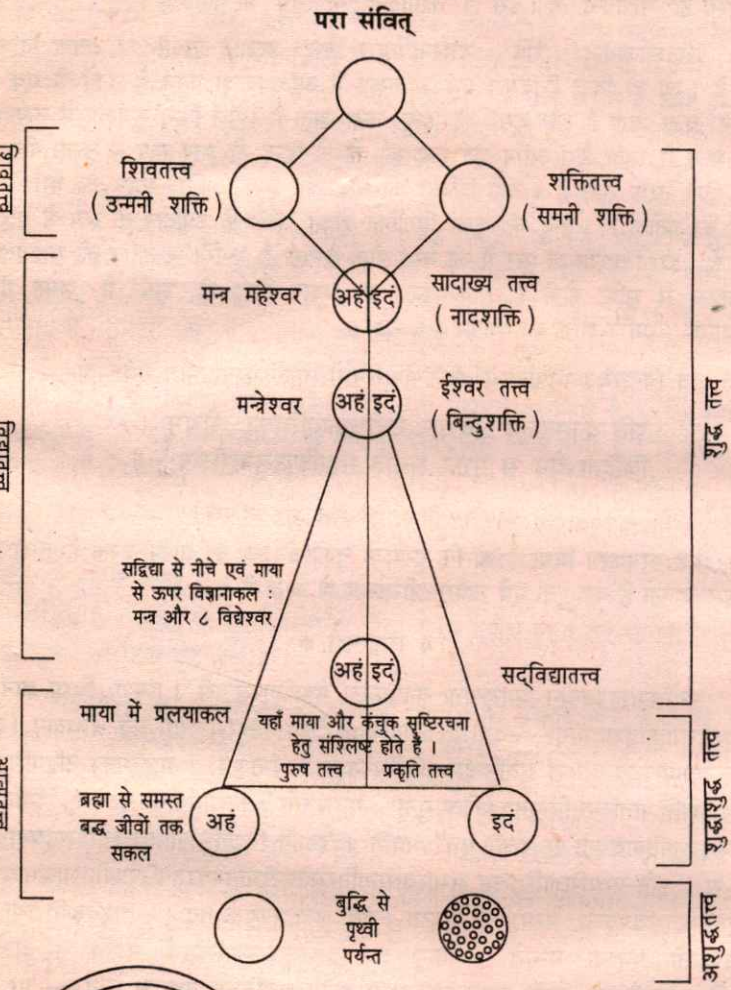
* चिद्वल्ली *

पूर्वोक्तमहाप्रबन्धेन व्याख्याता कामकला महात्रिपुरसुन्दरी । तस्याः विद्या ज्ञानं सा कीदृशीत्याकाङ्क्षायामाह—देवीचक्रक्रमात्मिकां देव्याः त्रिपुरसुन्दर्याः चक्रं श्रीचक्रम् । तस्य क्रमः चक्रमन्त्रदेवतात्मना सर्वानन्दमयादिसमस्तप्रकटपर्यन्तरूपः । तदात्मिका तद्विषयिणी । येन शक्तिपातात्समुन्मिषद्ब्रह्मजिज्ञासुना भाग्यवता विद्यावता पुरुषेण विदिता । गुरूपसदनादिनावगता स पुरुषो मुक्तो भवति । 'इहापि विद्याभिर्ज्ञापितैश्वर्यश्चिद्घनो मुक्त एव सः।' इति प्रत्यभिज्ञास्थित्या संसारवासनानिरसनपटीयाननवरतपरिपूर्णाहम्भावभावना-कवलीकृतसर्वप्रपञ्चः परमयोगी विहरते । तथा बृहदारण्यके तदाहुः—'यद्ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यते । किमु तत्र ब्रह्मावेद्यस्यात्तत्सर्वं भवति । अन्तेऽपि महात्रिपुरसुन्दरीरूपो भवति पराभट्टारिकात्मकरूपो भवति ।' तथा च श्रुतिः—'परं धाम त्रैपुरं चाविशन्ति ।' इति । 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति । स एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं

---

१. 'महात्रिपुरसुन्दरी' की प्रधान नित्या भगवती 'ललिता' हैं । वैसे भगवती त्रिपुरा की १६ नित्याएँ हैं । 'महात्रिपुरसुन्दरी' की नित्याएँ निम्नानुसार हैं—१. कामेश्वरी, २. नित्यक्लिन्ना, ३. वह्निवासिनी, ४. शिवदूती, ५. कुलसुन्दरी, ६. नीलपताका, ७. सर्वमंगला, ८. चित्रा, ९. भगमालिनी, १०. भेरण्डा, ११. वज्रेश्वरी, १२. त्वरिता, १३. विमला नित्या, १४. विजया, १५. ज्वालामालिनी, १६. महात्रिपुरसुन्दरी ।

सर जान वुडरफ द्वारा प्रस्तुत तत्त्व एवं सृष्टिप्रक्रिया :
शाम्भव दर्शन के आधार पर प्रस्तुत—



('षडध्व' सर जान वुडरफ)

(१) शास्त्रों का सृष्टि-क्रम = 'श्रीचक्र'।

(२) 'श्रीचक्र'—विराट् जगत् का ज्यामितीय रेखांकन।

जानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दस्स एव भवति' इति । प्रत्याभिज्ञासूत्रे च तथा—'प्रकाशानन्दसारमन्त्रविद्यात्मकपूर्णाहम्भाववशात् सर्वसंहाराधिकारी निजसंविद्देवता चक्रेश्वरताप्राप्तिर्भवति इति ।' शिवमिति । अभिनवगुप्तपादाश्च—

यस्यैषां प्रतिभायेतत्परार्थक्रमरूपिता ।
अक्रमानन्दचिद्रूपः प्रमोदात्स महेश्वरः ॥ इति ।
स्वतन्त्रश्चितिचक्राणां चक्रवर्ती महेश्वरः ।
संवित्तिदेवता चक्रजुष्टः कोऽपि जयत्यसौ ॥ इति ।

स्वच्छन्दशास्त्रे—

यदा त्वेकत्र संरूढस्तदा तस्य लयोदयौ ।
नियच्छन् भोक्तृतामेति ततश्चक्रेश्वरो भवेत् ॥

इत्यादिवचनशतं द्रष्टव्यम् । एवं च विदिता येन स मुक्त इत्यादिना ज्ञानपूर्वानुष्ठानमेव ब्रह्मप्रापकम् इत्युक्तम् ॥ तथा बृहदारण्यके—'यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वाऽस्मिन् लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति' इति । तथा च वामकेश्वरतन्त्रे—

यावदेतं न जानाति सङ्केतत्रयमुत्तमम् । न तावत्त्रिपुरा चक्रे परमाज्ञाधरो भवेत् ॥ इति ।

तस्माज्ज्ञानपूर्वानुष्ठाननैव परमशिवो भवति । तथा चोक्तं तत्रैव—'एतदज्ञात्वावरारोहे सद्यः खेचरतां व्रजेत् ।' इत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्तया ।

पुण्यानन्दमुखेन्दोरुदितामानन्ददायिनीमेताम् ।
कामकलामहमनिशं मूर्ध्ना वाचा वहामि चित्तेन ॥
इति कामकला व्याख्या नटनानन्देन देशिकप्रीत्यै ।
रचिता रसिकजनानां पुंसामालोकनाय चिद्वल्ली ॥
तेषामन्यतमोऽयं टीकामेनां चकार तत्प्रीत्यै ।
अस्या कामकलायाः व्याख्या पूर्वैरुदाहृताऽनेका ॥
अस्मिन्तथापि स भक्त्या नटनानन्दोऽपि भावयामास ।
पुण्यानन्दमहात्मा कामकलारूपबिन्दुमुक्त्यैवं ॥
बिन्दोर्विकसनरूपं श्रीचक्रं नाम वक्तुमुद्युङ्क्ते ।
तत्क्रमविवरणरूपं श्रीकामकलाविलासमप्येषः ।
आरभते विवरीतुं गुरुपदकृपयैव सुन्दरीभक्तः ॥ ८ ॥

* सरोजिनी *

'कामकला' = 'कामकला' महात्रिपुरसुन्दरी का अपरपर्याय है । नित्याषोडशिकार्णव' में इसका स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

'बिन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रं तु तदधस्तात् कुचद्वयम् । तदधः सपरार्धं च चिन्तयेत्तदधोमुखम् ।
एवं कामकलारूपमक्षरं यत् समुपस्थितम् । कामार्थधर्ममोक्षाणामालयं परमं ध्रुवम् ॥'

श्वेत + रक्त + मिश्र बिन्दु का संयुक्त रूप ही 'कामकला' है ।

इन श्लोकों में पुण्यानन्दनाथ ने कहा है कि 'कामकला' महात्रिपुरसुन्दरी देवी हैं एवं कामकला विद्या स्वयमेव त्रिपुरसुन्दरी का अपना स्वरूप है। कामकला विद्या द्वारा साधक को श्रीचक्र एवं उसके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है। इस दिव्य ज्ञान के द्वारा साधक मुक्त हो जाता है और महात्रिपुरसुन्दरी के साथ तादात्म्य, ऐकात्म्य एवं तद्रूपता प्राप्त कर लेता है। उसे 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की परदशा प्राप्त होती है। सृजनोन्मुख रक्तबिन्दु से 'रव' एवं 'रव' से पञ्चभूत उत्पन्न हुए।

'इति' = इसके बाद अब। अर्थात् इसके पूर्व अन्य श्लोकों में जो कुछ कहा गया है उसके बाद अब। **'कामकला विद्या'** = कामकलाप्रधाना श्रीविद्या। 'कामकला' महात्रिपुरसुन्दरी देवी का नाम है। **'विद्या'** = ज्ञान। 'कामकलाविद्या' पदावली में 'विद्या' शब्दज्ञान का ज्ञापक है। **'क्रम'**—वह क्रम जिसमें चक्र, मन्त्र एवं देवता (सर्वानन्दमय चक्र से प्रारम्भ करके अन्तिम चक्र पर्यन्त) प्रतिष्ठित हैं। **'चक्रमात्मिका'**—श्रीचक्ररूपात्मिका। **'येन'** = जिसके द्वारा अर्थात् शक्तिपात–प्राप्त एवं ज्ञानाप्ति द्वारा विमुक्त साधक के द्वारा। **'विदिता'** = गुरु एवं भगवती की अनुकम्पा द्वारा विज्ञात। **'मुक्तो भवति'** = इच्छादिक बन्धनों से विमुक्त हो जाता है। 'प्रत्यभिज्ञा' में कहा गया है कि विद्या के द्वारा जिसको परमात्मा के परमैश्वर्य का ज्ञान हो चुका है वह मुक्त हो जाता है।

श्रुति में कहा गया है कि ब्रह्मवित् स्वयं ब्रह्म हो जाता है। 'छान्दोग्योपनिषद्' में भी कहा गया है कि जो इस प्रकार देखता है, ध्यान करता है और जानता है वह आत्मा में लयीभूत हो जाता है। वह आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन एवं आत्मानन्द हो जाता है। स्वच्छन्दागम में भी कहा गया है कि जब साधक अपने देवता के धाम में देवता के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता है तब उसके लिए न तो कोई जन्म रह जाता है और न तो कोई मृत्यु। वह वास्तविक भक्ति प्राप्त कर लेता है और जगत् का स्वामी बन जाता है। 'प्रत्यभिज्ञहृदयम्' में कहा गया है कि—'तब प्रकाशनानन्दसार महामन्त्रवीर्यात्मक पूर्णाहन्ता के साथ अभेद होने से सब प्रकार की सृष्टि एवं लय करने वाली अपनी संवित् शक्तियों पर प्रभुत्व स्थापित हो जाता है'।

'तदा प्रकाशानन्दसारमहामन्त्रवीर्यात्मकपूर्णाहन्तावेशात् सदा सर्वसर्गसंहारकारि निज-संविद्देवता चक्रेश्वरता प्राप्तिर्भवतीति शिवम्॥' 'विज्ञानभैरव' में कहा गया है कि भक्ति के उद्रेक से विरक्त भक्त के चित्त में जिस प्रकार की बुद्धि उत्पन्न होती है वह शाङ्करी शक्ति कही जाती है और इस प्रकार का साधक स्वयं शिव हो जाता है—'सा शक्तिः शाङ्करी नित्यं भावयेत् तां ततः शिवः' ॥ ८ ॥

इह महामहेश्वराः पुण्यानन्दाः कामकलाख्यां सुन्दरी आदिमात्मत्वेनानुभूय पुनरपि मन्त्रचक्रदेवतात्मकाद्विलासानुभवपराः सन्तः परमार्थभूतप्रकृतमहाबिन्दोरेव सकाशात् जगदुत्पत्त्यादिकं वक्तुमारभते—

स्फुटितादरुणाद् बिन्दोर्नादब्रह्माङ्कुरो रवो व्यक्तः।
तस्माद् गगनसमीरणदहनोदकभूमिवर्णसम्भूतिः॥ ९ ॥
अथ विशदादपि बिन्दोर्गगनानिलवह्निवारिभूमिजनिः।
एतत्पञ्चकविकृतिर्जगदिदमण्वाद्यजाण्डपर्यन्तम् ॥ १० ॥

(रक्तबिन्दु द्वारा शाब्दी-आर्थी सृष्टि की विवेचना तथा श्वेत बिन्दु से सृष्टि-विधान)

सर्जनोन्मुख रक्तबिन्दु से नाद ब्रह्मांकुरस्वरूप 'रव' उत्पन्न हुआ । उस ध्वनि से आकाश, अग्नि, जल, पृथ्वी एवं वर्णमाला के अक्षर उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

तदनन्तर श्वेतबिन्दु से भी आकाश, वायु, जल एवं भूमि उत्पन्न हुए । अण्वादिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त समस्त विश्व इन्हीं पञ्च विकृतियों से उत्पन्न हुए ॥ १० ॥

*** चिद्वल्ली ***

स्फुटितादरुणाद्बिन्दोरिति—स्फुटितात् उच्छूनात् । बिन्दोः पूर्वोक्तलक्षणात् नाद-ब्रह्माङ्कुरः । नादः सर्वशब्दोत्पत्तिहेतुर्वर्णः । स एव ब्रह्म तद्ब्रह्माङ्कुरः उत्पादकं यस्य सः । तथा चोक्तम्—

एको नादात्मको वर्णः सर्वनादविभागवान् ।
सोऽनस्तमितरूपत्वादनाहत इतीरितः ॥ इति ।

उपनिषदपि—'ध्याता रुद्रः प्राणं मनसि सहकरणैर्नादान्ते परमात्मनि सम्प्रतिष्ठाप्य ध्यायीतेशानम्' इति । दीपिकानन्दश्च—व्यामेति बिन्दुरिति नाद इति एवम्भूतो नादब्रह्माङ्कुरो रवः शब्दः पश्यन्त्यादिरूपः व्यक्तः आविर्भूतः । उत्तरत्र यासान्तरोहरूपेत्यादि शब्दराशेः परापश्यन्त्यादिशक्तित्वेन प्रतिपादनात् । तस्माच्छब्दात् गगनसमीरणदहनोदक-भूमीनां पञ्चभूतानां वर्णानामादिक्षान्ताक्षराणां च । सम्भूतिरुत्पत्तिः आम्नाता । अयमर्थः—स नादबिन्दोरेव सर्वप्रपञ्च निष्पत्तिराम्नायते । तत्तस्माच्छब्दात्मकं परं ब्रह्मेति ।

ननु आत्मन आकाशस्सम्भूतः इत्यादिना आत्मन एव स आकाशाज्जगदुत्पत्तिः श्रूयते । तत्कथं बिन्दुनादात्मकशब्दब्रह्मण एवेति । उच्यते—सर्वत्र वेदान्तेषु बिन्दुनादात्मकविद्याक्षरादेव परापश्यन्त्यादिशब्दात्मकसर्वप्रपञ्चाविर्भावदर्शनात् । तथा च श्रुतिः—'अक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् । यदक्षरं भूतकृतं विश्वेदेवा उपासते ।' उपनिषदन्तरेऽपि—'दिव्ये ब्रह्मपुरे विरजं निष्कलं शुभ्रमक्षरं विभाति' इति । कामराजबीजान्तर्गतककारलकाररहिता बिन्दुत्रयसमष्टि-भूतकामकलाक्षरस्वरूपं विभातीति । ज्योतिर्मयत्वमुक्त्वा जडातेऽपि? तत्परं ब्रह्म विभातीति परमप्रकृताक्षरब्रह्मणः ज्योतिर्मयत्वमुक्त्वा उपदिश्य तत्स्वरूपं निगमयति । मिश्रबिन्दोर्निर्वाण-बिन्दोर्विश्रामादक्षरात्मकमेव ब्रह्मोपनिषदादावाचष्टे । इममेवार्थमभिप्रेत्य लघुभट्टारिका अपि—

'यन्नित्ये तव कामराजपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं'

इति श्लोके कामकलाक्षरस्य सर्ववेदमूलत्वेन सर्वप्रकारेण सर्वपुरुषोस्यत्वं मोक्षप्रदत्वं चाब्रुवन् । तद्व्याख्यातृभिरपि कृष्णानन्दवर्यैः—'यदीं शृणोत्यलकं शृणोति न हि प्रवेदसुकृतस्य पन्थाम्' इत्यादि श्रुतिजालमुपन्यस्य श्रीकामकलाक्षरस्वरूपवैभवमेवोपन्यस्तम् । प्राञ्चोऽपि कवयः—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दमक्षरसंज्ञितम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥ इति ।

अक्षरब्रह्मण एव सकाशाज्जगदुत्पत्तिं ब्रुवन्ति । तथा—शब्दानां जननीत्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यते । इत्यमृतरूपी । स्मृतिरपि—

शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुन्दरी ॥ इति ।

एवं शब्दस्य निष्पत्तिः । शब्दव्याप्तं चराचरमित्यादि । तथा च आत्मन आकाश इत्यात्मशब्दस्य अक्षरात्मपरत्वमित्यविवादः । एवं शोणबिन्दोः सर्वात्मकत्वं सर्वसृष्टृत्व-मुक्त्वा एतदभेदाच्छुभ्रबिन्दोरपि तत्स्वरूपमतिदिशति—अथ विशदादिति—विशदात्सर्व-प्रकाशात् । बिन्दोः पूर्वव्याख्यातात् । गगनादिपञ्चभूतात्मकानन्तब्रह्माण्डाविर्भावतिरोभावौ भवत इत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—

यस्मिन्भावाः प्रलीयन्ते लीनाश्च व्यक्ततां ययुः ।
पुनश्चाव्यक्ततां भूयो जायन्ते बुद्बुदा इव ॥ इति ।
एतस्माज्जायते प्राणो मनस्सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥

एवं रक्तशुक्लबिन्दुमयप्रकाशविमर्शात्मकब्रह्मणः सर्वं सृज्यत इति सिद्धम् ।

स्वेच्छाविलासितान्तजगद्रश्मिवितानवत् ।
नौमि संविन्महापीठं शिवशक्तिपदाश्रयम् ॥ इति ॥ ९–१० ॥

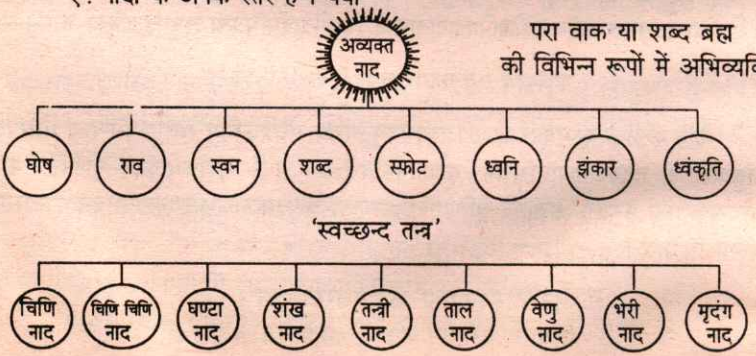
* सरोजिनी *

आचार्य पुण्यानन्दनाथ 'कामकला' नाम्नी परमाद्या महात्रिपुरसुन्दरी को अपनी आत्मा के रूप में साक्षात्कृत करके 'अवनवम्' श्लोक में विराट् प्रपञ्च की उत्पत्ति के प्राक्काल में 'बिन्दु' द्वारा उसकी (जगत् की) अभिव्यक्ति की विवेचना करते हैं ।

'स्फुटितादरुणाद् बिन्दोः' = स्फुटितात् + अरुणात् + बिन्दोः । **'स्फुटित'** = उच्छून । सर्जनोन्मुख । गर्भित । सृजनोद्यत। । **'अरुणात्'** = रक्तवर्ण वाले । **'बिन्दोः'** = बिन्दु से । **'नादब्रह्मांकुरो रवो'** = नादब्रह्मांकुरस्वरूप 'रव' । 'नाद' समस्त वर्णों एवं ध्वनियों का उत्पादक एवं मूल केन्द्र है[१] । यह 'शब्दब्रह्म' है, अतः इसे 'नादब्रह्म' का

---

१. नादों के अनेक स्तर हैं । यथा -



अभिधान दिया गया है । यह 'अंकुर' (उत्पादक) है । शास्त्रों का कथन है कि एक अवर्ण जो कि नादात्मक होने के कारण 'नाद' कहलाता है, वर्णमाला के समस्त अक्षरों में विभक्त हो जाता है । चूँकि यह कभी लुप्त नहीं होता अतः 'अनाहत' कहलाता है । अक्षरों में 'अ' प्रथमाक्षर है और इसे 'प्रकाश' की भी संज्ञा दी गई है । उन्हें 'परमशिव' कहा गया है । 'अ' को 'प्रकाश' कहना लाक्षणिक है अर्थात् जगत् की उत्पत्ति के बाद 'अ' ब्रह्म को इंगित करता है । ब्रह्मस्वरूप तो अवर्ण है—अक्षर एवं ध्वनि से रहित है । यहाँ 'अवर्ण' से तात्पर्य अभिन्नभूता शक्ति है । नाद ब्रह्मांकुरस्वरूप 'रव' (अंकुरायमाण नादब्रह्म रूप रव) पश्यन्ती प्रभृति वाणियों के रूप में व्यक्त होता है । मूलध्वनि परा, पश्यन्ती प्रभृति शक्तियों का निजस्वरूप है । यह ध्वनि ही पञ्चभूतों की उत्पादक शक्ति है । 'तस्माद् गगनसमीरणदहनोदकभूमिवर्णसम्भूतिः' = इसी रव (ध्वनि) से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी एवं वर्णसमुदाय का जन्म हुआ । श्रुतियों में भी कहा गया है कि अक्षर से समस्त जगत् का आविर्भाव हुआ ॥ ९ ॥

आचार्य पुण्यानन्दनाथ ने अपने पूर्वोक्त श्लोक में 'रक्तबिन्दु' की सर्वव्यापकता एवं उसके सर्वोत्पादकत्व का वर्णन किया था, अब वे 'रक्तबिन्दु' एवं 'श्वेतबिन्दु' में अभिन्नता होने के कारण 'श्वेतबिन्दु' में भी उन्हीं क्षमताओं एवं शक्तियों का दिग्दर्शन करा रहे हैं । आचार्य ने इस श्लोक द्वारा बिन्दुद्वय में अभेद (द्वयात्मक अद्वयवाद) की पुष्टि करते हुए अद्वैतवाद की ओर संकेत किया है । ब्रह्म जो कि श्वेत-रक्त बिन्दु है, या प्रकाश एवं विमर्श है उसी के द्वारा समस्त जगत् का आविर्भाव हुआ है ।

'अथ' = तदनन्तर । **'विशद'** = श्वेत । सभी को प्रकाशित करने वाला । इसी बिन्दु में ही अनन्त ब्रह्माण्डों का आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है । चूलिकोपनिषद् में कहा गया है कि इसी में सभी भाव (जीव) तिरोहित हो जाते हैं और तिरोहित होकर पुनः आविर्भूत हो जाते हैं और बाद में बार-बार पानी के बुलबुलों की भाँति तिरोहित होते रहते हैं । सारांश यह कि श्वेत एवं रक्त बिन्दु (प्रकाश-विमर्श) से ही (जो कि ब्रह्म है) समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है ।

(झिंजीनाद, वंशीनाद, मेघनाद, झर्झरनाद, भ्रमरीनाद, घण्टानाद, कांस्यनाद, तुरीनाद, भेरीनाद, मृदंगनाद, आनकनाद, दुंदुभीनाद । (घेरण्डसंहिता)

स्वात्माराम मुनीन्द्र के मतानुसार नादों के विभिन्न स्तर हैं और उनमें स्तरों के अनुकूल सूक्ष्मता की कोटि भी बढ़ती जाती है । इसीलिए स्वात्माराम मुनीन्द्र कहते हैं—'तत्र सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नादमेव परामृशेत् ।' (हठयोग प्र०)

१. **प्राथमिक स्तर में परश्रूयमाण नाद**—जलधि, जीमूत, भेरी, झर्झर ।

२. **मध्य स्तर पर श्रूयमाण नाद**—मर्दल, शंख, घण्टा, काहल ।

३. **अन्तिम स्तर पर श्रूयमाण नाद**—किंकिणी, वंश, वीणा, भ्रमर, निःस्वन ।

'आदौ जलधिजीमूतभेरीझर्झरसम्भवाः । मध्ये मर्दलशङ्खोत्था घण्टा काहलास्तथा ।
अन्ते तु किङ्किणीवंशवीणाभ्रमरनिःस्वनाः । इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते देहमध्यगाः' ॥

योग की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं; यथा—१. **आरम्भावस्था**—ब्रह्मग्रन्थि का भेदन—हृदयाकाश में क्वणक का नाद । २. **घटावस्था** - विष्णुग्रन्थि का भेदन—कण्ठाकाश में विमर्द एवं भेरी का नाद । ३. **निष्पत्ति अवस्था** - वेणु के समान ध्वनि ।

रक्त-शुक्ल बिन्दु (प्रकाश-विमर्श) से युक्त 'ब्रह्म' ने ही समस्त विश्व का सृजन किया । चूँकि रक्त-शुक्ल बिन्दु शिव-शक्ति हैं और शिव-शक्ति में अभेद है, अतः रक्तशुक्ल बिन्दुओं में भी अभेद है—'शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः' ।

विश्व की सृष्टि करने की इच्छा से समन्वित ब्रह्म अपनी अर्धांगिनी शक्ति को देखता हुआ 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेता है, जिसमें शक्ति 'रक्तबिन्दु' रूप में प्रवेश करती है[१] । 'विश्वसिसृक्षावशतः स्वार्धां शक्तिं विलोकयद् ब्रह्म बिन्दू-भवति तमिन्दुं प्रविशति शक्तिस्तु रक्तबिन्दुतया' ॥

जिस प्रकार कोई पुरुष उत्पत्स्यमान पुत्र के अदृष्टवश उसके उत्पादन की इच्छा से प्रेरित होकर अपनी उत्पादन शक्ति को देखकर अपने शरीर में अभिन्नतया अर्धभाग के रूप में स्थित अपनी पत्नी के भीतर 'शुक्ल बिन्दु' के रूप में प्रवेश करता है उसी प्रकार शिव भी शक्ति में प्रवेश करता है । फिर उस 'शुक्ल बिन्दु' के भीतर 'शोणित' बिन्दु के रूप में भार्या प्रवेश करती है—'शुक्लस्यान्तः शोणितबिन्दुरूपेण भार्या प्रविशति । तेन स च बिन्दुरुच्छूनो भवति' । 'शोणित बिन्दु' के प्रवेश से अन्तःस्थ बिन्दु फूल उठता है[२] । उसके बाद संमिश्र बिन्दु उच्छून हो उठता है । इसमें 'शुक्ल बिन्दु' ही चन्द्रमा है और 'रक्तबिन्दु' अग्नि है । इन्हीं के [३] माध्यम से समस्त जगत् की उत्पत्ति होती है[४] ॥ ९-१० ॥

एवं बिन्दुद्वयाभेदमुक्त्वा मन्त्रदेवतयोरप्यैक्यमाह—

बिन्दुद्वितयं यद्वद्भेदविहीनं परस्परं तद्वत् ।
विद्यादैवतयोरपि न भेदलेशोऽस्ति वेद्यवेदकयोः ॥ ११ ॥

(बिन्दुद्वय एवं विद्या (वेदक) तथा वेद्य (देवता) में अभेद का प्रतिपादन)

यथा (प्रकाश-विमर्शात्मक) बिन्दुद्वय में कोई भेद नहीं है तद्वत् विद्या एवं देवता (वेदक एवं वेद्य) में भी रञ्चमात्र भेद नहीं है ॥ ११ ॥

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (२/७०) ।
२. वरिवस्यारहस्यम् (२/६८) ।
३. 'प्रकाशः' (भास्करराय) ।
४. 'एकोऽहं बहु स्याम' की इच्छा ही 'बिन्दु' बन गई । यह 'बिन्दु' ही कामेश्वर एवं कामेश्वरी का स्वारसिक सामरस्य है । यह 'बिन्दु' ही सर्वोच्च सत्ता है । इसी में समस्त विश्व बीज रूप में स्थित है । यह विश्वोत्तीर्ण है । इसी घनीभूत तेजोपुञ्ज को चिद्घन एवं 'परासंवित्' कहते हैं । 'अहं' के अकार (शिव) हकार (शक्ति) में एकात्मता को यह 'बिन्दु' ही सम्पादित करता है । समस्त आगम का प्रधान लक्ष्य है 'बिन्दु' । यही समस्त जगत् का आधार भी है । शक्ति 'बिन्दु' से पृथक् होकर 'नाद' को जन्म देती है । यह बिन्दु की ही शब्दात्मिका वृत्ति है । बिन्दु के प्रथम प्रस्फुटन के साथ ही शक्ति जगत् के सृजनार्थ 'नाद' रूप में परिणत हो जाती है । सहस्र दल की कर्णिका के मध्य स्थित चन्द्रमण्डल में स्थित त्रिकोण में स्थित जो शून्य रूप बिन्दु है वही है 'पर बिन्दु' । 'सहस्रारें हिमनिभे सर्ववर्ण विभूषिते । अकथादित्रिरेखासु हलक्षत्रयभूषिते ॥ तन्मध्ये परबिन्दुञ्च सृष्टिस्थितिलयात्मकम् ॥' (गौतमीय)

* चिद्वल्ली *

बिन्दुद्वितयं पूर्वोक्तप्रकाशविमर्शात्मकम् । यद्वत् येन प्रकारेण भेदविहीनं 'शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः ।' इत्युक्तरीत्या परस्पराश्लिष्टं तद्वत् तेनैव प्रकारेण विद्यादेवतयोः विद्या पञ्चदशाक्षरी । देवता महात्रिपुरसुन्दरी तयोर्वेद्यवेदकयोः वाच्यवाच्यकयोर्भेदलेशोऽपि ईषद्वैलक्षण्यमपि नास्ति । तथापि ऋग्वेदशाखान्तर्गत–साङ्ख्यायनशाखायाम्—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिः गुहाहसामातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकलामायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या ॥

'षष्ठं सप्तममथ वह्निसारथिमस्यामूलत्रिकमादेशयन्त' । इत्यादिना कादिहादिविद्याद्वयमुद्धृत्य तस्य देवतैक्यमाह—विश्वमातादिविद्येति ।बृहदारण्यकेऽपि—'योऽयं दक्षिणेक्षन् पुरुषः । तस्य भूरिति शिरः । 'एकं शिरः एकमेतदक्षरं भुव' इति । बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वमिति प्रतिष्ठाद्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहमिति । 'हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ।' इति । अक्षिस्थाननिष्ठस्य पुरुषस्य भूराद्यवयवं निर्दिश्य तस्याक्षरस्य अहमात्मकब्रह्मभावमादिश्य सकलपापनिवृत्तिपुरस्सरं साम्राज्यं ब्रूते । ततश्च सकलविद्यानां सकलवेदादिशब्दाद्याविर्भावकारणाऽहंभावरूपादिमातृकात्मकत्वात् उभयोरभेद इत्यत्र न विवादः ।

तथा श्रीतन्त्रसद्भावे –

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रा ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये ।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ॥
या सा तु मातृकालोके परतेजस्समन्विता ।
तया व्याप्तमिदं सर्वम् आब्रह्मभुवनात्मकम् ॥ इति ।
संविदितं विदितं संविन्मयमेव भवति संवेद्यम् ।
अग्नावबाहुतमाहुतमग्निमयं किं न जायते काष्ठम् ॥

क्षेषभट्टारकोऽपि—'पञ्चाशन्निजदेहजाक्षरभवैः' इत्याद्युक्त्वा 'विश्वं व्याप्य निजात्मनाहमहमित्युज्जुम्भसे मातृके' इति मन्त्रदेवतयोरैक्यमुक्तवान् । श्लोकार्थस्सम्पूर्णः ॥ ११ ॥

* सरोजिनी *

'बिन्दुद्वितयम्'—दो बिन्दु अर्थात् 'रक्तबिन्दु' एवं 'श्वेतबिन्दु' । ये ही 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' हैं । चूँकि ये दोनों एक-दूसरे से भिन्न नहीं किये जा सकते अतः कहा जाता है कि शिव एवं शक्ति दोनों एक ही तत्त्व हैं । ये दोनों परस्पराश्लिष्ट हैं । शिव-शक्ति की भाँति ही विद्या (जो कि वेदक या वाचक है) भी अभिन्न है । **'यद्वत्'** = जिस प्रकार । **'भेदविहीनम्'** = भेद–शून्य, अपृथक् । **'परस्परम्'** = आपस में । **'तद्वत्'** = उसी प्रकार । **'विद्यादेवतयोः'** = विद्या एवं देवता में भी । **'विद्या'** = पञ्चदशाक्षरात्मक मन्त्र (पञ्चदशाक्षरी) ही विद्या है । **'देवता'** = महात्रिपुरसुन्दरी । 'तन्त्रसद्भाव' में कहा गया है कि सभी मन्त्र वर्णात्मक हैं और साथ ही अपनी मूल पृष्ठभूमि में शक्ति हैं । 'शक्ति' मातृका है

और शिवात्मक है । मातृका जो कि परतेजसमन्विता हैं, ब्रह्म से भुवन पर्यन्त सभी को व्याप्त करके स्थित है ।

'पञ्चाशन्निजदेहजाक्षरभवैः' क्रोधभट्टारक के एवं 'विश्वं व्याप्य निजात्मनाहमहमित्युज्जुम्भसे मातृके',—कथनों के द्वारा भी मन्त्र एवं देवता में ऐक्य का प्रतिपादन किया गया है । 'नाद' एवं 'बिन्दु' मूलतः एक हैं और इसी मिथुन से अशेष जगत् आविर्भूत हुआ है । 'तन्त्रसद्भाव' में समस्त मन्त्रों को वर्णात्मक एवं शक्त्यात्मक कहकर तथा शक्ति को मातृकारूपा एवं शिवात्मिका कहकर मन्त्र, वर्ण, मातृका, शक्ति एवं शिव में अभेद प्रतिपादित किया गया है—

'सर्वे वर्णात्मका मन्त्रा ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये ।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ॥
या सा तु मातृका लोके परतेजस्समन्विता ।
तया व्याप्तमिदं सर्वं आब्रह्मभुवनात्मकम्' ॥

इसी प्रकार का अभेद संवित्ति एवं संवेद्य में भी है—'संविदितं विदितं संविन्मयमेव भवति संवेद्यम् । अग्नाववाहुतमाहुतमग्निमयं किं न जायते काष्ठम्' ॥ ग्रन्थकार ने १. रक्त-बिन्दु एवं श्वेत-बिन्दु में तथा २. मन्त्र एवं देवता—दोनों में अभिन्नता का प्रतिपादन किया है । प्रस्तुत श्लोक में—१. बिन्दुद्वय एवं २. विद्या (वेदक)-वेद्य[1] में भी अभिन्नता की पुष्टि की गई है । **'कौलिकार्थ'** में देवता (वेद्य), विद्या (वेदक), चक्र, स्वगुरु एवं साधक की अभिन्नता का ही प्रतिपादन है –

'इत्थं माता विद्या चक्रं स्वगुरुः स्वयं चेति ।
पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम्[2] ॥ ११ ॥

एवमभिन्नादबिन्दुमिथुनादखिलं जगदाविर्भवतीति वक्तुं तदेव मिथुनमात्मेच्छैव–स्वभेदमकरोदित्याह—

वागर्थौ नित्ययुतौ परस्परं शक्तिशिवमयावेतौ ।
सृष्टिस्थितिलयभेदौ त्रिधा विभक्तौ त्रिबीजरूपेण ॥ १२ ॥

(वाक् एवं अर्थ का तात्त्विक स्वरूप – वागर्थ की शिव-शक्ति से अभिन्नता)

वाक् एवं अर्थ दोनों परस्पर नित्य संयुक्त हैं और ये दोनों शिवशक्तिमय हैं । ये (शिव-शक्ति) सृष्टि-स्थिति-लय के रूप में तीन रूपों में विभक्त हैं और ('वाग्भव', 'कामराज' एवं 'शक्ति-बीज' के रूप में) तीन बीजों के रूप में स्थित हैं ॥ १२ ॥

*** चिद्वल्ली ***

अस्यार्थः—वागर्थौ वाक् वर्णपदमन्त्ररूपा । अर्थः कला तत्त्वभुवनात्मा । अत एव तद्रूपौ कुतः प्रकाशविमर्शात्मकशब्दार्थाभ्यामेव षडध्वात्मकसर्वप्रपञ्चोत्पत्तिश्रवणात् । तथा

---

१. 'वेद्य' = वाच्य = देवता । 'वेदक' = वाचक । पञ्चदशाक्षरविद्या । 'विद्या' = पञ्चदशाक्षर मन्त्र । 'देवता' = महात्रिपुरसुन्दरी' ।

२. वरिवस्यारहस्यम् ।

श्रीविरूपाक्षपञ्चाशिकायाम्—'यस्य विमर्शस्य कणः पदमन्त्रार्णात्मकस्त्रिधा शब्दः । धर्मिण इत्थं प्रकाशस्य ।' इति ॥ अत एव नित्ययुतौ निरन्तरसंसक्तौ । न हि घटपटयोरिव कादाचित्कः सम्बन्धः । तथा सति सर्वानुपपत्तिप्रसङ्गात् । सृष्टिस्थितिलयभेदौ सृष्टिः शिवादिक्षित्यन्ततत्त्वजालाविर्भावः । स्थितिः तत्परिपालनम् । लयः तेषां स्वात्मसाक्षात्कारः एवम्भूतो भेदो ययोस्तौ । स्वात्मोत्पन्नत्वात् तेषां त्रयाणां भेदात् । तथा च अभिनवगुप्ताः—

स्वात्मना सृष्टिसंहारस्वरूपत्वेन संस्थितः । इति ।

परस्परं शक्तिशिवमयौ प्रकाशविमर्शस्वरूपौ । उभयोरेककृत्वात् वह्निदाहकवत् । तत्त्वान्तरं न भवतीत्यर्थः । तथागमश्च—'आवयोर्जगदात्मत्वात् तादात्म्यं चावयोरपि ।' इत्यादि । अभियुक्तोक्तिश्च—'तादात्म्यमनयोस्सिद्धं वह्निदाहकयोरिति' । एतौ पूर्वोक्तौ प्रकाशविमर्शौ त्रिधा त्रिप्रकारेण विभक्तौ पृथग्भूतौ केनेत्यत आह त्रिबीजरूपेणेति वाग्भव-कामराजशक्तिबीजात्मनेत्यर्थः । अयमर्थः—बिन्दुत्रयसमष्टिभूतकामकलाक्षररूपिणी वाग्भवादि-बीजात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी सर्वोपास्येति । तथा चोक्तं वामकेश्वरतन्त्रे—

तत्त्वत्रयविनिर्दिष्टवर्णशक्तित्रयात्मिका ।
वागीश्वरी ज्ञानशक्तिर्वाग्भवा मोक्षरूपिणी ॥
कामराजी कामकला कामरूपक्रियात्मिका ।
शक्तिबीजे पराशक्तिरिच्छैव ज्ञानरूपिणी ॥
एवं देवी त्र्यक्षरात्मा महात्रिपुरसुन्दरी ।
पारम्पर्येण विज्ञाता भवबन्धविमोचिनी ॥ इति ।

* सरोजिनी *

'वागर्थौ' = वाणी एवं पदार्थ । **'वाक'** शब्द 'वर्ण' पद एवं मन्त्र के रूप में एवं **'अर्थ'** कला, तत्त्व एवं भुवन के रूप में स्थित हैं । शिव–शक्ति का यही स्वरूप है । शब्द एवं अर्थ प्रकाश-विमर्शात्मक हैं तथा षडध्वनिर्मित निःशेष जगत् के उद्भावक हैं । ये नित्य संयुक्त रहते हैं । ये दोनों सृष्टि पालन एवं संहार की क्रियाओं द्वारा अपने को परिवर्तित या रूपान्तरित करते हैं । **'नित्ययुतौ'** = नित्य संयुक्त । **'एतौ'** = ये दोनों । **'शिवशक्तिमयौ'** = शिव एवं शक्ति से युक्त, शिवशक्त्यात्मक । **'सृष्टि'** = शिव से लेकर क्षिति पर्यन्त समस्त तत्त्वों का उन्मेष । **'स्थिति'** = उन्मिषित जगत् का सत्ता में बने रहना एवं एतदर्थ उसका पालन किया जाना । **'लय'** = कार्य का कारण में लीन हो जाना, बहुत्व का एकत्व में प्रत्यावर्तन या स्वात्मसाक्षात्कार । स्थिति, लय एवं संहार ये तीनों कार्य आत्मा के द्वारा एवं आत्मा के अन्दर सम्पन्न होते हैं । अभिनवगुप्त ने ठीक ही कहा है कि सृष्टि, स्थिति एवं संहार नामक तीनों कार्य स्वरूप की दृष्टि से आत्मा के ही अङ्ग हैं । **'शिवशक्तिमयौ'** = वाक् एवं अर्थ परस्पर शिव-शक्ति हैं । ये ही 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' के रूप हैं । यथा अग्नि एवं उसकी दाहकता की शक्ति में कोई भेद नहीं है उसी प्रकार शिव एवं शक्ति या 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' में कोई भेद नहीं है । **'त्रिधा विभक्तौ'** = परस्पर संयुक्त प्रकाश एवं विमर्श तीन रूपों में विभक्त हैं, जो कि निम्न हैं—'वाग्भव', 'कामराज' एवं 'शक्तिबीज' । काम-कलारूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी देवी बिन्दुत्रय की समष्टि से निर्मित हैं । ये ही भक्तों की उपास्या

देवी हैं । वामकेश्वरतन्त्र में त्रिपुरा को 'तत्त्वत्रयविनिर्दिष्टा' एवं 'वर्णशक्तित्रयात्मिका' कही गई है । कहा गया है कि (१) वागीश्वरी या ज्ञानशक्ति 'वाग्भवबीज' में स्थित है और मोक्ष-रूपिणी है । (२) 'कामकला' या क्रियाशक्ति 'कामराज' बीज में स्थित है और कामरूपिणी हैं तथा (३) इच्छा (पराशक्ति) शक्तिबीज में स्थित हैं और शिवरूपिणी हैं । इसी प्रकार का स्वरूप है महात्रिपुरसुन्दरी का । यही संसार–बन्धनों को शिथिल करती है ।

भास्कर ने मन्त्र रूप 'वाक्' एवं विश्व के कारणभूत ३६ तत्त्वों को अभिन्न मानकर वाक् एवं अर्थ दोनों में अभिन्नता की पुष्टि की है—

'षटत्रिंशत्तत्त्वरूपास्मान्मात्रयापि न भिद्यते[१] ॥'

शक्ति का परिणाम अर्थ, शब्द, चक्र एवं देह सभी कुछ है । अर्थमयी, शब्दमयी, चक्रमयी एवं देहमयी समस्त सृष्टि शक्ति का ही रूपान्तरण है—

'अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमयापि च सृष्टिः'[२] ॥ १२ ॥

इतः परं वाग्भवादिखण्डत्रयान्तर्गतवस्तुविशेषवर्णनद्वारा श्रीपञ्चदशाक्षरीविद्यामुद्धर्तुमुपक्रमते—

माता मानं मेयं बिन्दुत्रयभिन्नबीजरूपाणि ।
धामत्रयपीठत्रय–शक्तित्रयभेदभावितान्यपि च ॥ १३ ॥
तेषु क्रमेण लिङ्गत्रितयं तद्वच्च मातृकात्रितयम् ।
इत्थं त्रितयपुरी या तुरीयपीठादिभेदिनी विद्या ॥ १४ ॥

(धामत्रय, बीजत्रय, पीठत्रय एवं शक्तित्रय का स्वरूप)

ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय 'तीन बिन्दु' एवं 'बीज' के विभिन्न रूप हैं तथा (ये तीनों बिन्दु) तीनों धामों, तीनों पीठों एवं तीनों शक्तियों के भेद से भी जाने जाते हैं ॥ १३ ॥

(मातृकात्रय, विद्या एवं तुरीयपीठ का स्वरूप)

उनमें ही क्रमानुसार तीन लिङ्ग एवं उसी प्रकार तीन मातृकाएँ स्थित हैं । इस प्रकार जो यह त्रिप्रकारशरीरिणी विद्या देवी है वे तुरीयपीठ एवं समस्त भेदों का मूल हैं ॥ १४ ॥

*** चिद्वल्ली ***

माता अवगन्ता महेश्वरः । मानं तदवगतिसाधनभूता विद्या । मेयं ज्ञायमाना महात्रिपुरसुन्दरी एतानि ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपाणि—बिन्दुत्रयभिन्नबीजरूपाणीति—बिन्दूनां पूर्वोक्तानां त्रितयं बिन्दुत्रितयं रक्तशुक्लमिश्ररूपं तदात्मना भिन्नं पृथग्भूतम् । यद्बीजं सर्वसमष्टिभूत–निर्वाणाख्यम् । तद्रूपाणि तत्प्रकाशकानि । अयमर्थः—सर्वातीतचिदानन्दघनात्मानुभव-रूपाहम्भावशालिनी परं ज्योतिरेव मातृमानमेयभावमनुभूय विहरति ।

तथा बृहदारण्यके—'आत्मैवेदमग्र आसीत् सोऽन्वीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत् । सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत् । ततोऽहं नामा अभवत् । तस्मादप्येतर्ह्यामन्त्रितोऽहमयमित्येवाग्र

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (२।६८) ।
२. व० र० (२।५) ।

उक्त्वान्यन्नाम ब्रूत' इति । अस्यार्थः—आत्मा परमेश्वर एव । इदं परिदृश्मानं जगत् अग्रे प्रथमम् आसीत् । स्वान्तर्गतप्रपञ्चोऽभवदित्यर्थः । तथा स परमात्मा अन्वीक्ष्य स्वात्मसात्कृतप्रपञ्चात्मत्वेनालोक्य अन्यदात्मनो नापश्यत्स्वव्यतिरिक्तं किञ्चिदपि नाद्रक्ष्यत् । स्वेनैव सर्वेषां कवलीकरणात् । तस्मिन् समये अखण्डसच्चिदानन्दघनात्मानुरूपं स्वसाधारणरूपमस्मि भवामि इति प्रदर्शयन्नग्रे सृष्टेः पूर्वं व्याहरत् प्रादर्शयत् । तत एवाहं नामाभवत् । ब्रह्मण एव स्वस्वरूप प्रदर्शनात् । अहमित्येव हि ब्रह्मनामधेयम् । तस्मादिहापि श्लोके आमन्त्रितः कस्त्वमिति केनचित्पृष्टः । अहमित्येव ब्रह्मस्वरूपमुक्त्वा अन्यन्नामधेयादिकं पश्चात् ब्रूते । ततश्च सर्वत्र स्वस्वरूपावलोकनद्वारा ब्रह्मण एव ज्ञातृत्वादिभेदप्रतिपादितोऽभवदित्यर्थः । तथा चतुश्शत्याम्—

अतीतं तु परं तेजः स्वसंविदुदयात्मकम् ।
स्वेच्छाविश्वमयोल्लेखखचितं विश्वरूपकम् ॥
चैतन्यमात्मनो रूपं निसर्गानन्दसुन्दरम् ।
मेयमातृप्रमामानप्रसरैः सङ्कुचत्प्रभम् ॥ इति ॥

प्रत्यभिज्ञायामपि—

अखण्डितस्वभावोऽपि विचित्रां मातृकल्पनाम् ।
स्वहृन्मण्डलचक्रे यः पृथक् चेत्तं नुमश्शिवम् ॥

धामत्रयं नाम सोमसूर्याग्निमण्डलत्रयम् । बीजत्रयं वाग्भवादिकम् । पीठत्रयं कामगिर्यादिकम् । शक्तित्रयमिच्छादि । एवमादिभेदेन भावितानि महाबिन्दुमयत्वादेतेषु धामादिषु त्रिभेदभिन्नेषु क्रमेणानुपूर्व्या लिङ्गत्रितयं स्वयम्भुवादिमातृकात्रितयम् अकथादिभेदभिन्नम् । एवंविधसमस्तवस्तुपूरणात्समष्टिरूपा त्रिपुरा नाम पराशक्तिराविर्भूतेत्याह—इत्थं त्रितयपुरी या इति । इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण त्रितयानि त्रयसंख्यानि पुराणि शरीराणि यस्यास्सा । अत एव तुरीयपीठा त्रिविधात्मकसर्वप्रपञ्चाविर्भावतिरोभावभूमिरित्यर्थः । तथा चोक्तम्—'मातृकां पीठरूपिणीम्' इति । स्वच्छन्दे विभावितोऽपि च ।

सुबालोपनिषदि च—'आनन्दमेवास्तमेति उदेति तुरीयमेवाप्येति । यत्तु तुर्यमेव तदेतदमृतम् अभयमशोकमनन्तं निर्बीजमप्येति इति होवाच । एवंविधतुरीयपीठादिभेदिनी स्वात्मन्येव स्वेच्छया उद्भावितानन्ततत्त्वकदम्बिनी अखण्डसंविदात्मिका ।

तथा चोक्तम्—

त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुरोभवाच्च त्रयीमयत्वाच्च पुरोऽपि देव्याः ।
अयं त्रिलोकीमयपूरणाच्च प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम ॥ इति ।

स्वसंवित् त्रिपुरा देवी इति । स्वातन्त्र्योल्लासिताशेषतत्त्वप्रोतस्वरूपिणी । आद्यैरग्निरवीन्दुबिम्बनिलयैरित्यादि । इतः परं तस्माद् गगनसमीरणदहनोदकभूमिवर्णसम्भूतिरिति ॥ १३–१४ ॥

* सरोजिनी *

पुण्यानन्द नाथ कहते हैं कि ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय तीन बिन्दु हैं । ये तीन बिन्दु 'निर्वाण बीज' या 'महाबिन्दु' के रूपत्रय हैं । ये तीनों बिन्दु ज्योतित्रय, पीठत्रय, शक्तित्रय, लिङ्गत्रय एवं मातृकात्रय भी हैं । ज्योति, पीठ, शक्ति, लिङ्ग एवं मातृका के भेदत्रय बिन्दुओं के विभिन्न पक्ष हैं ।

'माता' = ज्ञाता अर्थात् परमात्मा । **'मानम्'** = ज्ञान 'विद्या' = जिसके द्वारा जाना जाय । जो अवगतिसाधनभूता हो । **'मेयम्'** = ज्ञान का विषय अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी । **'बिन्दुत्रय'**—तीन बिन्दु अर्थात् ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेय । **'बीजरूपाणि'** = बीज के विभिन्न रूप। 'बिन्दु' के तीन भेद हैं—१. 'रक्त', २. 'श्वेत', ३. 'मिश्र बिन्दु' । **'बीज'** = निर्वाणबीज । बिन्दुत्रय की समष्टि का नाम ही 'निर्वाणबीज' है । **'रूपाणि'** = विभिन्न रूप या भेद । वह पराभट्टारिका जो कि परमज्योति, चिदानन्द एवं घनात्मा है आत्मगत अहम्भाव के द्वारा अपने में ही माता, मेय एवं मान के भेदों द्वारा अपने स्व के आनन्द की अनुभूति करती है ।

सृष्टिप्राक्काल में केवल आत्मा ही 'पुरुष' के रूप में स्थित थी । उसने अपने बाहर अपने से अतिरिक्त किसी को भी नहीं देखा । उसने प्रथमतः 'सोऽहमस्मि' कहा । तदनन्तर 'अहं' का आविर्भाव हुआ । इसी कारण आज भी प्रत्येक व्यक्ति आत्मपरिचय देते हुए प्रथमतः 'अहं अयम्' ही कहता है और उसके बाद अपना नाम बताता है । सारांश यह कि आत्मा ही परमात्मा है—आत्मा ही सर्वोच्च प्रभु हैं । **'इदम्'** दृश्य जगत् है । सृष्टिप्राक्काल में परमात्मा ने अपने भीतर जगत् को आत्मत्वेन देखा और अपने से बाहर कुछ भी न पाया । इस स्थिति में उसने अपने को ही यह दिखाया कि मैं विश्वरूप हूँ और अखण्ड चिद्घनानन्द हूँ । सृष्टि-प्राक्काल में परमात्मा अपने भीतर अपना ही आनन्द ले रहा था और द्रष्टा एवं दृश्य दोनों बनकर अपने स्व को ही अपने को दिखा रहा था । इसके अनन्तर 'अहं' का उदय हुआ । इस दशा में परमात्मा अपनी आत्मा को ही 'अहं' के रूप में अपने को दिखाता है । आत्मा ही अपनी अभिव्यक्ति के समय मातृ, मान, मेय एवं प्रमा बन जाता है ।

'धामत्रय' = ज्योतित्रय, मण्डलत्रय—चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि । **'बीजत्रय'** = 'वाग्भव', 'कामराज' एवं 'शक्तिबीज' । **'पीठत्रय'** = 'कामगिरि', 'पूर्णगिरि', जालंधर । शक्तित्रय = इच्छा–ज्ञान–क्रिया । **'भावितानि'** = जाने जाते हैं ।

सारांश यह है कि—ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेय, तीन धाम, तीन पीठ एवं तीन शक्तियाँ ये सभी बिन्दुत्रय एवं बीज के ही विभिन्न रूप हैं अतः उनसे अभिन्न हैं ॥ १३ ॥

'लिङ्गत्रितयम्' = स्वायम्भू, बाण, इतर एवं पर । **'मातृकात्रितयम्'** = तीन मातृकाएँ – अ, क, थ । 'त्रिपुरा' समस्त पदार्थों की महासमष्टि है । यही पराशक्ति है । यह त्रिभेदशरीरिणी है । इसे 'तुरीयपीठ' इसलिए कहा गया है क्योंकि इसी आधार पर समस्त प्रपञ्च स्थित है और यहीं समस्त प्रपञ्च का लय हो जाता है । भगवती मातृकात्मिका है – 'ज्ञातृज्ञानमयाकारमननान्मन्त्ररूपिणी, तेषां समष्टिरूपेण पराशक्तिस्तु मातृका' । (यो० ह्र०)

अमृतानन्द 'दीपिका' में कहते हैं कि – 'पराशक्ति', 'पश्यन्ती' 'मध्यमा' एवं वैखरी' रूप से सर्वत्र व्याप्त है और मूल रूप में 'परावाक्' के रूप में तो स्थित ही है – 'परामातृका पश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपेण व्यापृता ॥' 'श्रुतिप्रतिपादिता परैव मातृका' (दीपिका) । 'परमा कला' ही परावाक् बन जाती है -'आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला । अम्बिका-रूपमापन्ना परावाक् समुदीरिता ॥ १४ ॥

टिप्पणी - १. श्रीचक्र एवं शारीर चक्रों में ऐक्य –

'त्रिकोण' = मूलाधार । **'अष्टार'** = स्वाधिष्ठान । **'अन्तर्दशार'** = मणिपूर । **'बहिर्दशार'** = अनाहत चक्र । **'चतुर्दशार'** = विशुद्ध चक्र । **शिवस्थान, शिवचक्र, बैन्दवस्थान** = आज्ञाचक्र (सुभगोदय स्तुति) ।

२. बीजत्रय और भगवती में ऐक्य – 'बीजत्रय' –

i. 'वाग्भव कूट' (**आग्नेय**) - भगवती का मुख है ।

ii. 'कामकला कूट' (**सौर**) – भगवती का कण्ठ से कटिपर्यन्त प्रदेश है ।

iii. 'शक्ति कूट' (**चन्द्रखण्ड**) – भगवती का कटि के नीचे का भाग ही शक्तिकूट है, जो कि सृजनरूप है ।

३. मन्त्र, श्रीचक्र, शारीर चक्र, मन्त्रकूट एवं मन्त्राक्षर में एकता –

	खण्ड का नाम	श्रीयन्त्र के विभिन्न चक्र	सुषुम्ना में स्थित चक्र	मन्त्र के कूट	मन्त्राक्षर
१.	सोम-खण्ड	चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदलपद्म	विशुद्ध एवं आज्ञा चक्र	शक्ति कूट	स्वर
२.	सूर्य-खण्ड	अन्तर्दशार, बहिर्दशार	मणिपूर एवं अनाहत चक्र	कामराज कूट	क आदि वर्ण
३.	अग्नि-खण्ड	त्रिकोण एवं अष्टार	मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र	वाग्भव कूट	य वर्ग के वर्ण
४.	बैन्दव-स्थान	वृत्तत्रय-भूपुर	सहस्रार	अन्तिम तूर्य	नाद

४. शिव एवं शक्ति में ऐक्य – अधिष्ठान साम्य, अनुष्ठान साम्य, अवस्थान साम्य, रूप साम्य एवं नाम साम्य । (सुभगोदय स्तुति)

५. कुण्डलिनी, खण्ड एवं मन्त्रावयव में ऐक्य – अधः कुण्डलिनी – अग्निखण्ड – वाग्भव कूट; मध्यकुण्डलिनी – सूर्यखण्ड – कामराजकूट; ऊर्ध्वकुण्डलिनी सोमखण्ड – शक्तिकूट; पराकुण्डलिनी - पराखण्ड – तूर्यकूट ।

६. कला का बिन्दु से, कला-बिन्दु का नाद से, नाद का कला एवं बिन्दु से, कला का नाद-बिन्दु से, कला-बिन्दु-नाद का परशिव के साथ, नाद-कला–बिन्दु का परशिव के साथ, कलानाद, एवं बिन्दु का परशिव के साथ ऐक्य ।

७. पञ्चदशाक्षर मन्त्र का श्रीचक्र तथा अन्य के साथ ऐक्य –

i. 'ल' = 'लकारः पृथिवी बीजं तेजो भू बिम्बमुच्यते ।

ii. 'स' = 'सकारश्चन्द्रमा भद्रे कलाषोडशात्मकः ; तस्मात् षोडशपत्रं च ।'

iii. 'ह' = 'हकारः शिव उच्यते, अष्टमूर्तिः सदाभद्रे, तस्माद्वसुदलं भवेत्' ।

iv. 'ई' = 'इकारस्तु सदा माया भुवनानि चतुर्दश ।
पालयन्ती परात्साच्छक्र कोणं भवेत् प्रिये' ॥

v. 'ऐ' = 'शक्तिरेकादशस्थाने स्थित्वा सूते, जगत्त्रयम् ।
विष्णोर्योनिरितिख्याता सा विष्णोर्दशरूपकम् ॥
एकारात् परमेशानी चक्रं व्याप्य व्यवस्थिता ॥

vi. 'र'= दशकोणकरं तस्मात् प्रकारो ज्योतिराख्यः ।
कला दशान्वितो वह्निर्दशकोणप्रवर्तकः ॥

vii. 'क' = 'ककारान्मदनो देवि शिवं चाष्टस्वरूपकम् ।
योनिवश्यं तदा चक्रं वसुयोन्यङ्कितं भवेत्' ॥

viii. 'ु' - अर्धमात्रा गुणान् सूते नादरूपा यतः स्मृतः । त्रिकोणरूपा योनिस्तु ।

ix. '⊙' = बिन्दुना बैन्दवं भवेत् ।
कामेश्वरस्वरूपं तद्विश्वाधारस्वरूपकम्'। श्रीचक्रन्तुर्विय सम्भवमिति ।

x. कला = वर्ण का ऐक्य – बिन्दु या चक्र से ।

xi. ल – पृथ्वी तत्त्व का अक्षर है – मूलाधार – पृथ्वी तत्त्व ।

xii. क – जल का द्योतक है – स्वाधिष्ठान – जल तत्त्व ।

xiii. र – अग्नि तत्त्व का अक्षर – मणिपूर – अग्नि तत्त्व ।

xiv. 'ई' – चतुर्थ स्वर – हृदय – चतुर्थ चक्र ।

xv. 'ऐ' – वाणी – विशुद्ध – वाणी का स्थान – वैखरी वाक् ।

xvi. ◡ ⊙ – अर्धेन्दु एवं चन्द्र – आज्ञा – चन्द्रस्थान ।

xvii. स – शक्ति या सोम का द्योतक – सहस्रार – शक्ति का एवं चन्द्रमा का भी स्थान ।

xviii. स – अमृत – सहस्रार – अमृतस्थान ।

xix. ह = गगनमण्डल का सूचक या शिव का सूचक तथा परम शिव का स्थान । ल = पृथ्वी – सर्वजन्मदात्री माता अर्थात् योनि = त्रिकोण = मूलाधार । 'क' = प्रथमाक्षर, प्रथमावस्था – त्रिकोणों का प्रथम प्रसार – अष्टार – स्वाधिष्ठान । 'र' = अग्नि = अग्नि १० जिह्वा है – अन्तर्दशार = मणिपूर । 'ई' = विष्णु – माया – १० रूपा – १० अवतारों के कारण – बहिर्दशार = अनाहत । 'ऐ' – विश्वयोनि – भुवन – भुवन १४ हैं, अतः चतुर्दशार = विशुद्ध । वाणी रूप से यह विशुद्ध है । ◡ – अर्धचन्द्र - अष्टदलपद्म। स – सोम – चन्द्रमण्डल – षोडशदलपद्म ⊙ बैन्दवस्थान या वृत्त – त्रिवृत्त = सहस्रारस्थ चन्द्रमण्डल । ह = शिव – शिवस्थान – चतुष्कोण = भूपुर = सहस्रार ॥

कला (वर्ण) एवं नाद से ऐक्य – 'ह' = शिव । 'स' = शक्ति । शक्ति-शिव का मिलन (मिथुन) → नाद । बिन्दु = नाद की प्रथमावस्था । अर्धचन्द्रमा = बिन्दु का

प्रथम प्रसार = 'कामकला' । 'ल' = पृथ्वी । पृथ्वी से भूतोत्पत्ति होने से कारण है और यह नाद की परावस्था है ।

'क' = वर्ग का आद्यक्षर होने के कारण प्रथम स्फोट का द्योतक है 'क' । 'र' = यह अग्नि का द्योतक है । यह अग्नि शक्ति का मूल कारण है । यह आद्य स्फोट की शक्ति है ' अतः 'क' एवं 'र' = 'पश्यन्ती वाक्' है । 'ई' = इच्छाशक्ति का द्योतक । इसका वाक् के साथ संयोग → मध्यमा वाक् का उदय । 'ऐ' = वाक् का सूचक = वैखरी वाक् ॥

बिन्दु (चक्रों) की नाद से एकता : लक्ष्मीधर (सौ० ल० ४१ वाँ श्लोक) –

बिन्दु (चक्र)	= नाद	श्रीचक्र का भाग—
(१) मूलाधार चक्र	= परा	= त्रिकोण ।
(२) स्वाधिष्ठान चक्र	= पश्यन्ती	= अष्टार ।
(३) मणिपूर चक्र	= मध्यमा	= दशारद्वय ।
(४) विशुद्ध चक्र	= वैखरी	= चतुर्दशार ।
(५) आज्ञा चक्र	= नाद, नादान्त	= शिवचतुष्कोण ।
(६) सहस्रार	= नादबिन्दु कलातीत	= भगवती त्रिपुरसुन्दरी (परासंवित्)

पञ्चदशीमन्त्र एवं वर्णमाला में एकता –

श्रीचक्र के तीन भाग—(१) 'नाद' (आज्ञा से सहस्रार तक) = भूपुर । (२) बिन्दु – शिवचक्र = ३ वृत्त, षोडशदल पद्म, अष्टदल पद्म। (३) 'कला' = शक्तिचक्र – त्रिकोण, अष्टार, दशारद्वय, चतुर्दशार ।

पञ्चदशी मन्त्र के ३ भाग हैं –

(१) **मन्त्र का सोमखण्ड :** चन्द्रात्मक होने के कारण सभी स्वरों का द्योतक है।

(२) **मन्त्र का सूर्यखण्ड :** सूर्यात्मक होने के कारण क से म पर्यन्त वर्णों का द्योतक है ।

(३) **मन्त्र का अग्निखण्ड :** अग्न्यात्मक होने के कारण य, र, ल, व, श, ष, स का द्योतक है ।

(४) **मन्त्र का बैन्दव खण्ड –** 'क्ष' का द्योतक है ।

(५) 'ह' विसर्गान्तर्गत है । अतः समस्त अक्षर पञ्चदशी मन्त्र के अन्तर्गत आ जाते हैं । मन्त्र के अन्तिम कूट का स्थान 'सहस्रार' है ।

'शक्तिचक्र' मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत एवं विशुद्ध के समतुल्य है तथा **'शिवचक्र'** आज्ञाचक्र एवं उसके ऊपर के चक्रों के समतुल्य हैं ।

अष्टदल, षोडशदल = चन्द्रमा के द्योतक । 'आज्ञाचक्र' चन्द्रमा का स्थान है । षोडशदल पद्म के १६ दल = चन्द्रमा की १६ कलाओं के द्योतक हैं । आज्ञा एवं उसके ऊपर के चक्र = चन्द्रमा के स्थान । भूपुर = सहस्रार । वृत्तत्रय = बैन्दवस्थ (सहस्रारस्थ) चन्द्रमा के स्थान हैं और चन्द्रमा की १७ वीं कला के द्योतक हैं ।

'चक्र' = सोम-सूर्य–अग्न्यात्मक है—

१. अग्निखण्ड – मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान = वा०कूट = अ०, अ० त्रिकोण।
२. सूर्यखण्ड – मणिपूरक एवं अनाहत = कामकूट = चतु० + बहि०।
३. सोमखण्ड – विशुद्ध एवं आज्ञा = शक्तिकूट : शिव के ४ चक्र।

चक्र एवं मातृकाएँ—

१६ स्वर = षोडश दल में समाविष्ट हैं।
समस्त व्यञ्जन = वृत्तत्रय में समाविष्ट हैं।
य वर्ग के अक्षर = चतुष्कोण में समाविष्ट हैं।
ह एवं ल = बिन्दुस्थान (त्रिवृत्त) है।
वर्गाष्टक = अष्टदल।

भगवती का त्रिखण्डात्मक स्वरूप—

	खण्ड का नाम	मन्त्र का भाग	श्री चक्र के भाग	षड् कमल	कुण्डलिनी
१.	सोम-खण्ड	शक्तिकूट	शिव के ४ चक्र	आज्ञा, विशुद्ध	सोमकुण्डलिनी
२.	सूर्य-खण्ड	कामकूट	चतुर्दशार, बहिर्दशार	अनाहत मणिपूर	सूर्यकुण्डलिनी
३.	अग्नि-खण्ड	वाग्भवकूट	अन्तर्दशार, अष्टार, सबिन्दु त्रिकोण	स्वाधिष्ठान मणिपूरक चक्र	अग्नि-कुण्डलिनी

पञ्चदशी मन्त्र एवं भगवती में ऐक्य—

१. आग्नेय वाग्भव कूट = भगवती का मुख।
२. सौर कामकला कूट = भगवती का कण्ठ से कटिपर्यन्त भाग।
३. चान्द्र शक्ति कूट = भगवती का कटि से नीचे का भाग।

पञ्चदशी के १५ अक्षर = १५ कलाएँ। १६वीं कला = त्रिपुरसुन्दरी (१५ में से प्रत्येक कला १६वीं कला का ही अङ्ग है)

श्रीचक्र के ३ खण्ड हैं – (१) नाद, (२) बिन्दु, (३) कला। मन्त्र का प्रत्येक अक्षर शिवशक्त्यात्मक है ॥ १३-१४ ॥

प्रथमसृष्टपञ्चभूतनिष्ठं गुणवर्णनद्वारा अक्षरसङ्घ्याविशिष्टमहामन्त्रात्मकदेवता–स्वरूपं वक्तुमारभते—

शब्दस्पर्शौ रूपं रसगन्धौ चेति भूतसूक्ष्माणि।
व्यापकमाद्यं व्याप्यं तूत्तरमेवं क्रमेण पञ्चदश ॥ १५ ॥
पञ्चदशाक्षररूपा नित्या चैषा हि भौतिकाभिमता।
नित्याश्शब्दादिगुणप्रभेदभिन्नास्तथानया व्याप्ता: ॥ १६ ॥

नित्यास्तिथ्याकाराः तिथयश्शिवशक्तिसमरसाकाराः ।
दिवसनिशामय्यस्ताः श्रीवर्णास्तेऽपि तद्द्वयीरूपाः ॥ १७ ॥

(सूक्ष्मभूतों, गुणों, नित्याओं एवं तिथियों का स्वरूप)

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध – ये सूक्ष्मभूत हैं । इनमें से प्रत्येक पूर्ववर्ती, परवर्ती व्याप्य का व्यापक है और इस प्रकार क्रमानुसार (सभी को क्रमिक रूप में परिगणित किये जाने पर संख्या में) पन्द्रह (गुण) हैं ॥ १५ ॥

और यह नित्या (त्रिपुरा) (मन्त्रस्थित) पन्द्रह अक्षरों के स्वरूप वाली है और उसी रूप में जानी जाती है जिस रूप में कि वह भूतों में स्थित है तथा (त्रिपुरा देवी) शब्दादिक गुणों के भेद से परस्पर पृथक् रूप में स्थित इनके द्वारा (नित्याओं द्वारा) व्याप्त (आच्छादित) है ॥ १६ ॥

(पञ्चदश) नित्याएँ तिथियों के आकार (रूप) में स्थित हैं और तिथियाँ शिव शक्ति का सामरस्य हैं । ये दिन–रात से युक्त हैं, श्रीविद्या के मन्त्र के वर्ण हैं तथा ('प्रकाश' एवं विमर्शरूप) दो प्रकृतियों वाली हैं ॥ १७ ॥

*** चिद्वल्ली ***

अस्यार्थः – शब्दः आकाशगुणः । स्पर्शः वायुगुणः । रूपं तेजोगुणः । रसो वारिगुणः । गन्धः पृथिवीगुणः । एते गुणा आकाशमारभ्य पृथिवीपर्यन्तमुत्तरोत्तरमेकैक – गुणाधिक्येन पञ्चदशगुणाः सम्पद्यन्ते । एतेषां गुणानां पञ्चदशभावेन श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी जाता । तत्स्वरूपिणी चेयमाविर्भूतेत्याह – पञ्चदशाक्षररूपेति – भौतिकामितता भूत–सम्बन्धेनाभिमता इष्टा । अत एव पञ्चदशाक्षररूपास्वात्मन आविर्भूतगुणानां पञ्चदशात्मकत्वात् । विद्याक्षराणामपि पञ्चदशत्वम् । तद्रूपा तत्स्वरूपिणी नित्या कूटस्था तरङ्गबुद्बुदफेनानामम्बुधिरिव सकलतत्त्वाविर्भावभूमिरित्यर्थः । तथा बृहदारण्यके – 'इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविशति' इति ॥ मुण्डकोपनिषदि च – 'यस्मिन् भावाः प्रलीयन्ते' इति ॥ शिवानन्दाश्च –

शिवादिक्षितिपर्यन्तं षट्त्रिंशत्तत्त्वसञ्चयाः ।
यस्योर्मिबुद्बुदाभावास्तं वन्दे चिन्महोदधिम् ॥

इति कूटस्थाया एव षोडश्याः पञ्चदशावयवात्मकपञ्चदशतिथिनिष्ठिता पञ्चदश–देवतामयपञ्चदशाक्षरीरूपतामाह – नित्यास्तिथ्याकारा इति । नित्याः कामेश्वरीप्रभृति चित्रान्ताः । तिथ्याकाराः तिथ्यभिमानिन्यो देवताः । तिथयश्च प्रतिपत्प्रभृति पूर्णिमान्ताः । शिवशक्तिसमरसाकाराः प्रकाशविमर्शसम्पुटाकाराः । अत एव दिवस निशामय्यः दिवारात्रिरूपाः । प्रकाशविमर्शयोः दिवारात्रिमयत्वात् । तथा चोक्तं चिद्विलासे – 'सा निशा सकललोकमोहिनी वासरस्स खलु सर्वबोधकः ।' इति । तास्तिथयः श्रीवर्णाः । तेऽपि ते पूर्वोक्तरूपेण पञ्चदशरूपाः । श्रीवर्णाः विद्यान्तर्गतवर्णगणाः । अपि तन्मयी रूपाः तादृशप्रकाशविमर्शरूपा इत्यर्थः । इयं च पञ्चदशाक्षरी ऋग्वेदे साङ्ख्यायन

शाखायामाम्नाता । यथा – 'कामो योनिः कमला' इत्यादि । तस्मिन्नेव वेदेऽन्यत्र – 'चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्ते' – इत्यादावपीयं विद्या विद्योतत इति वर्णयन्ति केचित् ।

अयमत्र विवेकः – इयमेव प्रकाशविमर्शमयी पराशक्तिः पञ्चभूतात्मिका उत्तरोत्तरगुणवृद्धिद्वारा पञ्चदशसङ्ख्याकमन्त्राक्षरतिथ्याभिमानिनी देवतास्वरूपिणी जाता । तथा यथागमः –

एक एव प्रकाशाख्यः परः कोऽपि महेश्वरः ।
यस्य शक्तिर्विमर्शाख्या सा नित्या गीयते बुधैः ॥
विमर्शाख्या च सा देवी पाञ्चविध्यं समागता ।
आकाशानिलसप्तार्चिस्सलिलावनिभेदतः ॥
एकैकगुणवृद्ध्या तु तिथिसङ्ख्यात्वमागता ।
विमर्शरूपिणी नित्या षोडशी या प्रकीर्तिता ॥
गता सा षोडशैर्भेदैस्त्रिपुरा परमेश्वरी । सुन्दर्यादिमहापूर्वं विचित्रान्तं समन्ततः ॥
आगमादेव बोद्धव्यमिति सङ्केतमात्रतः । प्रतिपत्प्रभृतौ देव्याः पौर्णमास्यन्तिकं प्रिये ॥
एकैकं पूजयेद्यस्तु स सौभाग्यमवाप्नुयात् ॥

सुभगोदयवासनायामपि – 'खं वायुर्ज्योतिरब्भूमिशब्दादिगुणभेदतः । दशपञ्चतया व्याप्ता व्यापिकाः पूजयाम्यहम्' ।। इति ॥ १५–१७ ॥

* सरोजिनी *

'शब्द' – आकाश का गुण । **'स्पर्श'** = वायु का गुण । **'रूप'** = अग्नि का गुण । **'रस'** = जल का गुण । **'गन्ध'** = पृथ्वी का गुण । **पृथ्वी** में – शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध ५ ; **जल** में - शब्द, स्पर्श, रूप, रस ४; **अग्नि** में – शब्द, स्पर्श, रूप ३; **वायु** में – शब्द, स्पर्श २ एवं **आकाश** में – शब्द १ गुण स्थित हैं । ५ + ४ + ३ + २ + १ – इन सबको जोड़ने पर योग १५ आता है । जिस प्रकार तत्त्वों में स्थित गुणों की संख्या का योग १५ होता है उसी प्रकार 'श्रीविद्या' देवी के मन्त्र में भी १५ अक्षर होते हैं । त्रिपुरा मन्त्रस्वरूपा है, अतः मन्त्र के १५ अक्षर उसके ही रूप हैं ।

'शब्दस्पर्शौ रूपं रसगन्धौ चेति भूतसूक्ष्माणि' = शब्द स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध सूक्ष्म महाभूत हैं । **'व्यापकमाद्यम्'** = पूर्ववर्ती व्यापक (व्याप्त करने वाला) । , उत्पादक । **'तूत्तरमेव व्याप्यम्'** (इनमें से प्रत्येक) उत्तरवर्ती व्याप्य (व्याप्त होने वाला) उत्पन्न है ।

'पञ्चदशाक्षररूपा नित्या चैषा भौतिकाभिमता' = नित्या (त्रिपुरा देवी) पञ्चदशाक्षरी मन्त्र विद्या के १५ अक्षरों का स्वरूप है और यह (भूतों में भी अभिव्यक्त होने के कारण) भौतिक भी जानी जाती है (यह भौतिक रूप में भी पूजित होती है) ।

चूँकि त्रिपुरा से १५ गुण निःसृत होते हैं अतः मन्त्र के अक्षर भी १५ हैं । त्रिपुरा का अपना व्यक्त रूप मन्त्र है और यह मन्त्रस्वरूपिणी है । जिस प्रकार समुद्र अपने अन्तस्तल में स्थिर रहता है किन्तु उसके वक्षःस्थल पर दौड़ने वाली लहरें अस्थिर रहती हैं, उसी प्रकार

त्रिपुरा तो स्थिर है किन्तु उनके वक्षस्थल पर दौड़ने वाली जगत् रूपी लहरें अस्थिर हैं । क्षिति पर्यन्त समस्त तत्त्व उसी में प्रकट एवं लीन हो जाते हैं ।

'नित्यास्तिथ्याकारः' = १५ नित्याएँ १५ सौर तिथियों एवं सौर दिवसों का प्रतिनिधित्व करती हैं । नित्याएँ सौर दिवसों के रूप में व्यक्त होती हैं । इन नित्याओं में प्रथम नित्या कामेश्वरी है और अन्तिम चित्रा है । ये तिथ्याकार हैं । ये देवता हैं जो कि तिथिरूप हैं । तिथियाँ प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त १५ हैं ।

'तिथयश्च शिवशक्तिसमरसाकारः'= और ये तिथियाँ शिव और शक्ति (प्रकाश एवं विमर्श) के सामरस्य का रूप है, अतः दिन एवं रात्रि के रूप हैं । 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' दिन एवं रात्रि हैं । इसीलिए 'चिद्विलास' में कहा गया है कि देवीरूपा रात्रि समस्त विश्व को सुलाती है और देवरूप दिन समस्त विश्व को जगाता है । अतः पुण्यानन्दनाथ कहते हैं – 'दिवसनिशामय्स्तः' ॥

'श्रीवर्णास्तेऽपि तद्वयीरूपः' = तिथियाँ श्रीविद्या के १५ अक्षर हैं । इनके दो रूप हैं – जो कि 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' से युक्त हैं । अथर्वशीर्ष में इसी 'पञ्चदशाक्षरी विद्या' का इस प्रकार वर्णन किया गया है –

'कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहाहसा मातरिश्वा भ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमाता दिविद्योम ॥'

अर्थात् काम (क) योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि (ल), गुहा (ह्रीं), ह, स वर्ण, मातरिश्वा (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीम्), स, क, ल वर्ण और माया (ह्रीं) यह वर्णात्मिका जगन्माता की मूल विद्या है और यह ब्रह्मरूपिणी है ।

सारांश यह कि प्रकाश-विमर्शस्वरूपिणी एवं पञ्चभूतात्मिका यह 'पराशक्ति' गुण – वृद्धि के कारण मन्त्र के १५ अक्षर भी बन जाती है और १५ तिथियाँ भी । यही १५ देवों के रूप में भी व्यक्त होती है । आगमों में कहा गया है कि परात्पर महेश्वर केवल एक है । 'विमर्श' उसकी निजा शक्ति है । उसे ही 'नित्या' भी कहा गया है । विमर्शरूपा देवी आकाश, अनिल, सप्तार्चि अग्नि, सलिल एवं पृथ्वी बन जाती है । गुणों में क्रमिक विकास के परिणामस्वरूप वही देवी १५ तिथियों के रूप में १५ रूप धारण कर लेती है । विमर्शरूपा देवी 'षोडशी' कही जाती है । महात्रिपुरसुन्दरी 'चित्रा' में अन्त होने वाले १६ रूप धारण करती है । वह समस्त चक्रों को भी आच्छादित करके स्थित है ।

१६ अक्षरों का यह मन्त्र जो 'षोडशी विद्या' कहलाता है, उसमें स्थित १६ अक्षर १६ नित्याओं के प्रतीक हैं । इसमें अन्तिम एकाक्षरी लक्ष्मीबीज ही वास्तविक नित्या है क्योंकि वह 'परा कला' है । उसी के कारण ही विद्या 'श्रीविद्या' कहलाती है ।

'श्रीचक्र' का वाक्चतुष्टय से अभिन्न सम्बन्ध ही नहीं प्रत्युत उसके साथ तादात्म्य भी है – 'परया पश्यन्त्यापि च मध्यमया स्थूलवर्णरूपिण्या । एताभिरेकपञ्चादशाक्षरा वैखरी जाता' ।

श्रीचक्र समस्त शक्तियों से भी तादात्म्य रखता है – त्रैलोक्यमोहन आदि नव चक्रों में क्रमशः बिन्दु, कला, ज्येष्ठा, रौद्री, वामा, विषघ्नी, दूतरी, सर्वानन्दा ९ शक्तियाँ स्थित हैं । समस्त विश्व श्रीचक्रात्मक है ॥ १५-१७ ॥

इतः परं विद्यादैवतयोरपि न भेदलेशोऽस्ति वेद्यवेदकयोरिति उक्तमेवार्थं दृढयितुं देवतावद्विद्याया अपि विश्वात्मकत्वात्तदुत्तीर्णत्वं व्यक्तमाह –

अज्व्यञ्जनबिन्दुत्रयसमष्टिभेदैर्विभावितकारा ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या ॥ १८ ॥
विद्यापि तादृगात्मा सूक्ष्मा सा त्रिपुरसुन्दरी देवी ।
विद्यावेद्यात्मकयोरत्यन्ताभेदमामनन्त्यार्याः ॥ १९ ॥

(विद्या का तत्त्वात्मक एवं तत्त्वातीत स्वरूप)

तीन बिन्दुओं (द्वारा) एवं व्यष्टि तथा समष्टि दोनों रूपों से स्वरों एवं व्यञ्जनों द्वारा निर्मित विद्या ३६ तत्त्वों से युक्त भी है और उनसे अतीत भी है (और साथ ही) केवल रूप में (अद्वितीय स्थिति में) स्थित है ॥ १८ ॥

(विद्या एवं देवता की एकात्मता)

(पञ्चदशाक्षरात्मक मन्त्र रूप) पञ्चदशी विद्या भी उसी प्रकार की (अर्थात् त्रिपुरावत् चिदानन्दस्वरूपिणी, विश्वात्मिका एवं विश्वोत्तीर्णा) है । वह परिच्छेदशून्य (सूक्ष्म) त्रिपुरा सुन्दरी देवी है । तत्त्वविद्योगियों ने विद्या (पञ्चदशी विद्या) एवं वेद्य (महात्रिपुरसुन्दरी देवी) दोनों में शाश्वतिक सामरस्य (अभेदात्मकता) का प्रतिपादन किया है ॥ १९ ॥

* चिद्वल्ली *

अज्व्यञ्जन इति । अचः स्वराः । व्यञ्जनानि हलः । बिन्दुत्रयं अनुस्वारत्रयम् । एषां समष्टिः समुदायभावः । भेदोऽवयवभावः । तैर्विभावितकारा उद्भावितस्वरूपा । अत एव षट्त्रिंशत्तत्त्वात्माशिवादिक्षित्यन्ततत्त्वविग्रहा तत्त्वातीता च । तत्त्वसङ्घ–समुदायस्थानत्वात्तदुत्तीर्णा च । अत एव केवला स्वव्यतिरिक्तस्याभावादेकाकिनी । एवम्भूता विद्या श्रीपञ्चदशाक्षरीत्यर्थः । अयमत्र विद्याया अवयवविभागः प्रकारः । इह पुण्यानन्दाः हादिविद्यायामत्यन्ताभिमानिनः अस्या एव विद्याया अवयवसमुदाय–भावमाश्रित्य तत्त्वात्मकत्वं तदुत्तीर्णत्वमाचक्षते । अत्र वाग्भवाख्ये प्रथमखण्डे पञ्चस्वराः सप्तव्यञ्जनानि संहत्य द्वादशवर्णाः । कामराजाख्ये द्वितीयखण्डे षट्स्वराः अष्टव्यञ्जनानि सम्भूय चतुर्दशवर्णाः । शक्त्याख्ये तृतीयखण्डे चत्वारः स्वराः षट्व्यञ्जनानि संहत्य दशवर्णाः । सर्वेऽपि सम्भूय षट्त्रिंशदक्षराणि । केचित्तु – प्रथमखण्डे षट्स्वराः षट्व्यञ्जनानि । द्वितीयखण्डे सप्तस्वराः सप्तव्यञ्जनानि । तृतीयखण्डे पञ्चस्वराः पञ्चव्यञ्जनानि इति व्यवह्रियन्ते । अवयवरूपाणि समुदायरूपा विद्या सर्वतत्त्वातिक्रान्ता–वधिवर्तिनी ।

ननु कादिविद्यैव उभयात्मिका सर्वत्र प्रसिद्धा श्रूयते । कामो योनिः कमलेत्यादौ आदिः ब्रह्मा द्वितीया वाणीत्यादौ तत्कथं हादिविद्यैव उभयात्मिकेत्युच्यते । सत्यम् । कादिविद्या तु कामो योनिरित्याद्युपनिषदि प्रथमतः प्रतिपाद्यते । तथापि हादिविद्यापि तत्रैवोद्धृता । कथं षष्ठं सप्तममथ वह्निसारथिमस्या मूलत्रिकमावेशयन्त इत्यादिना । तस्मात्

हादिविद्यापि श्रुतिप्रसिद्धैव । तस्मात्तस्या हादिविद्याया एव उभयात्मकत्वमितीह वर्णितमित्येवावगन्तव्यम् ।

ननु तर्हि कादिविद्याया अपि उभयात्मकत्वाभावे तस्यामुपादेयबुद्धिर्न स्यात् । कुतः देवतावैजात्यात् । तत्कथं हादेरेवोभयात्मकत्वं प्रतिपाद्यते । अत्रोच्यते – न वयं हादिविद्यैव तादृशी न कादिरिति वदामः । किन्तु हादिरेवाभिप्रेता । न कादिरित्येतावन्मात्रमुक्तम् । अन्यत्र तथा व्याख्यानात् । कादेरपि विद्याया उभयात्मकत्वमस्त्येव । इयानेवानयोर्विद्ययोर्भेदः – हादौ प्रथमखण्डे षट् स्वराः षड् व्यञ्जनानि। कादौ प्रथमखण्डे सप्तस्वराः पञ्चव्यञ्जनानि। संहत्य विद्याद्वयेऽपि प्रथमखण्डे द्वादशवर्णत्वं समानम् । तस्मादुभयात्मकत्वमुभयोर्विद्ययोरस्त्येव । तदुभयविद्योपासनाप्रकारस्तु गुरुमुखादेवावगन्तव्यः । देवताया अपि मन्त्रवदुभयात्मकत्वमिति – मन्त्रदैवतयोरैक्यमाह – विद्यापि तादृगात्मेति – विद्या चिदानन्दस्वरूपिणी । तादृगात्मा विश्वात्मिका तदुत्तीर्णा च । सूक्ष्मा परिच्छेत्तुमशक्या । सा सर्ववेदान्तेषु प्रसिद्धा । त्रिपुरसुन्दरी त्रिपुरा च सुन्दरी च त्रिधावस्थितसमस्तवस्तुपूरणात् सर्वयोगिभिरुपास्यत्वेन स्पृहणीयत्वाच्च त्रिपुराशब्दनिर्वचनं च पूर्वमेव प्रपञ्चितम् । देवीस्वच्छप्रकाशरूपविश्वविसर्जनादिक्रीडारूपा परा वाग्विद्यात्मकयोः पञ्चदशाक्षरीत्रिपुरसुन्दर्योरत्यन्ताभेदमामनन्त्यार्याः । सार्वकालिकैक्यमामनन्ति सर्वत्र प्रतिपादयन्ति । आर्याः परमेश्वरप्रमुखाः परमयोगिन इत्यर्थः ।

तथा चिदम्बररहस्ये –

अहं पञ्चाक्षरस्साक्षात् त्वं तु पञ्चदशाक्षरी ।

चतुश्शत्यां च –

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता ।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स सर्वोऽपि महेश्वरः ॥
व्याप्ता पञ्चदशार्णैषा विद्याभूतगुणात्मिका ।
पञ्चभिश्च तथा षड्भिश्चतुर्भिरपि चाक्षरैः ॥
स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी ।
सप्तत्रिंशत्यभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी ॥
तत्त्वातीतस्वरूपा च विद्यैषा भाव्यते सदा ॥ इति ।

रहस्योपनिषदि चेयं विद्या सम्यक् प्रतिपाद्यते । यथा – 'देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्, केयं तनुः किं रूपा कियद्वर्णा किं करोति कि ददाति केन वा सिध्यति किं करवाम' इति देवैः पृष्टः प्रजापतिः प्रत्युत्तरमाह । 'नेदृशो लोकातीतोऽचिन्त्यो वाच्य इत्यादिना सर्वोत्तमत्वं पञ्चदशाक्षर्याः प्रतिपाद्य श्रीपञ्चदशाक्षरीमेव देवेभ्य उपदिशति । यथा तदुदाहरिष्यामः । आदिरादिब्रह्मा द्वितीया वाणी तृतीयो मारः ततो महेन्द्रः इयं भूवाच्यधर्मसन्तानमयमिति द्वितीयमुदाहरिष्यामः । आदिरादिरुद्रः ततः सुधामयम् । ततः प्रजानामीशः ततो हंसः । (ततो भूमिः) ततोऽयमात्मा अयं भुवो नामार्थसन्तानं भोगानन्दमयमिति ।

तृतीयमुदाहरिष्यामः । आदौ जीवनेशस्ततः विश्वकृद्वाता । ततो जगन्माता लक्ष्मीः । ततो पराशक्तिः स्वर्णमेदं नाम चिन्तामणिं भावाभावमयम् इति । अत्रायं प्रथमः पादः इति प्रथमखण्डमुपदिशति । द्वितीयखण्डमुदाहरिष्याम इति द्वितीयखण्डमुपदिशति । तृतीयमुदाहरिष्याम इति तृतीयखण्डञ्चोपदिशति । उपदिश्य सर्वमपि तन्मन्त्रमाहात्म्यमाह — सानेकधा समभवत् । तदेतन्महामनुरिति सैव शब्दतनुरेषा । सर्ववर्णरूपा परमा त्रिपदा त्रयीभावा । त्रिगुणा त्रिवर्गरूपा नित्या निर्मला निरवद्या निष्प्रपञ्चात्मविद्याविभुः । परविद्या इति य एवं वेद विद्वान् भवति । अथाहुर्विद्वांस इति रहो रहस्यमिति । शिवोऽयं शिवोऽयं शिवोऽयमिति । स एव इमानि भूतानि संसृजति रक्षति संहरति । अन्यथाकरोति अणुर्महत्कृशस्थूलं ह्रस्वदीर्घं व्याप्तो व्यापकः श्रीभूतेशो वन्द्यो भवति । य एवं वेद सैव सो भवति इति । अस्याः श्रुतेरर्थः । सम्प्रदायादेवावगन्तव्य इति न लिख्यते ।

रससारसङ्ग्रहेऽपि हादिविद्योद्धार उक्तः । तत्र वचनानि कानिचिल्लिख्यन्ते —

विद्यां तु नवमीं सम्यक् प्रवक्ष्यामि समासतः ।
ललिता या महादेव्या मादनेत्यादितः क्रमात् ॥
मादनः प्राणरूपस्तु विकासः शिव उच्यते ।
सकारस्त्वपरो ज्ञेयः सङ्कोचः शक्तिरूपकः ॥

सङ्कोचः परमा शक्तिर्विकासः परमशिवः । सङ्कोचश्च विकासश्च हंस इत्यक्षरद्वयम् ॥
तयोराधाररूपेण कर्तव्यं बिन्दुमालिनी । प्राणो बिन्दुरिति प्रोक्तस्साहचर्यादपानके ॥
अथोर्धरेन्द्रमाकाशं ज्वलनं तु तयोरधः । मायाबिन्दूर्ध्वगा चैव वाग्भवो नाम कीर्तितः ॥

श्रीहंसपरमेश्वरे —

मा शक्तिस्तु समाख्यातादनस्वीकारकः शिवः ।
स हि मादन इत्युक्तो हकारश्शिवसंज्ञकः ॥
तस्य शक्तिर्यथोर्ध्वत्वे सकारस्स विधीयते ।
शिवो हकार इत्युक्तः सकारश्शक्तिरव्यया ॥
बिन्दुमालिनिकार्णस्य पर्यायं परमेश्वरम् ।
शक्रव्योमानलार्णाय मायाबिन्द्वीश्वरादयः ॥
यथास्थिताश्च तत्तथ्या वाग्भवं सनिलानिलः ॥

द्वावन्यौ कामशक्त्याख्या वर्णौ निष्कलकात्मकौ । इत्यादि द्रष्टव्यम् । श्रीक्रोधभट्टारकोऽपि ।

इत्थं त्रीण्यपि मूलवाग्भवमहाश्रीकामराजस्फुर-
च्छक्त्याख्यानि चतुःश्रुतिप्रकटितान्युत्कृष्टकूटानि ते ।
भूतर्तुश्रुतिसङ्ख्यवर्णविदितान्यारक्तकान्ते शिवे,
यो जानाति स एव सर्वजगतां सृष्टिस्थितिध्वंसकृत् ॥

अत्र श्रुतिः –

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥
इत्यादि श्रुतिरप्यनुसन्धेया ॥ १८–१९ ॥

* सरोजिनी *

अच् = स्वर । 'अ' से प्रारम्भ होने वाले अक्षर । व्यञ्जन – क से प्रारम्भ होने वाले अक्षर । **'बिन्दुत्रय'** = ३ बिन्दु । ये वे हैं जो कि अनुस्वार एवं विसर्ग का निर्माण करते हैं । ये अकेले एवं समूह दोनों रूपों द्वारा विद्या देवी के शरीर का निर्माण करते हैं ।

'विभावितकारा' – उद्भावितस्वरूपा । **'षट्त्रिंशत् तत्त्वात्मा'** = ३६ तत्त्वों से युक्त । आगमिक शैवदर्शन में ३६ तत्त्व माने जाते हैं । त्रिपुरा एवं उनकी श्रीविद्या इन्हीं ३६ तत्त्वों से युक्त है । उनके शरीर की रचना इन्ही ३६ तत्त्वों से हुई है ।

'तत्त्वातीता' – भगवती त्रिपुरा देवी एवं उनकी विद्या ३६ तत्त्वों से अतीत भी है क्योंकि तत्त्वों की जन्मदात्री भी वही है । **'केवला'** = अद्वितीया । चूँकि भगवती त्रिपुरा एवं उनकी आत्मस्वरूपा विद्या से पृथक् किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है, अतः वे केवल या अद्वितीय हैं ।

बीजों का स्वर – व्यञ्जनों से सम्बन्ध –

(१) 'वाग्भव' (प्रथम भाग में) ५ स्वर ७ व्यञ्जन = १२ वर्ण ।
(२) 'कामराज' (द्वितीय भाग में) ६ स्वर ८ व्यञ्जन = १४ वर्ण ।
(३) 'शक्ति' (तृतीय भाग में) ४ स्वर ६ व्यञ्जन = १० वर्ण ।

योग – ३६ वर्ण । ये ३६ वर्ण त्रिपुरादेवी के शरीराङ्ग हैं और इस तरह श्री विद्या के भी शरीरावयव हैं । तात्त्विक दृष्टि से तो विद्या समस्त तत्त्वों से परे है । पुण्यानन्दनाथ हादि क्रम के अनुयायी थे । कादि क्रम भी उभयात्मक है (विश्वात्मक + विश्वातीत । व्यष्टिगत + समष्टिगत)। 'कादि' एवं 'हादि' क्रम में अन्तर यह है कि – १. 'हादि' के प्रथम भाग में – ५ स्वर ७ व्यञ्जन हैं । २. 'कादि' के प्रथम भाग में – ७ स्वर ५ व्यञ्जन हैं ।

अतः दोनों विद्याओं के प्रथम भाग में समान रूप से १२ अक्षर स्थित हैं । अतः दोनों विद्याएँ द्विविध प्रकृति की हैं । 'षोडशदल' में १६ स्वर, 'वृत्तों में समस्त व्यञ्जन तथा 'चतुष्कोण' में य वर्ग के अक्षर अन्तर्निविष्ट हैं ।

भगवती 'विमर्श शक्ति' ही ३६ तत्वों के रूप में परिणत होकर अनन्त विस्तारात्मक प्रपञ्च बन गई है - 'विश्वाकारप्रथा षट्त्रिंशत्तत्वात्मना परिणता विमर्श शक्तिः'[१] विश्वाकार प्रथाधार निजरूप शिवाश्रयम्'[२] और पञ्चदशी विद्या भी इन्हीं ३६ तत्वों से समवेत है ।

---

१. दीपिका (च० स० ५२) ।
२. योगिनी हृदय (चक्र सं० ५२)

३६ तत्व निम्नांकित है – परमशिव; शिव; शक्ति; सदा शिव; ईश्वर; शुद्धविद्या; माया, अविद्या, राग, काल, नियति, जीव, प्रकृति, महत्, अहङ्कार, ५ तन्मात्राएँ, ११ इन्द्रियाँ और ५ महाभूत ॥ १८ ॥

'वेद्य' – जानने योग्य, ज्ञान का विषय । महात्रिपुरसुन्दरी । **'विद्या'** – पञ्चदशाक्षरी विद्या (१५ अक्षरों वाला मन्त्र) । **'तादृगात्मा'** – उसी के समान । मन्त्र के समान देवी त्रिपुरा भी तत्त्वों में व्याप्त हैं अर्थात् तत्त्वात्मक हैं और साथ ही तदुत्तीर्ण (तत्त्वातीत) भी हैं । इस प्रकार देवी के दो रूप हैं – १. विश्वात्मक एवं २. विश्वातीत; अर्थात् तादृगात्मक एवं तदुत्तीर्ण । **'देवी'** स्वरूपतः स्वच्छ प्रकाशरूपा हैं । वही परा वाक् भी हैं । सारांश यह कि देवी मन्त्रात्मक, विश्वात्मक एवं विश्वातीत तीनों रूपों में स्थित हैं । **'सूक्ष्मा'** = परिच्छेदशून्य, अपरिभाषेय । नामरूपविभागानार्ह । अविभाज्य । **'सा'** = वह / शास्त्रों में प्रख्यात । त्रिपुरसुन्दरी देवी = 'त्रिपुरामहोपनिषत्' में कहा गया है –

'तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षणी । अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा ।
अधिष्ठायैनामजरा पुराणी । महत्तरा महिमा देवतानाम् ॥'

जो तीन पुरियों की अधीश्वरी हैं, वही हैं – 'त्रिपुरा' । 'वामकेश्वरतन्त्र' में परासंविद्, परब्रह्म को ही 'त्रिपुरा' कहा गया है –

'त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात् त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः ।
लये त्रिलोक्या अपि पूरकत्वात् प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम ॥
शिवशक्त्यात्मसंज्ञेयं तत्त्वत्रितयपूरणात् ।
त्रिलोकजननी चाथ तेन सा त्रिपुरा स्मृता ॥'

'विद्यावेद्यात्मकयोः ..... आर्याः ।' – विद्यावेद्यात्मकयोः = विद्या एवं वेद्य में । अत्यन्ताभेद = पूर्ण अभिन्नता । आर्याः = परमेश्वरादिक महत्तम योगिगण । **'विद्या'** – 'विद्या पञ्चदशी' 'शक्तिर्द्विधा' । 'विद्याऽविद्येति एषा श्रीभवनसुन्दरी ब्रह्मविद्या ।' (शाक्तदर्शनम्)

'योगिनीहृदय' में कहा गया है कि चक्र एवं मन्त्र दोनों में ऐकात्म्य है – 'इत्थं मन्त्रात्मकं चक्रं देवतायाः परं वपुः ॥'

'लकार' – लकार भूमिवाच्य है । अतः यह श्रीचक्र के अन्तर्गत 'भूपुर' के समतुल्य है ॥ **'सकार'** – 'स' शक्ति एवं चन्द्र का द्योतक है, अतः चन्द्रवाच्य होने से षोडशदल पद्म के समतुल्य है । **'हकार'** – यह आकाश एवं शङ्कर का द्योतक है, अतः श्रीचक्रस्थ अष्टदलपद्म के समतुल्य है । **'ईकार'** – यह मायावाचक शब्द है । माया १४ भुवनों की स्वामिनी होने के कारण श्रीचक्र के समतुल्य है । **'ऐकार'** – यह शब्द विष्णुयोनि होने से भगवान् के विभिन्न अवतारों की ओर भी सङ्केत करता है और श्रीचक्र के बहिर्दशार के समतुल्य है । **'रकार'** – रकार अग्निबीज है । शिव अष्टमूर्ति हैं, अतः श्रीचक्र के 'अन्तर्दशार' की ओर सङ्केत करता है । **'ककार'** अष्टार के समतुल्य है ।

'अत्यन्ताभेदमामनन्त्यार्याः' – **अत्यन्त** = आत्यन्तिक, सार्वकालिक । **आमनन्ति** = प्रतिपादन करते हैं । **आर्याः** = परमेश्वर से लेकर उत्तरवर्ती समस्त योगी । **अभेद** = ऐक्य

अर्थात् १५ अक्षरों में सन्निविष्ट पंचदशाक्षरी विद्या एवं भगवती महात्रिपुरसुन्दरी दोनों मूलतः अभिन्न हैं ।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी का पञ्चदशाक्षरात्मक महामन्त्र निम्न समूहों में विभक्त है –

१. **'वाग्भव कूट'** : प्रथम खण्ड : ५ स्वर, ७ व्यञ्जन
अर्थात् द्वादश वर्ण (१२ वर्ण) ।

२. **'कामराज कूट'** : द्वितीय खण्ड : ६ स्वर, ८ व्यञ्जन
अर्थात् चतुर्दश वर्ण (१४ वर्ण) ।

३. **'शक्ति कूट'** : तृतीय खण्ड : ४ स्वर, ६ व्यञ्जन
अर्थात् दश वर्ण (१० वर्ण) ।

सम्पूर्ण वर्ण = ३६ ।

समस्त जगत् भी ३६ तत्त्वों से निर्मित है – षट्त्रिंशदात्मक है । इस प्रकार पञ्चदशाक्षरी विद्या के ३६ अवयव हैं । विद्या समस्त तत्त्वों को अतिक्रान्त करके भी स्थित है ।

'चिदम्बररहस्य' में पञ्चदशाक्षरी विद्या एवं वेद्य दोनों में अभेदात्मकता का इस प्रकार प्रतिपादन किया गया है – 'अहं पञ्चाक्षरस्साक्षात् त्वं तु पञ्चदशाक्षरी ।' अर्थात् मैं तो साक्षात् १५ वर्ण हूँ और तुम १५ वर्णों से निर्मित पञ्चदशाक्षर मन्त्र हो ।

एक तरफ तो विद्या एवं वेद्य (शक्ति) में कोई भेद नहीं है और दूसरी ओर शक्ति और शक्तिमान् में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि जिस-जिस पदार्थ की जो-जो शक्ति है वह-वह मूलतः सर्वेश्वरी देवी ही है और वह-वह सब कुछ सर्वेश्वर महेश्वर ही है –

'यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता ।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स सर्वोऽपि महेश्वरः' ॥

विद्या (पञ्चदशाक्षरी विद्या) में सभी पञ्चभूत एवं तीनों गुण विद्यमान है । उसमें समस्त स्वर एवं व्यञ्जन भी निहित हैं । स्वर-व्यञ्जनों की दृष्टि से वह ३७ प्रभेदों वाली है –

'व्याप्ता पञ्चदशार्णैषा विद्याभूतगुणात्मिका ।
पञ्चभिश्च तथा षड्भिश्चतुर्भिरपि चाक्षरैः ॥
स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी ।
सप्तत्रिंशत्यभेदेन षट्त्रिंशत्तत्वरूपिणी ।
तत्त्वातीतस्वरूपा च विद्यैषा भाव्यते सदा' ॥

श्रीविद्या-उपासना का निम्न क्रम है –

काली क्रम	सुन्दरी क्रम	तारा क्रम
(कुण्डलिनी क्रम ।	(हंस क्रम ।	(समवरोधिनी क्रम ।
'कादि विद्या'	हादि विद्या ।	सादि विद्या ।
सत्त्वगुणप्रधान)	रजोगुणप्रधान)	तमोगुणप्रधान)

१. 'कादि विद्या' – 'क' से प्रारब्ध । २. 'हादि विद्या' – 'ह' से प्रारब्ध । ३. 'सादि विद्या' - 'स' से प्रारब्ध ।

पञ्चदशाक्षरी मन्त्र – (१) ३ ककार, (४) 'शिव वर्ण', (२) २ हकार, (३) शेष बीजाक्षर 'शक्तिवर्ण', (४) ३ ह्रींकार (शिवशक्त्यात्मक) ॥

३ ककार = शिववर्ण । २ हकार = शिववर्ण ।
३ ह्रींकार = शिवशक्त्यात्मक
शेष वर्ण = शक्तिवर्ण

पञ्चदशाक्षरी मन्त्र – क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं ।

श्रीविद्या (त्रिपुरासिद्धान्तप्रतिपाद्य श्रीविद्या) के १२ उपासक हैं – १. मनु, २. चन्द्र, ३. कुबेर, ४. लोपामुद्रा, ५. मन्मथ, ६. अग्नि, ७. सूर्य, ८. इन्द्र, ९. स्कन्द, १०. शिव, ११. अगस्त्य और १२. क्रोधभट्टारक दुर्वासा । इन सभी १२ उपासकों के नाम पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय थे और इस प्रकार श्रीविद्या के १२ सम्प्रदाय थे, किन्तु अधिकांश लुप्त हो गये । अब मुख्यतः दो सम्प्रदाय ही शेष हैं – १. कामराज-सन्तान, २. लोपामुद्रा-सन्तान[1] । लोपामुद्रा-सन्तान भी विच्छिन्न है । कामराज-सन्तान अविच्छिन्न है । 'कामराजविद्या' ही 'कादिमत' है और लोपामुद्रा विद्या ही 'हादिमत' है । विद्या की ये दो सन्तानें ही आज प्रचलित हैं ।

(१) '**वाग्भव कूट**' में श्रीकण्ठ (अ) से युक्त क्रोधीश (क), कोणत्रय अर्थात् योनि (त्रिभुज ए), लक्ष्मी (ई), अनुत्तर (अ) के साथ मांस (ल) आते हैं ।

(२) '**कामराज कूट**' में शिव (ह्), हंस (स्), ब्रह्मा (क), वियत् (ह्) एवं शुक्र (ल्) आते हैं । अक्षर (अ) के साथ, शिव (ह्) वियत् (ह्) के बिना उपर्युक्त 'कामराज कूट' 'शक्तिकूट' कहा जाता है । प्रत्येक कूट के अन्त में एक-एक हल्लेखा (ह्रीं) जोड़ लेना चाहिए । हल्लेखा के स्वरूप के अन्तर्गत व्योम (ह्), अग्नि (र्), वामलोचना (ई), बिन्दु (०), अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना एवं उन्मनी – ये १२ अङ्ग अन्तर्भूत हैं । बिन्द्वादि ९ के समूह का नाम ही है 'नाद' । इस प्रकार प्रथम में १८ वर्ण, मध्यस्थ में २२ वर्ण एवं अन्तिम में १८ वर्ण—सब मिलाकर ५८ वर्ण होते हैं ।[2]

१. मूलाधार से प्रारम्भ करके प्रलयाग्नि के समान भासित '**प्रथम कूट**' है, जो कि अनाहत चक्र को स्पर्श करता है ।

२. अनाहत चक्र से आगे कोटिसूर्यवत '**द्वितीय कूट**' है; जो कि आज्ञाचक्र का स्पर्श करता है ।

---

१. 'चिद्वल्ली' ।
२. भास्करराय 'वरिवस्यारहस्यम्' ।

३. आज्ञा चक्र से आगे ललाट के मध्य भाग में कोटिचन्द्रवत् प्रकाशित **'तृतीय कूट'** है ॥[१]

१. जगत् एवं पञ्चदशाक्षरी विद्या में भी कोई भेद नहीं है। दोनों में ऐकात्म्य है –

'ब्रह्मणि जगतो जगति च विद्याभेदस्तु सम्प्रदायार्थः ॥'

३ ककार एवं ईकार → 'बिन्दु'।

२ हल्लेखाएँ → सर्वसिद्धिप्रद एवं सर्वरोगहर चक्र।

२ हकार एवं एकार → सर्वरक्षाकर, सर्वार्थसाधक एवं सर्वसौभाग्यदायक चक्र।

२ सकार → सर्वसंक्षोभण, सर्वाशापरिपूरक। लकार → चतुरस्र (त्रैलोक्यमोहन)।

२. माता, विद्या, चक्र, स्वगुरु, साधक, – इन पाँचों में ऐक्य है—'इत्थं माता विद्या चक्रं स्वगुरुः चेति। पञ्चानामपि भेदाभावो'। (व० र०)

३. 'विद्या' भगवती त्रिपुरसुन्दरी एवं कुल कुण्डलिनी से भी अभिन्न है – 'साक्षाद्विद्यैवैषा न ततो भिन्ना जगन्माता'[२] (व० र०)

४. क, ह, ल एवं स = शक्ति। ह्लेखा (ह्रीं) = शिव एवं शक्ति का सामरस्य।

५. **वाग्भव कूट** का अर्थ – सूक्ष्म बुद्धि की विस्तृत व्याप्ति। **कामराज कूट** का अर्थ – शौर्य, धन, स्त्री, कीर्ति का आधिक्य। क = ब्रह्मा। ए = विष्णु। अ = ईश। **प्रथम कूट** = ऋग्वेदात्मक। **द्वितीय कूट** = यजुर्वेदात्मक। **तृतीय कूट** = सामवेदात्मक। ह, स = आनन्द। क = सत्य। ह = अनन्त। ल = ज्ञान।

'विद्या' तृतीय कूट द्वारा – ब्रह्म जीव में तादात्म्य स्थापित करती है।

स, क, ल पद = जीव का वाचक है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति।

शक्तिबीज ह्रीं = ब्रह्म है।

तृतीय कूट का स क ल पद = 'यह सब ब्रह्म है ॥'

ककार, एकार एवं अकार = ब्रह्मा, विष्णु, महेश जो स्रष्टा, पालक एवं संहर्ता हैं। समस्त कलाओं से युक्त ब्रह्म स क ल है – यही तृतीय कूट का अर्थ है।[३] (व० र०)

(क) **वाग्भवकूट** : क ए ई ल ह्रीं = कादि विद्या।

(ख) **कामकूट** : ह स क ह ल ह्रीं = लोपामुद्राविद्या।

(ग) **शक्तिकूट** : स क ल ह्रीं = सादि विद्या।

कतिपय विद्या-प्रकार : १. **'अगस्त्य विद्या'** – ह ह स क ह स क ए ल ह्रीं ह स ह स क ह ल ह्रीं।

---

१. वरिवस्यारहस्यम्।

२. वरिवस्यारहस्यम्।

२. **'नन्दि विद्या'** – ह ह स क ह स क ए ल ह्रीं ह स ह स क ह ल ह्रीं ह स स क ल ह्रीं ।

३. **'प्रभाकरी विद्या'** – क ए ई ल ह्रीं ह स क ए ल ह्रीं ह स ह स क ह ल ह्रीं ह स स क ल ह्रीं ह स स क ल ह्रीं स क ल ह्रीं ।

४. **'मानवी विद्या'** – ह स क ह ल ह्रीं क ए ई ल ह्रीं स क ल ह्रीं [१] ॥ १९ ॥

एवं विद्यादेवतयोरप्यभेदमुक्त्वा चक्रदेवतयोरैक्यं वक्तुं चक्रोत्पत्तिप्रकारमाह –

यासान्तरोहरूपा परा महेशी त्रिभाविताकारा ।
स्पष्टा पश्यन्त्यादि त्रिमातृकात्मा च चक्रतां याता ॥ २० ॥
चक्रस्यापि महेश्या न भेदलेशोऽपि भाव्यते विबुधैः ।
अनयोस्सूक्ष्माकारा परैव सा स्थूलयोश्च कापि भिदा ॥ २१ ॥

(देवी की मातृकाओं एवं चक्रों के साथ एकात्मता)

वही (सर्वातिशायी या सर्वोच्च) महेशी देवी जिसका स्वरूप वितर्कातीत हैं और जो पश्यन्ती आदि मातृकाओं के रूप में व्यक्त होने के कारण त्रिरूपात्मिका हैं और जो चक्र के रूप में परिणत हो गई हैं ॥ २० ॥

(देवी एवं चक्र में अभेदात्मकता)

विद्वज्जन महेशी एवं चक्र में भी रञ्चमात्र भेद स्वीकार नहीं करते । स्वयमेव परा इन दोनों (देवता एवं चक्र) का सूक्ष्म रूप है । इन दोनों में स्थूल रूप से भी कोई भेद नहीं है ॥ २१ ॥

*** चिद्वल्ली ***

अस्यार्थः – यासान्तरोहरूपा अन्तरमन्तःकरणम् । तस्मिन् ऊहः वितर्कः । इत्थमिति परिच्छेदरहितः । तेन सहितं रूपं यस्यास्सा । अयमर्थः – अवाङ्मनसगोचरा सर्ववेदान्तैरपरिच्छेद्या सर्वकारणभूता शिवादिधरण्यन्ततत्त्वसङ्घातावि र्भावभूमिः महेश्वरी परा सर्वोत्कृष्टेत्युच्यते । यजुश्श्रुतिः—'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ।' इति । 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्' । इति । यथागमश्च –

'स्वरूपज्योतिरेवान्तपरावागनपायिनी । यस्यां दृष्टस्वरूपायामधिकारो निवर्तते' ॥ इति ।

लघुभट्टारकश्च – 'सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयते' ॥ इति ।

एवम्भूतलक्षणा सैव पराशक्तिरेव । त्रिभाविता त्रिप्रकारत्वेन भाविता सञ्जातभावना । एतदेवाह – स्पष्टा पश्यन्त्यादित्रिमातृका सेति । स्पष्टा प्रथमोत्पन्नत्वेन विवक्षिता विषयिणी पश्यन्तीत्युच्यते । आदिशब्देन मध्यमा वैखरी । सैव वैखरी नाम अभिलपनरूपिणी

---

१. इसी प्रकार 'कौबेरी विद्या' 'षण्मुखी विद्या' 'परम शिव विद्या' 'वैष्णवी विद्या' 'आदि विद्या शक्ति शिव विद्या' आदि अनेक विद्यायें हैं ।

पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकतान्त्रिकशब्दजालात्मिका शक्तिरुच्यते । तथोक्तं सुभगोदयवासनायाम् –

परा भूजन्मपश्यन्ती वल्ली गुच्छसमुद्भवा ।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ ॥

अस्मदुक्तचिदानन्दवासनायामपि –

विवक्षाव्यवसायोक्तिरूपा एतास्त्रिमातरः ।
पश्यन्त्यादिमहादेव्या स्वरूपा नात्र संशयः ॥ इति ।

एवंरूपा त्रिमातृकात्मिका । सैव चक्रतां याता । त्रिखण्डात्मकचक्रैक्य–मित्यादीत्यर्थः । तदेवाह – चक्रस्य त्रैलोक्यमोहनादिसर्वानन्दमय बैन्दवान्नन–वावरणात्मकस्य सुन्दर्याधिष्ठानभूतस्य महेश्याः तदाधिष्ठान्याः सुन्दर्याश्च भेदलेशः ईषद्भेदोऽपि बुधैर्विशेषज्ञैः न भाव्यते नानुभूयते । कुतः श्रीसुन्दरीस्वरूपत्वात् श्रीचक्रस्य । तथा चोपनिषत् – 'महत्तरा महिमा देवतानां नवयोनिर्नवचक्राणि दीधिरे । नवैव योगाः नवयोगिनीश्च नवानां चक्राणां अधिनाथस्योनानवमुद्रा नवभद्रामहीनां एका आसीत् । प्रथमा सा नवाऽसीत् ।' इत्यादि ।

वामकेश्वरतन्त्रे –

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम् ।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाच्चक्रसम्भवः ॥

एतच्चक्रावतारं तु कथयामि वरानने । यथा सा परमा शक्तिः ॥ इति उपक्रम्य –

'चक्रं कामकलारूपप्रसारपरमार्थः ।' इत्यन्तेन सम्यक् अभेदः प्रतिपादितः ॥

क्रोधभट्टारकोऽपि –

श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोशमथितं संसारचक्रात्मकम् । इत्यादि ।

पुनरपि तादृग्भेदमेतयोर्व्याचष्टे – अनयोस्सूक्ष्माकारेत्यादिना अनयोः सूक्ष्मरूपयोश्चक्र-देवतयोस्सूक्ष्मरूपत्वं नामापरिछिन्नत्वमेव । तत्र श्रीचक्रस्य सूक्ष्मरूपेणावस्थानं बिन्द्वात्मनां बिन्दोः परिच्छिन्नत्वं बैन्दवे परमाकाशे इत्यादिना प्रपञ्चितमेव । देवताया अपि विद्यापि तादृगात्मेत्यादिना अभिहितमेवं तथा स्थूलयोश्चक्रदेवतयोश्च । अत्र स्थूलत्वं नाम चक्रस्य त्रिकोणादिचतुरस्रपर्यन्तविजृम्भणम् । देवताया अपि त्रिपुराम्बिकादित्रिपुराशक्त्यन्तरूपेण मननम् । एवंविधयोश्चक्रदेवतयोः भिदाभेदकरणाभावादित्यर्थः । तत्र हेतुमाह – सा परैवसूक्ष्माकारा इति । सा पूर्वोक्तलक्षणा । परैव आदिशक्तिरेव । सूक्ष्माकारा सूक्ष्मभूतः आकारः स्वरूपं अनयोरित्यर्थः । तथा चोक्तं चतुश्शत्याम् –

स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका । इति ।

अत एव हेतोरीषद्भेदोऽपि विद्वद्भिर्नानुभूयते । एवमेव हि विद्याचिन्तनं सर्वत्र । तथा च श्रुतिः – 'सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति । सर्वं तं परादाद्योन्यत्रात्मनः सर्वं वेद' इति उत्तरत्र ग्रन्थकारोऽपि वक्ति । सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमेत यदेति देवतारूपत्वं चक्रस्य ॥ २०-२१ ॥

* सरोजिनी *

'या' = जो देवी । **'सा'** = वह । (अर्थात् आगमों में प्रसिद्ध वह महात्रिपुरसुन्दरी देवी ।) सैव = वही । **'सान्तरोहरूपा'** = अवाङ्मनसगोचरा ।, (सा + अन्तः + ऊहरूपा) **अन्तर** = अन्तःकरण या मन ॥ **'ऊह'** = वितर्क ॥ **'रूपा'** = स्वरूपवाली । **'परा'** = सर्वोच्च एवं सूक्ष्मतम । ('परा' इसलिए कहा गया है क्योंकि देवी त्रिपुरा शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त समस्त ३६ तत्त्वों की उद्भाविका हैं और सबसे परे एवं सर्वोत्कृष्ट हैं ।) **'त्रिभाविता'** = तीन रूपों में परिकल्पित या परिज्ञातं । **'स्पष्ट'** = अभिव्यक्त । **'पश्यन्त्यादि'** = पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी आदि । 'सुभगोदयवासना' में कहा गया है कि परा देवी पश्यन्ती वाक् के रूप में पृथ्वी (मूलाधार चक्र) में उत्पन्न होने वाली एक **'लता'**; 'मध्यमा वाक्' के रूप में **'पुष्प समूह'** का परिमल एवं वैखरी के रूप में **'अक्षमाला'** (वर्णमाला के अक्षर) हैं । इस प्रकार 'परा देवी सभी को अतिक्रान्त करके सर्वोपरि स्थित हैं । **'त्रिमातृका'** = पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी वाक् के रूप में स्थित । **'चक्रतां याता'** = चक्र बन जाती हैं । 'श्रीचक्र' देवी का निलय है । श्रीचक्र में ९ मण्डल हैं । ये ९ मण्डल तीन खण्डों के तीन भागों में विभक्त हैं । भागत्रय निम्नानुसार हैं – १. सृष्टि, २. स्थित, ३. लय । इनका सम्बन्ध 'पश्यन्ती' 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' से है । 'श्रीचक्र' भगवती परमा शक्ति के आत्मस्फुरण के परिदर्शन की आख्या है । 'श्रीचक्र' = महेशी द्वारा आत्मस्फुरत्ता का अवलोकन । योगिनीहृदय में कहा गया है –

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः ॥' [१]

'सा देवी स्वेच्छया स्वनिष्ठां स्फुरत्तां यदा पश्यति तदा चक्रस्य विश्वाभिन्नस्य त्रिकोणादिचक्रस्य सम्भव उत्पत्तिर्भवति'[२] । माता, विद्या, चक्र, स्वगुरु एवं स्वयं साधक तत्त्वतः एक ही है – यही है कौलिकार्थ[३] । श्रीविद्या एवं चक्र भी अभिन्न हैं[४] ॥ २० ॥

'चक्रस्यापि' = श्रीचक्र का भी । 'वामकेश्वर तन्त्र' के अनुसार ५ शक्ति एवं ४ अग्नियों का संयोग होने पर चक्र का उद्भव होता है । पराशक्ति द्वारा आत्मस्फुरत्ता का सन्दर्शन होने पर चक्रों का जन्म होता है । **'चक्र'** कामकला का रूप हैं । श्रीचक्र के अङ्गभूत नौ चक्र एवं उनकी अधिष्ठात्री ९ देवियाँ निम्नांकित हैं --

---

१. योगिनी हृदय ।
२. भास्कर राय – 'सेतु बंध' ।
३. व० र० ।
४. व० र० – (९६)

देवियों के नाम – त्रिपुरा, त्रिपुरेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुराश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरासिद्धि, त्रिपुराम्बिका, महात्रिपुरसुन्दरी ।

आवरणशक्तियों के नाम – प्रकट, गुप्त, गुप्ततर, सम्प्रदाय, कुलकौल, निगर्भ, रहस्य, अतिरहस्य, परापर रहस्य । श्रीचक्र अपने सूक्ष्म रूप में **'बिन्दु'** है ।

चक्र एवं देवता में इतनी अभिन्नता है कि दोनों को पृथक् ही नहीं किया जा सकता, क्योंकि आदिशक्ति परा देवी ही देवता एवं चक्र के रूप में अभिव्यक्त होती है । सारांश यह है कि 'चक्र' देवता का ही एक रूप है ।

'चक्रस्यापि महेश्या न भेदलेशोऽपि भाव्यते विबुधैः' - 'नित्याषोडशिकार्णव', में भी महाचक्र एवं 'महात्रिपुरसुन्दरी' की एकरूपता का प्रतिपादन किया गया है – 'संस्थितात्र महाचक्रे महात्रिपुरसुन्दरी' (नि० षो०) । 'अत्र पूज्या महादेवी महात्रिपुर-सुन्दरी । परिपूर्णं महाचक्रमजरामरकारकम्' (यो० हृ०) । 'अकुलादिषु पूर्वोक्तस्थानेषु परिचिन्तयेत् । चक्रेश्वरीसमायुक्तं नवचक्रं पुरोदितम्' ॥ (यो० हृ०) ।

१. त्रैलोक्यमोहन चक्र – त्रिपुराधिष्ठित है । २. सर्वशापरिपूरण चक्र – त्रिपुरेशी से अधिष्ठित है । ३. सर्वसंक्षोभण चक्र – त्रिपुरसुन्दरी से अधिष्ठित है । ४. सर्वार्थसाधक चक्र – त्रिपुरा से अधिष्ठित है । ५. सर्वरक्षाकर चक्र – त्रिपुरमालिनी से अधिष्ठित है । ६. सर्वरोगहर चक्र – त्रिपुरासिद्धि से अधिष्ठित है । ७. सर्वसिद्धिप्रद चक्र – त्रिपुराम्बिकाधिष्ठित है । ८. सर्वानन्दमय चक्र – महात्रिपुरसुन्दरी से अधिष्ठित है ।

'सौभाग्यदायक चक्र' – त्रिपुरवासिनी से अधिष्ठित है । 'दीपिका' में कहा गया है कि 'नव चक्रं चक्रेश्वरीसमायुक्तं नवचक्रेश्वर्यधिष्ठितं परिचिन्तयेत् ॥' नवों चक्रों में भगवती निवास करती हैं, इसीलिए इन सभी में उनकी पूजा का विधान है – 'पूजयेच्च क्रमादेता नवचक्रे पुरोदिते' (यो० हृ०) ॥ २१ ॥

इतः परं परापश्यन्त्यादिशक्तिविकासरूपं नवयोन्यात्मकं श्रीचक्रं वक्तुमादौ बैन्दवं सर्वानन्दमयाख्यचक्रं पराशक्तिमयमित्याह –

मध्ये चक्रस्य स्यात् परामयं बिन्दुतत्त्वमेवेदम् ।
उच्छूनं तच्च यदा त्रिकोणरूपेण परिणतं स्पष्टम् ॥ २२ ॥
एतत्पश्यन्त्यादित्रितयनिदानं त्रिबीजरूपं च ।
वामा ज्येष्ठा रौद्री चाम्बिकयानुत्तरांशभूताः स्युः ॥ २३ ॥

(बिन्दु एवं त्रिकोण का स्वरूप)

चक्र का मध्यभाग परा से युक्त है । यह बिन्दुतत्त्व है । जब यह विकासोन्मुख होता है तब यह एक 'त्रिकोण' के रूप में रूपान्तरित एवं अभिव्यक्त होता है ॥ २२ ॥

(शक्तिचक्र के मूल त्रिकोण का स्वरूप)

यह (त्रिकोण) पश्यन्ती एवं अन्य (शक्तियों का उद्गमस्थान एवं त्रिबीजरूप है । 'वामा', 'ज्येष्ठा', 'रौद्री', 'अम्बिका' एवं 'परा' शक्ति (इस शक्तिचक्र का) एक भाग है ॥ २३ ॥

* चिद्वल्ली *

चक्रस्य नवयोन्यात्मकस्य मध्यं मध्येभवं बिन्दुतत्त्वं बिन्दुस्वरूपं पूर्वोक्तमेव व्याख्यातम् । इदं स्वसाक्षात्कृतं परामयमेव पराशक्तिस्वरूपमित्यर्थ: । तथा चोक्तम् – 'प्रसृतं विश्वलहरी स्थानं मातृत्रयात्मकम् । बैन्दवं चक्रम् ।' इति । तत्रैव –

सूक्ष्मरूपं समस्तार्णा व्रतं परमलिङ्गकम् ।
बिन्दुरूपं परानन्दकन्दमित्यपरोदितम् ॥ इति ।

तथा बिन्दुर्विमर्शधर्म: षण्णामेकोऽध्वनां प्राण इति । विरूपाक्षपञ्चाशिकायाम् एतदेव बिन्दुतत्त्वं यदा विकासभावमयते तदा त्रिकोणचक्रमुदेतीत्याह – उच्छूनं तच्च यदा इति । यदाऽस्मिन् काले प्राणिनामदृष्टवशादुच्छूनं तच्च बैन्दवमपि उच्छूनं सञ्जातविकासं भवति तदा त्रिकोणरूपेण अनुत्तरानन्देच्छाशृङ्काररूपेण परिणतं त्रिकोणाकारं भवतीत्यर्थ: । तथा चोक्तं श्रीत्रिंशिकाशास्त्रे –

अनुत्तरानन्दचितिरिच्छा शक्तौ नियोजिता ।
त्रिकोणमिति तत्प्राहुर्विसर्गानन्दसुन्दरम् ॥
मेयमातृप्रमामानप्रसरै: सङ्कुचत्प्रभम् ।
शृङ्काररूपमापन्नमिच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ॥ इति ।

शृङ्काररूपं त्रिकोणमित्यर्थ: । एतत्त्रिकोणं चक्रं पश्यन्त्यादित्रितयनिदानं पश्यन्तीमध्यमावैखरीप्रमुखशक्तित्रयोत्पत्तिकारणमित्यर्थ: । तथा सुभगोदयवासनाया– मपि – 'इच्छादिशक्तित्रितयं पशोस्सत्त्वादिसंज्ञकम् । महत्र्यश्रं भावयामि गुरुवक्त्रादनुत्तरम् ॥' इति ।

प्रत्यभिज्ञायामपि –

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु सत्त्वज्ञानक्रियेच्छया ।
माया तृतीयते एव पशोस्सत्त्वरजस्तम: ॥ इति ।

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तय एव पश्यन्त्यादिशक्तित्रितयतामापन्ना: । तथा हि –

इच्छाशक्तिस्तथा वामा पश्यन्ती वपुषा स्थिता ।
ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता ॥
ऋजुरेखामयी विश्वस्थितौ प्रथितविग्रहा ।
तत्संहृतिदशायां तु बैन्दवं रूपमास्थिता ॥
प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गारवपुरुज्ज्वला ।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा ॥ इति ।

श्रीतन्त्रसद्भावेऽपि –

या सा तु मातृका लोके परतेजस्समन्विता ।
तया व्याप्तमिदं सर्वमाब्रह्मभुवनान्तरम् ॥

'इत्यारभ्य, एकैवं त्रिधा सा तु प्रजायते' इत्यन्तेन पराशक्त्याः पश्यन्त्यादिशक्ति-जालनिरूपणं कृतम् । तत्तत्रैवावधार्यम् । इह तु ग्रन्थविस्तरभयान्न लिख्यते — त्रिबीज-रूपञ्चेति — त्रिबीजानि त्रिखण्डात्मकवाग्भवकामराजशक्तिबीजानि । तेषां बीजानां स्वरूपं यस्य तत् । तथा च श्रुतिः — 'तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षिणीः यत्राकथा अक्षरास्सन्निविष्टाः अधिष्ठायैना अजरा पुराणि महत्तरामहिमादेवानाम् ।' इत्यादिना सर्वमन्त्राविर्भावहेतु-भूतत्रिखण्डात्मकमातृकाधिष्ठानकारणदिव्यशृङ्गारपीठमाह । वामकेश्वरतन्त्रेऽपि —

बीजत्रितययुक्तस्य सकलस्य मनोः पुनः ।
एतानि वाच्यरूपाणि कुलकौलमयानि तु ॥ इति ।

बीजत्रितयशक्तित्रितयलिङ्गत्रितयमयं त्रिकोणं कामकलाक्षररूपमाह — भगवान् परमशिवः ॥ २२-२३ ॥

* सरोजिनी *

'मध्यमचक्रस्य' = चक्र का केन्द्रस्थान अर्थात् बिन्दु तत्त्व । **'चक्र'** = नवयोन्यात्मक श्रीचक्र । 'बिन्दु' सर्वानन्दमय चक्र है । यह स्वरूपतः 'पराशक्ति' माया या पराशक्ति है । बिन्दु तत्त्व के अभिव्यक्त होने पर 'त्रिकोण' निर्मित होता है । **'मध्यमचक्रस्य स्यात् परा तत्त्वमेवेदम्'** = यह (यही) अर्थात् चक्र का केन्द्र (पराशक्ति) ही बिन्दु तत्त्व है । **'उच्छूनम्'** = फूला हुआ (विकासोन्मुख) । **'तच्च'** = और वह । **यदा** = जब । प्राणियों के अदृष्ट के परिणामस्वरूप बैन्दव तत्त्व विकासोन्मुख होता है । **'बैन्दव तत्त्व'** हलाकृति वाले शृङ्गार के रूप में परिणत हो जाता है । यह शृङ्गाररूपात्मक त्रिकोण अनुत्तरानन्दरूप 'अ' एवं इच्छारूप 'अहं' का सङ्गम (मिलनबिन्दु) है । कहा भी गया है कि जब अनुत्तरानन्दस्वरूप चित्शक्ति इच्छाशक्ति के साथ एकीभूत हो जाती है तब 'विसर्गामोद सुन्दर' (सृजनानन्द के सौन्दर्य से युक्त) 'त्रिकोण' आविर्भूत होता है । इसका प्रकाश मातृ, मान, मेय एवं प्रमा के रूप में है ।

'बिन्दु' एवं 'त्रिकोण' में कोई मूल भेद नहीं है । बिन्दु कारण है और त्रिकोण कार्य है, अतः दोनों में अभेद है—''आद्या कारणमन्या कार्यम्'' (कामकला०) । कौलाचार वाले त्रिकोण को ही कुलगृह मानते हैं । 'समयाचार' वाले 'चतुष्कोण' ('बैन्दवस्थान') को 'कुलगृह' मानते हैं—

'त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे
चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति ॥' [१]

यही 'त्रिकोण' मूलाधार है — 'त्रिकोणं चाधारं' [२] । 'सर्वसिद्धिप्रद' (पीत वर्ण का चक्र)[३] तीन कणों से निर्मित होता है । इस त्रिकोण के तीनों कोण — 'कामरूप', 'पूर्णगिरि', एवं 'जालन्धर पीठ' हैं और इनके मध्य में 'औड्याण पीठ' स्थित है ।

---

१. सुभगोदयस्तुति । २. तत्रैव । ३. मातृकाचक्रविवेक ।

तीनों पीठों की अधिष्ठात्री – 'कामेश्वरी', 'वज्रेश्वरी' एवं 'भगमालिनी' हैं, जो कि प्रकृति, महत् एवं अहङ्कार के प्रतिरूप हैं ।

'त्रिकोण चक्र' शक्ति या जीवभाव का प्रतीक है । 'विमर्शशक्ति' सिसृक्षावश 'बिन्दु' रूप में प्रकट होती है—'विचिकीर्षुघनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम्' । इस बिन्दुभाव में समस्त प्रपञ्च एवं ज्ञातृ-ज्ञेय-ज्ञानभाव वटबीजवत् सूक्ष्मभाव से लीन रहता है –

'यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥'

अन्तर्लीन जगत् को व्यक्त करने की इच्छा से यह 'बिन्दु' **'त्रिकोण'** के रूप में परिणत हो जाता है और त्रिकोण को प्रकट करता है – 'कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा' । प्रलयकाल में समस्त जगत् 'परावाक्' रूप शब्दब्रह्म में लीन हो जाता है और सृष्टिकाल में पुनः प्रकट हो जाता है—

'विश्रान्तमात्मनि पराह्वयवाचि सुप्तौ
विश्वं वमत्यथ विबोधपदे विमर्शः ॥'

परावाक् से (मूल कारणभूत बिन्दु) से पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी द्वारा त्रिकोणात्मक शब्दसृष्टि होती है ॥ २२ ॥

एतत् (यह त्रिकोण) । **'पश्यन्त्यादि'** = पश्यन्ती आदि मातृकाएँ । **'वाक् त्रितय'** = तीन का समूह (पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी) । **'निदानम्'** = उद्गमस्थान, स्रोत । 'इच्छा', 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' शक्तियाँ 'पश्यन्ती', 'मध्यमा एवं वैखरी' वाणियों के रूप में रूपान्तरित हो जाती हैं । (वामकेश्वर तन्त्र, नित्याषोडशिकार्णव ३८-४०) महार्थमञ्जरी –

'वैखरिका नाम क्रिया ज्ञानमयी भवति मध्यमा वाक् । इच्छा पुनः पश्यन्ती सूक्ष्मा ॥'

शक्तियों के रूपान्तरण की प्रक्रिया निम्नानुसार है –

१. 'इच्छाशक्ति' का 'पश्यन्ती वाक्' के रूप में,
२. 'ज्ञानशक्ति' का 'ज्येष्ठा वाक्' के रूप में,
३. 'मध्यमावाक्' का 'ऋजु रेखा' एवं विश्वरक्षक के रूप में,
४. 'क्रियाशक्ति' का 'रौद्री' के रूप में तथा
५. 'वैखरी वाक्' का विश्वविग्रह या विश्व के शरीर के रूप में ।

प्रलय या प्रत्यावर्तन यात्रा के समय त्रिपुरा देवी बैन्दव रूप प्राप्त करती हैं । यह 'त्रिकोण' वाग्भव, कामराज एवं शक्ति नामक तीन बीजों का स्वरूप है । यह 'त्रिकोण' तीन बीज, तीन शक्ति एवं तीन लिङ्गों को धारण करने वाला 'कामकला तत्त्व' है । यह 'बिन्दु तत्त्व' जिसके ४ त्रिकोण ऊर्ध्वमुख एवं ५ त्रिकोण निम्नाभिमुख हैं और जो नव त्रिकोणों से युक्त हैं एवं पराभट्टारिकामय है । 'त्रिकोण' पश्यन्ती आदि तीन शक्तियों एवं 'वाग्भव', 'कामराज' तथा 'शक्ति' नामक तीन बीजों का मूल स्रोत है । इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्तियाँ 'पश्यन्ती', 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' के रूप में रूपान्तरित हो जाती हैं (नित्याषोडशिकार्णव) ।

वामकेश्वरागम में कहा गया है कि एक ही 'पराशक्ति' – १. **'इच्छाशक्ति'** के रूप में स्थित रहने पर 'पश्यन्ती' बन जाती है । २. **'ज्ञानशक्ति'** के रूप में स्थित रहने पर 'ज्येष्ठा' बन जाती है । ३. **'मध्यमावाक्' ऋजुरेखा के** रूप में प्रकट होती है । ४. वही **'पराशक्ति'** क्रियाशक्ति के रूप में 'रौद्री' एवं 'वैखरी वाक्' (विश्वविग्रहा) बनकर प्रकट होती है । प्रलय के समय यही पराशक्ति बैन्दवरूप (बिन्दु) धारण करती है । यह दिव्य 'त्रिकोण' **वाग्भव, कामराज** एवं **शक्ति** नामक बीजों का स्वस्वरूप है । बीजत्रय, शक्तित्रय एवं लिङ्गत्रय से समन्वित त्रिकोण अक्षय कामकला तत्त्व है । 'वामा ज्येष्ठा ..... ।' वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका, परा, इच्छा, ज्ञान, क्रिया एवं शान्ता नाम्नी ९ शक्तियाँ पराशक्ति के विभिन्न व्यक्त स्तर हैं । ये ९ शक्तियाँ ही 'श्रीचक्र' के ९ त्रिकोण हैं ।

'परावाक्' – जब 'परमा कला' परमशिव की स्फुरण (सिसृक्षा) देखने के लिए उत्सुक होती है तब वह 'अम्बिका' का रूप धारण कर लेती है और 'परावाक्' कहलाती है । **'वामा'**—जब वही शक्ति विश्वाभिव्यक्ति की ओर उन्मुख होती है तब वह अपनी बीजावस्था में 'वामा' कहलाती है, क्योंकि वह विश्व का वमन करती है – विश्वाभिव्यक्ति करती है । 'विश्वस्य वमनात् वामा' कहकर 'वामा' के इसी लक्षण को द्योतित किया गया है ।

परावाक्, ज्येष्ठा और रौद्री – ये चार शक्तियाँ सभी शक्तियों का कारण हैं । जगत् की स्थिति-संरक्षण रूप क्रिया 'वामाशक्ति' के, संहार 'ज्येष्ठाशक्ति' के एवं पाशहरण एवं अनुग्रह रौद्री क्रियाशक्ति के व्यापार हैं । वामकेश्वर तन्त्र के अनुसार 'प्रकाश' एवं 'विमर्श' दोनों के चार-चार अंश हैं । प्रकाशांशों के नाम हैं – 'अम्बिका', 'वामा', ज्येष्ठा' एवं 'रौद्री' । विमर्शांशों के नाम हैं – 'शान्ता', इच्छा', 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' ।

'अम्बिका' एवं 'शान्ता' की सामरस्यावस्था में शान्ताभावापन्ना पराशक्ति ही 'परावाक्' है । यह आत्मस्फुरण की अवस्था है –

'आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला । अम्बिकारूपमापन्ना परावाक् समुदीरिता ॥'

इस आत्मस्फुरण की अवस्था में समग्र विश्व बीजरूप में (अस्फुट स्वरूप में) आत्मसत्ता में स्थित है । तदुपरान्त 'शान्ता' से 'इच्छा' का उदय होने पर वह अव्यक्त विश्व शक्ति के गर्भ से निकलता है । उस समय 'इच्छाशक्ति' 'वामाशक्ति' से तादात्म्य प्राप्त करती है और 'पश्यन्ती' कहलाती है । तदुपरान्त 'ज्ञानशक्ति' का आविर्भाव होता है । ज्ञानशक्ति 'ज्येष्ठा' से अभिन्न है, मध्यमा वाक् है तथा विश्व-स्थिति का कारण है । 'ज्ञानशक्ति' के पश्चात् 'क्रियाशक्ति' 'रौद्री' के साथ एक होकर 'वैखरी' के नाम से प्रख्यात है ।

अकार का शिर ही 'रौद्री' है, उसका मुख ही 'वामा' है, उसकी बाहु ही 'अम्बिका' है और उसका आयुध ही 'ज्येष्ठा' है –

'अकारस्य शिरो रौद्री वक्त्रं वामा प्रकीर्तिता ।
अम्बिका बाहुरित्युक्ता ज्येष्ठा चैवायुधं स्मृता ॥'

१. परावाक् = अम्बिका ।
२. पश्यन्ती वाक् = वामा = इच्छाशक्ति । शिरः प्रदेश में स्थित ।
३. मध्यमा वाक् = ज्येष्ठा = ज्ञानशक्ति । अधोगता ।
४. वैखरी वाक् = रौद्री = क्रियाशक्ति । (योगिनीहृदय) = पादगता

बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी ।
'वामा' विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता ॥

सृष्टिरूपा 'वामा', स्थितिरूपा 'ज्येष्ठा' (दीपिका)

१. 'परावाक्' – आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला ।
अम्बिका रूपमापन्ना परावाक् समुदीरिता ॥

२. 'पश्यन्ती' – इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता ।

३. मध्यमा – ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता ।

४. वैखरी – प्रत्यावृत्तिक्रमेणैवं शृङ्गारवपुरुज्ज्वला ।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा[१] ॥ (यो० ह०)

मूलाधार से प्रथमोदित भाव ही 'परावाक्' है और 'पश्यन्ती', 'मध्यमा' तथा 'वैखरी' हृदय, बुद्धि एवं मुख के स्थानों से प्रकट एवं पवन-प्रेरित भाव हैं—

'मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु भावः पराख्यः
पश्चात् पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यः ।
वक्त्रे वैखर्यर्थ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्ना
बद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो वर्णसङ्करः' ॥

शङ्कराचार्य – प्रपञ्चसार ॥ २३ ॥

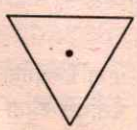
ततः श्रीपराभट्टारिकामयमिदमेव बिन्दुतत्त्वमूर्ध्वाधोमुखनवयोन्यात्मकश्रीचक्र–मभवदित्याह – वामा ज्येष्ठा रौद्री अम्बिका चकारात् पराशक्तिञ्च । इमाः

---

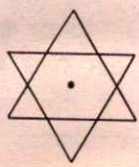
१. शक्ति चक्रों एवं शिव चक्रों के द्वारा ही नवयोन्यात्मक श्रीचक्र का निर्माण होता है –

'चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः ।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ॥' (भैरवयामल)

अधोमुख शक्तित्रिकोण



ऊर्द्ध्वमुख शिवत्रिकोण



पञ्चशक्तयः अनुत्तरांशभूताः अनुत्तरांशाः श्रीचक्रान्तर्गताधोमुखानि पञ्चत्रिकोणानि । तत्त्वेन भूता जाता इत्यर्थः—

इच्छाज्ञानक्रियाशान्ताश्चैताश्चोत्तरावयवाः ।
व्यस्ताव्यस्ततदर्णद्वयमिदमेकादशात्म पश्यन्ती ॥ २४ ॥

(श्रीचक्र के इच्छादिक अन्य अवयवों एवं एकादशात्मक पश्यन्ती का स्वरूप)

इच्छा, ज्ञान, क्रिया एवं शान्ता अन्य (उत्तरवर्ती) भाग हैं । दो अक्षर (अ एवं ह) व्यष्टि एवं समष्टि रूप में गृहीत किये जाने पर ग्यारह रूपों वाली पश्यन्ती का निर्माण करते हैं ॥ २४ ॥

*** चिद्वल्ली ***

इच्छाज्ञानक्रियाशान्ताः चतस्रः शक्तयः उत्तरावयवाः ऊर्ध्वमुखत्रिकोणचतुष्टयस्वरूपाः। अयं भावः—पराविलसनरूपा एताः पश्यन्ती वामा ज्येष्ठा रौद्री अम्बिका । तथोत्तरावयवाश्चेति इच्छाज्ञानक्रियाशान्ताश्चैताः । एतच्छक्तिनवकमयं नवत्रिकोणचक्रमिति। एतच्चतुश्शत्याम् –

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला ।

इत्यारभ्य 'वैखरी विश्वविग्रहा' इत्यन्तेन सम्यक् निरूपितम् । तत एव अवधार्यम् । व्यस्ताव्यस्ततदर्णद्वयम् । व्यस्तं व्यष्टिरूपम् । अव्यस्तं समष्टिरूपम् । सर्वोपनिषदत्रासिद्धं तद्वर्णद्वयं सन्दंशन्यायेन अखिलाक्षरात्मकमातृमन्त्रमयप्रकाशविमर्शरूपपूर्णाहन्ताभावगर्भकामकलाक्षरात्मकबिन्दुतत्त्वमित्यर्थः । अत्रेदं पूर्णाहन्तामयं परब्रह्मपत्नीविशिष्टमेव सकलकार्यनिर्वाहकमिति सर्वागमसिद्धम् । तथा बृहदारण्यके – 'आत्मैवेदमग्र आसीत् । पुरुषविधः सोऽन्वीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत्सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत् । ततोऽहं नामाभवत् । तस्मादप्येतर्ह्यामन्त्रितोऽहमयमित्येवाग्र उक्त्वाऽथान्यन्नाम प्रब्रूत' इत्युपक्रम्य पूर्णाहन्तामयं परब्रह्मस्वरूपं दिव्यदम्पतीरूपत्वमास्थाय सर्वतत्त्वनिर्मातृ विद्योतत इति उपरितेन वाक्येन समाप्यते । तथा हि—'स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् स हेतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत् । ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्' इत्यादि । तथा तत्रैवान्यत्र – 'आत्मैवेदमग्र आसीत् । एक एव सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेय । अथ वित्तं मे स्यात् अथ कर्म कुर्वीयेत्येतावान् वै काम इत्यादौ सपत्नीकमेव ब्रह्म प्रतीयते' इति । एवम्भूतं तद्वर्णद्वयम् एकादशात्मा संहत्य विचार्यमाणे एकादशविधं भवतीति अर्थः । परादिशान्तान्तं शक्तिदशकं व्यष्टिरूपं सर्वसमष्टिरूपत्वेन चैकम् । तेन चैकादशात्मकमिदं बिन्दुतत्त्वमेव पश्यन्ती शक्तिकारणम् । सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति शान्त उपासीत इतिवत् कार्यकारणयोरभेदव्यपदेशः ॥ २४ ॥

* सरोजिनी *

इच्छा.....अवयवाः । इच्छा, ज्ञान, क्रिया एवं शान्ता शक्तियाँ श्रीचक्र के अवयव हैं । **व्यस्ताव्यस्तम्** = व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से । **'व्यस्त'** = व्यष्टिरूप । **'अव्यस्त'** = समष्टिरूप । **'तदर्णद्वयम्'** = अक्षरद्वय (अ एवं ह) । 'अ' एवं 'ह' जो कि वर्णमाला के प्रथम एवं अन्तिम अक्षर हैं, 'पूर्णोऽहम्भाव' के प्रतीक हैं एवं **'प्रकाश'** तथा **'विमर्श'** की सामरस्यावस्था हैं, शाश्वत 'कामकला' या 'बिन्दुतत्त्व' हैं । परब्रह्म अपने पूर्ण अहम्भाव के रूप में अपनी पत्नी (शक्ति) के साथ संयुक्त रूप में अवस्थित है और सर्वकर्ता है । 'परब्रह्म' पूर्णपराहन्तामय है और दिव्यदम्पति की सामरस्यावस्था है ।

आचार्य सोमानन्दनाथ ने 'शिवदृष्टि' में 'पश्यन्ती' को 'ज्ञानशक्तिरूप', 'सदाशिव रूप' एवं वैयाकरणों की दृष्टि में 'परावाक्' के रूप में उल्लिखित किया है –

'अथास्माकं ज्ञानशक्तिर्या सदाशिवरूपता ।
वैयाकरणसाधूनां पश्यन्ती सा परा स्थितिः'[१] ॥'

यह 'परब्रह्म' है, 'परावाक्' है, अनादि एवं अक्षय है—

'इत्याहुस्ते परं ब्रह्म यदनादि तथाक्षयम् ।
तदक्षरं शब्दरूपं सा पश्यन्ती पराहि वाक्'[२] ॥'

'श्रीचक्र' का प्रथम भाग – वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका एवं परा शक्ति हैं तथा दूसरा भाग – 'इच्छा', 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' है । ये मिलाकर नौ अङ्ग हैं । ये ही श्रीचक्र के ९ त्रिकोण हैं ।

१. 'परमा कला' आत्मस्फुरण का दर्शन करने पर एवं अम्बिका रूप धारण करने पर 'परावाक्' कही जाती है

'आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला । अम्बिका रूपमापन्ना परावाक् समुदीरिता'[३] ॥

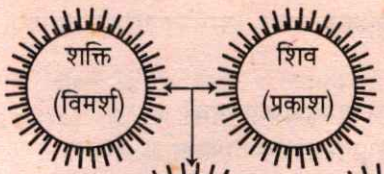
२. पश्यन्ती – ''इच्छाशक्तिस्तदा सेयं 'पश्यन्ती' वपुषा स्थिता'' ।

३. ''ज्ञान शक्तिस्तथा ज्येष्ठा 'मध्यमा' वागुदीरिता''[४] ॥
'ऋजुरेखामयी अत्र शृङ्गाटाग्ररेखाकारा मध्यमा वागुदीरिता'[५] ॥

४. 'क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा'[६] ॥ 'अथ शब्दवृत्तिश्चतुर्धा – सूक्ष्मा, पश्यन्ती, मध्यमा वैखरी चेति । तत्र ज्ञानैकाश्रया अर्थसामान्यप्रकाशिका वाणी सूक्ष्मा । मयूराण्डरसवदविभक्तवर्णार्थविशेषबोधना क्षमा वाणी पश्यन्ती[७] ॥ मयूराण्डरसो यद्वन्निर्विशेषार्थधारिका । पश्यन्ती वागियं ज्ञेया तृतीया शिवशासने'[८] ॥ वैखर्याः कारणं मध्या पश्यन्ती मध्यमां प्रति'[९] ॥ २४ ॥

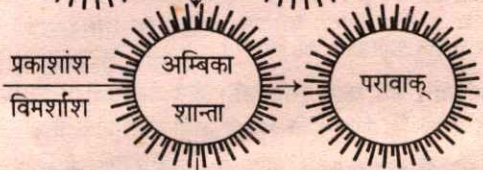
---

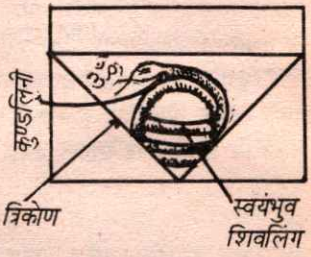
१. शिवदृष्टि (२।१) ।
२. शिवदृष्टि ।
३. योगिनीहृदय ।
४. योगिनीहृदय ।
५. दीपिका ।
६. दीपिका ।
७. शैवपरिभाषा ।
८. पौ० बिन्दु० ।
९. पौ० बिन्दु० ।

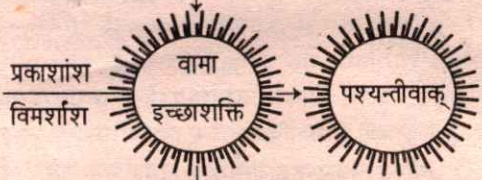


(१) प्रकाशांश और विमर्शांश का सामरस्य वाणी चतुष्टय (परा पश्यन्ती मध्यमा बैखरी)

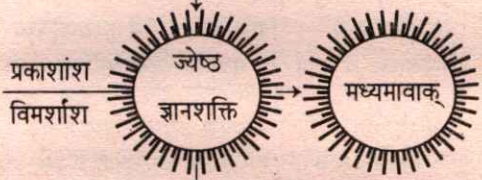
(२) मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी का फूत्कार → ॐ मूलाधार चक्र में ॐ का महानाद →







ॐ परा→पश्यंती→मध्यमा→ वैखरी वाक् ।



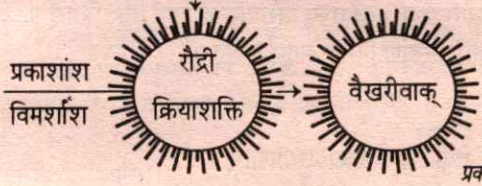
सामरस्य-विधान

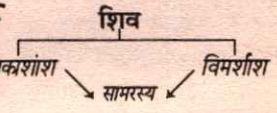
(१) अम्बिका + शान्ता → 'परा वाक्'

(२) वामा + इच्छा का सामरस्य → 'पश्यन्ती वाक्'

(३) ज्येष्ठा + ज्ञानशक्ति का सामरस्य → 'मध्यमा वाक्'

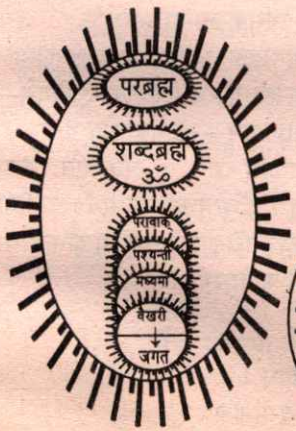
(४) रौद्री + क्रियाशक्ति का सामरस्य → 'बैखरी वाक्'

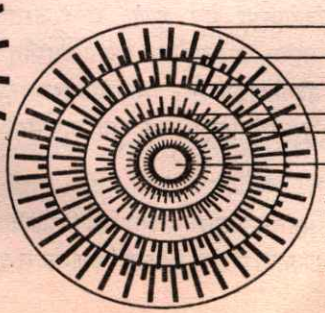




(१) अम्बिका + (१) शान्ता → 'परा वाक्'
(२) वामा + (२) इच्छाशक्ति → 'पश्यन्ती वाक्'
(३) ज्येष्ठा + (३) ज्ञानशक्ति → 'मध्यमा वाक्'
(४) रौद्री + (४) क्रियाशक्ति → 'बैखरी वाक्'

वाणी चतुष्टय





वैखरीवाक्
मध्यमावाक्
पश्यतीवाक्
परावाक्
शब्दब्रह्म
निःशब्द परब्रह्म

निःशब्दवाक्→शब्दब्रह्म→ परावाक्→पश्यन्तीवाक्→ मध्यमावाक्→वैखरीवाक्

इतः परं वसुकोणदशारादिचक्रसृष्टिप्रकारमभिधातुं परमप्रकृतत्रिकोणचक्रक्रमं निगमयति –

एवं कामकलात्मा त्रिबिन्दुतत्त्वस्वरूपवर्णमयी ।
सेयं त्रिकोणरूपं याता त्रिगुणस्वरूपिणी माता ॥ २५ ॥

(त्रिबिन्द्वात्मक संयुक्त कामकला का स्वरूप)

इस प्रकार संयुक्त काम (परमशिव) एवं कला (विमर्श) तीन अक्षर हैं, जिनका अपना स्वरूप तीन बिन्दु हैं । वही यह है जो कि गुणत्रय के रूप मे अभिव्यक्ति पाती है और जिसने कि त्रिकोण का स्वरूप धारण किया है ॥ २५ ॥

*** चिद्वल्ली ***

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण कामकलात्मा कामः प्रकाशैकस्वभावः अनुत्तराक्षरात्मा परमशिवः। कला त्वखिलवर्णान्त्यपरमहंसाक्षरमयी विमर्शविग्रहः । एतदुभयात्मकत्वं नाम स्वाभाविकपरिपूर्णाहम्भावशालित्वम् । एतच्च बिन्दुरहङ्कारात्मेत्यत्र स्पष्टमभ्यधायि । एवंरूपा कामकलात्मा त्रिबिन्दुतत्त्वस्वरूपवर्णमयी । त्रिबिन्दवः पूर्वोक्तरक्तशुक्ल-मिश्रात्मानः । तेषां स्वभावः तत्त्वम् । तत्स्वरूपा ये वर्णाः वाग्भवादयः तदात्मिकाम्। तथा रहस्याम्नाये –

बिन्दुत्रयात्मकं स्वात्मशृङ्गाटं विद्धि सुन्दरम् । मिश्रं शुक्लं च रक्तं च पुराणं प्रणवात्मकम् ॥
रेखात्रयावगन्तव्यसंवित्सान्द्रशिवात्मकम् । रक्तमस्य निराधारमवशिष्टं ततः प्रियम् ॥
तयोर्मिश्रं तु संयोगे निर्वाणं निर्मलं पदम् ॥ इति ।

चतुश्शत्याम् –

कूटत्रयात्मिकां देवीं समष्टिव्यष्टिरूपिणीम् ।
आद्यां शक्तिं भावयन्तो भावार्थमिति मन्यते ॥ इति ।

सेयं त्रिकोणरूपमापन्ना चिदानन्दघनपरमार्थसकलाम्नायसारभूता इयं विश्वाहम्भावनाशालिभिः महायोगिवर्यैरात्मसाक्षित्वेनानुभूयमाना त्रिगुणा इच्छाज्ञानक्रिया-मायाशक्तिमया सत्त्वरजस्तमांसि तत्त्वरूपिणी । तदवष्टम्भेन हि जगत्सृष्ट्यादि विधत्ते । गुणाश्च इच्छाज्ञानक्रियामायाशक्तिमया एव । तथा प्रत्यभिज्ञायाम्—'स्वाङ्गरूपेषु तत्त्वम् ।' इत्यादि । इच्छाज्ञानक्रियामया एव गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि इति । अत एव माता सर्वजगन्निर्मात्री एका आत्मा वा इदम् एक एवाग्र आसीत् इति श्रुत्युक्तरीत्या सर्वतत्त्वातीता परा शक्तिः। त्रिकोणरूपं अनुत्तरानन्देच्छासङ्घट्टात्रिकोणमित्यभियुक्तोक्तरीत्या सर्वसिद्धिप्रदाय- कातिरहस्यभूतत्रिकोणचक्रं याता जगन्मयी जातेत्यर्थः ।

तथा वचनम् –

अनुत्तरानन्दचित्तेरिच्छाशक्तौ नियोजितम् ।
त्रिकोणमिति तत्प्राहुर्विसर्गामोदसुन्दरम् ॥ २५ ॥

* सरोजिनी *

एवम् = इस प्रकार । **'कामकलात्मा'** = 'काम'= परमशिवः (प्रकाशैकस्वभाव परमशिव) तथा अनुत्तराक्षरात्मा, अनुत्तर 'अ' । **'कला'** = विमर्श । अन्तिमाक्षर 'ह' । 'कामकलात्मा' उभयात्मकत्व या स्वभावद्वय या लक्षणद्वय को द्योतित करता है । इस प्रकार 'कामकलात्मा' स्वाभाविक परिपूर्णोऽहंभावशालित्व को द्योतित करता है । 'कामकलात्मा' तीन अक्षर हैं, जिनका स्वरूप तीन बिन्दु हैं अर्थात् 'त्रिबिन्दुतत्त्वस्वरूपवर्णमयी' है । ये बिन्दुत्रय निम्न हैं – १. रक्त, २. श्वेत, ३. मिश्र । उपर्युक्त अक्षरत्रय अर्थात् वाग्भव एवं अन्य बीज ही तीन बिन्दुओं के रूप हैं । **'कामकलात्मा'** = परस्पर संयुक्त काम एवं कला रहस्याम्नाय में कहा गया है कि कमनीय 'शृङ्गाट' जो कि देवी का निज स्वरूप है, बिन्दुत्रय से निर्मित है । ये बिन्दुत्रय 'रक्त', 'मिश्र' एवं 'श्वेत' हैं । यह प्रणवस्वरूप है । इसे रेखात्रय द्वारा जाना जा सकता है । यह विशुद्ध बोधस्वरूप है, संविन्मात्र है और शिवस्वरूप है । इन तीनों बिन्दुओं में 'रक्तबिन्दु' निराधार (स्वावलम्बी) है । 'श्वेतबिन्दु' इसका प्रेमास्पद है और इन दोनों का योग 'मिश्रबिन्दु' है । यह एकीकरण (संयोग) की अवस्था ही शुद्धावस्था है, जो कि 'निर्वाण' है । **'सेयम्'** = सा + इयम् । **'सा'** = चिदानन्दघनरसपरमार्था । वह परम सत्य, सकलसारभूता शक्तितत्त्व । **'इयम्'** = यह । 'शक्तितत्त्व' इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपा है । ये सत्त्व, रज एवं तम गुणों के रूप में परिणत हो जाती हैं । इन्हीं तीन गुणों के माध्यम से शक्ति सृष्टि आदि कार्यों को निष्पादित करती हैं । **'त्रिगुणस्वरूपिणी'** = तीन गुणों के स्वरूप वाली । **'माता'** = सृष्टिविधायिनी जगज्जननी ।

'अ' काम का एवं 'ह' कला का प्रतीक है – 'अहं' । **'कामकलात्मा'** – पूर्णाहन्ता की अनुभूति का ज्ञापक है । **'कामकलात्मा'** तीन अक्षर हैं, जिनका स्वस्वरूप बिन्दुत्रय है । ये बिन्दु रक्त, श्वेत एवं मिश्र हैं । अक्षरत्रय (वाग्भव आदि बीज) तीन बिन्दुओं के स्वरूप हैं । **'सा'** = आत्मा के रूप में अनुभूयमाना, इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपा शक्ति । **'माता'** – (सत्त्व, रज एवं तमो गुण) के द्वारा विश्वसृजनकारिणी तथा प्रकृति से अतीत जगन्माता ।

'त्रिकोणरूपं याता' – उसने त्रिकोण का स्वरूप ग्रहण किया, इसे 'सर्वसिद्धिप्रदायक चक्र' कहते हैं । महेशी एवं चक्र में कोई भेद नहीं है । देवता एवं चक्र दोनों का परस्वरूप 'परा' है ।

सदाशिवाख्य तुरीय बिन्दु से मध्यत्रिकोण चक्र की उत्पत्ति हुई –

'बैन्दवं चक्रमेतस्य त्रिरूपत्वं पुनर्भवेत्'[१] ।

यही त्रिकोण चक्र ९ चक्रों के रूप में परिणत हो जाता है[२] ॥ २५ ॥

एका परा तदन्या, वामादिव्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मा ।
तेन नवात्मा जाता, माता सा मध्यमाभिधानाभ्याम् ॥ २६ ॥

---

१. योगिनीहृदय (च० सं० १२)। २. दीपिका (च० सं० १४) ।

अनन्तरं मध्यमाया अपि प्रकारान्तरेण नवात्मकत्वं ब्रूते –

द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृतिस्थिता सूक्ष्मा ।
नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा च भूतलिप्याख्या ॥ २७ ॥

('पश्यन्ती' एवं 'मध्यमा' के स्वरूप का विवेचन)

वह जो परा के अव्यवहित उत्तरवर्ती है, सृष्टिरूपात्मिका है और आदि (वामा से लेकर शान्ता पर्यन्त) व्यष्टिभूता शक्तियों की जन्मदात्री है – 'पश्यन्ती' है । इसके कारण वह नवरूपात्मिका बन गई । वह माता 'मध्यमा' दो प्रकार के नामों से दो प्रकार की – स्थूल एवं सूक्ष्म कही गई है । सूक्ष्मरूप में वह नौ नादों वाली और स्थूल रूप में अक्षरों के नौ वर्गों वाली तथा भूतलिपि अभिधान वाली है ॥ २६ – २७ ॥

*** चिद्वल्ली ***

एकापरेति – इतः पराविलसनरूपायाः पश्यन्त्याद्या अपि नवयोनिचक्रात्मना नवात्मकत्वमाह । तदन्या वामा व्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मा तेन नवात्मा जातेति तदन्या परा विकासभूता पश्यन्ती वामादिव्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मावामादिशान्तान्तशक्तिनवकमयी यतस्तेन कारणेन सा माता पश्यन्ती नाम जननी । नवात्मा वामादिशान्तान्तशक्ति–कदम्बकाविर्भावकारणनवयोनिचक्रात्मिका जाता प्रादुर्भूतेत्यर्थः । अत्र वामादि शक्तीनां लक्षणं प्रसङ्गात् किञ्चिदुच्यते । तत्र वामा नाम स्वान्तःस्थितप्रपञ्चवमनाद्विश्व-जनयित्रीत्यभिधीयते । ज्येष्ठा सर्वमङ्गलकारिणी । रौद्री सर्वरोगविद्राविणी । अम्बिका समस्तेष्टप्रदा शक्तिः ।

तथागमश्च –

वामा विश्वस्य वमनात् ज्येष्ठा शिवमयी यतः ।
द्रावयित्री रुजं रौद्री दोग्ध्री चाखिलकर्मणाम् ॥ इति ।

अम्बिका च सा स्फुरत्ता महासत्तेति । प्रत्यभिज्ञास्थित्या सर्वातिशायी परिपूर्णरूपस्वात्मस्फुरणावलोकनचतुरा । तथा चतुश्शत्याम्—'आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला । अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता ।' इच्छाज्ञानक्रियाशक्तयस्तु पश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपाः इति प्रपञ्चिताः । चतुश्शत्याम् –

इच्छाशक्तिस्तथा ज्ञेया पश्यन्ती वपुषा स्थिता । इत्यादिना ।

शान्ता च निष्कलं निष्क्रियं शान्तमित्यादिश्रुत्या निरङ्कुशा चिन्मयी शक्तिः । तथा व्याचष्टे भगवानमृतानन्दनाथः – निरंशौ नादबिन्दू चेत्यत्र निरङ्कुशा शान्ता शक्तिः शान्ताया निरंशत्वं चिद्रूपत्वादिति । मध्यमाभिधानाभ्याम् – मध्यमा परापश्यन्त्योः समरसावस्था अभिधानाभ्यां नामधेयाभ्याम् ॥ २६ ॥

सा अन्तर्मुखपरमयोगिभिः दृश्या मध्यमा नाम शक्तिर्द्विविधा द्विप्रकारा । स्थूलसूक्ष्मभावात् । तत्र सूक्ष्मा समाधिस्थलेन अनुभूयमाना । स्थूलाकृत्या पण्डितपामरा-

भिलपनयोग्यवर्णावलया स्थिता सर्वदा वर्तमाना । एतदेव व्याचष्टे – सूक्ष्मा नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा इति ।

अयमर्थः – मित्रावरुणसदनात् वायुनिरोधनेन स्वाधिष्ठानादिकमलभेदपुरस्सरं द्वादशान्तारविन्दासनस्थपरमशिवाङ्कमुपसर्पन्ती महामातृका कुण्डलिनी बहुविधनादात्मिका या अनुभूयते समाधिसमधिगतसर्वार्थैः महामाहेश्वरैः स्वात्मत्वेन मन्यते । नवनादमयीति परमहंसोपनिषत् । यथा – 'अथ हंसपरमहंसनिर्णयं व्याख्यास्यामः । ब्रह्मचारिणे दान्ताय गुरुभक्ताय हंसहंसेत्यादिना परमहंसं परं ब्रह्म निर्दिश्य पुनरपि तदुपासनं विशिनष्टि' – गुदमवष्टभ्याधाराद्वायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं प्रदक्षिणीकृत्य मणिपूरकं गत्वाऽनाहतमतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणान्निरुध्य आज्ञामनुधावत् ब्रह्मरन्ध्रं ध्यायन् इत्यादि ब्रह्मरन्ध्रे ध्यानविशेषमुक्त्वा पुनरपि मूलाधारात् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं व्यापिन्या मूलकुण्डलिन्याः स्वरूपं नादात्मकमिति व्याचष्टेयदा हंसो विलीनो भवति यदा नादमाधारात् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं शुद्धस्फटिकसङ्काशं स वै ब्रह्म परमात्मेत्युच्यते इत्यादि तदुपासनाङ्गजालानि उपन्यस्यन्ते । नादं विभजते । स च दशविधो- पजायते । चिणीति प्रथमः । चिणि चिणीति द्वितीयः । घण्टानादस्तृतीयः । शङ्खनादश्चतुर्थः। पञ्चमस्तन्त्रीनादः । षष्ठस्तालनादः । सप्तमो वेणुनादः । अष्टमो भेरीनादः । नवमो मृदङ्गनादः। दशमो मेघनादः । नवमं परित्यज्य दशममेवाभ्यसेत् । तस्मिन् विलीने मनसि गते सङ्कल्पे विकल्पे च दग्धे सदाशिवोऽहमिति परमहंसोपनिषत् । मूलाधारे दग्धे सदाशिवोऽहमिति परमहंसोपनिषदः मूलाधारे महेश्वरीत्यादिना च न वेदविधिगोचर– मित्यन्तं नववर्गात्मा अकचटतपयशलात्मिका स्थूला सर्वव्यवहारविषयिणीत्युच्यते ।

यथा श्रीतन्त्रसद्भावे –

या सा तु मातृका लोके परतेजस्समन्विता । तया व्याप्तमिदं सर्वमाब्रह्मभुवनान्तरम् ॥
तत्रस्थश्च यथा नादो व्यापितश्च सुरार्चिते । अवर्णस्थो यथा वर्णस्थितः सर्वगतः प्रिये ॥
तथाहं कथयिष्यामि निर्णयार्थं स्फुटं तव ॥

इत्यारभ्य –

या सा शक्तिः परा सूक्ष्मा निराकारेति कीर्तिता ।
हृद्बिन्दुं वेष्टयित्वा तु सुषुप्ता भुजगाकृतिः ॥
तत्र सुप्तो महायोगी न किञ्चिन्मन्यते यमी ।
चन्द्रार्कानिलनक्षत्रैर्भुवनानि चतुर्दश ॥
व्याप्तोदरे तु सा देवी विषवन्मूढतां गता ।
प्रबुद्धा सा निनादेन परेण ज्ञानरूपिणी ॥
मथिता चोदरस्थेन बन्धनादपि वह्निना ।
तावद्वै भ्रमयोगेन मन्थनं शक्तिविग्रहे ॥
भेदात्तु प्रथमोत्पन्नात् बिन्दुर्नादत्वमीयते ।
समुत्थिता यथा तेन कालसूक्ष्मा तु कुण्डली ॥
चतुष्कलमयो बिन्दुः शक्तेश्चोत्तरगः प्रभुः ।

मध्यमन्थनयोगेन ऋजुत्वं जायते प्रिये ॥
ज्येष्ठा शक्तिः स्मृता सा तु बिन्दुद्वयसुमध्यमा ॥
बिन्दुनादत्वमायाता रेखयाऽमृतकुण्डली ॥
लाकिनी नाम सा ज्ञेया उभौ बिन्दू यथागतौ ।
त्रिपदा सा समाख्याता रौद्री नाम्ना तु गीयते ॥
रोधिनी सा समुद्दिष्टा मोक्षमार्गनिरोधनात् ।
शशाङ्कशकलाकारा अम्बिका चार्धचन्द्रिका ॥
एकैवेत्थं पराशक्तिः त्रिधा सा तु प्रजायते ।
आभ्यो युक्ता विविक्ताभ्यः सञ्जातो नववर्गकः ॥
नवधा च स्मृता सा तु नववर्गोपलक्षिता ॥ इति ।

अत्र कश्चित्सूक्ष्मस्थूलाकृतिस्थिरेति पाठं कल्पयित्वा सूक्ष्मा स्थिरा स्थूला नववर्ग-मयीत्याह । एवं च सति नववर्गेति पदानन्वयः सम्प्रदायनिरोधश्च । स तु स्वबुद्ध्या सम्प्रदायमजानान एवमर्थमाह । तस्मादस्मदुक्तार्थस्य तदुक्तार्थस्य चौचित्यमर्थविशेषज्ञै-र्विद्वद्भिरेव ज्ञातव्यमित्यलम् । भूतलिप्याख्या भूताश्चैते लिपयश्च । अत्र लिपीनां भूतत्त्वं नाम विशेषविशेषविन्यासाभिगम्यत्वम् । तच्च कल्पनामात्रमेव । अक्षराणां तेजोरूपशक्त्या-त्मकत्वात् । तथा च आगमः — या सा तु मातृका लोके परतेजस्समन्विता । इति ।

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये । इत्यादि तेषामाख्या अभिधा यस्यास्सा तत्र भ्रान्तिलिप्येति कश्चिद्याचष्टे । तत्तु छन्दोभङ्गादनुपपन्नमित्यनादरणीयम् ॥ २७ ॥

* सरोजिनी *

'एका' = अद्वैतरूपा, अद्वितीया । **'परा'** = 'परावाक्' । **'तदन्या'** = जो उसके बाद स्थित है । अर्थात् 'पश्यन्ती' जो कि परा की अभिव्यक्ति है । **'वामादिव्यष्टिमातृ'** — 'पश्यन्ती' वामा से शान्ता तक की समस्त शक्तियों की जननी है । इसी कारण माता नवात्मा है । वह नौ त्रिकोणों से निर्मित चक्र बन जाती है । **'वामा'** = वामा को वामा इसलिए कहते हैं क्योंकि वह विश्व को वमन करने वाली, विश्व — जनयित्री है । 'वामा' 'शृङ्गाट' में स्थित प्रपञ्च का वमन करती है (जन्म देती है), अतः इसे 'वामा' कहा जाता है । **'ज्येष्ठा'** सर्वोपकारिका शक्ति है । **'रौद्री'** = यह वह शक्ति है जो कि सभी रोगों का विनाश करती है । **'अम्बिका'** = यह वह शक्ति है जो कि समस्त अभीष्ट प्रदान करती है । **'अम्बिका'** (प्रत्यभिज्ञा के अनुसार) सृजनोन्मुख महासत्ता है, अतः वह सभी को अतिक्रान्त करने वाली शक्ति है और 'परिपूर्णस्वरूपस्वात्मास्फूरणावलोकनचतुरा' है । वामकेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि जब 'परमा कला' स्फुरणोन्मुख होती है तब 'अम्बिका' बन जाती है और 'परावाक्' कहलाती है । 'इच्छा', 'ज्ञान' एवं 'क्रिया' शक्तियाँ 'पश्यन्ती', 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' बन जाती हैं । 'शान्ता' चिन्मयी शक्ति है, चैतन्यस्वरूपा है और सर्वव्यापिका है ।

'नवात्मा' = नवरूपात्मिका । **'माता'** = विश्वजनयित्री । **'मध्यमाभिधानाभ्यां'** = मध्यमा दो नामों से ।

'मध्यमा' 'परा' एवं 'पश्यन्ती' वाकों की सामरस्यावस्था है । वह नौ रूपों वाली है । वह अन्तर्मुखी योगियों के द्वारा ही देखी जा सकती है । वह 'स्थूल' एवं 'सूक्ष्म' दो रूपों में स्थित है । **'सूक्ष्ममध्यमा'** का साक्षात्कार केवल समाधिसाध्य है । **'स्थूलमध्यमा'** नव वर्गों में विभक्त है और वर्णमाला के अक्षरों के रूप में स्थित होने के कारण सभी के द्वारा बोली जाती है । **'सूक्ष्ममध्यमा'** नित्य वर्तमान है और नौ नादों के रूप में स्थित है । कुण्डलिनी जो कि विभिन्न ध्वनियों का मूल स्रोत है, मैत्रावरुणस्थान का त्याग करके एवं स्वाधिष्ठान आदि चक्रों का भेदन करके ऊर्ध्वारोहण करती हुई 'द्वादशदल कमल' में स्थित परमशिव के पास पहुँचती है और तब समाधिस्थ योगी उसे अपनी आत्मा के रूप में देखता है । वह नवनादमयी है ।

'हंसोपनिषत्' में नाद को १० भागों में विभाजित किया गया है, जो निम्न हैं – चिनि, चिनिचिनि, घण्टानाद, शङ्खनाद, तन्त्रीनाद, तालनाद (The round of cymbals) , वेणुनाद, भेरीनाद, मृदङ्ग, मेघनाद । नौ नादों का अनुभव हो जाने के बाद ही दसवें नाद का अभ्यास करना चाहिए । मन उसमें लय हो जाता है । जब मन लय हो जाता है, जब सङ्कल्प – विकल्प नष्ट हो जाते हैं, जब गुण-अवगुण जल जाते हैं – तब वे सदाशिव साक्षात्कृत हो उठते हैं, जो कि शक्तिमय (शक्त्यात्मा), सर्वव्यापक, स्वयंज्योति, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निरञ्जन एवं शान्त हैं ।

'नववर्गात्मा' – अ, क, च, ट, त, प, य, स एवं ल । **'स्थूल'** – शब्द का यह वह रूप है जो कि उच्चारणस्थानों द्वारा उच्चारित हो सकता है और जनसामान्य की वाणी का विषय है – स्थूल कहा गया है ।

'भूतलिप्यात्मा' = अभिव्यक्त अक्षर ही भूतलिपि है । ये अक्षर शक्तियाँ हैं, ये तेजोमयरूप हैं और शक्त्यात्मक हैं । 'तन्त्रसद्भाव' में कहा गया है कि मातृका जो कि परम तेज के साथ अभिन्नतया समन्वित हैं, ब्रह्म से लेकर सभी ब्रह्माण्डों तक व्याप्त हैं। 'शक्ति' नाद के रूप में समस्त विश्व को व्याप्त करती है ।

वह 'शक्ति' सभी अक्षरों में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार सभी वर्णों में । 'शक्ति' जो कि 'परा', 'सूक्ष्मा' एवं निराकारा है – मूलाधार चक्र में बिन्दु के चतुर्दिक् सर्पवत् कुण्डलित होकर सो रही है । चन्द्रमा, अग्नि, तारागण, १४ भुवनों द्वारा अपने को विराट् बनाये हुए एवं विस्तृत किये हुए उदर वाली वह 'कुलशक्ति' इस प्रकार मूर्च्छितावस्था में पड़ी है मानों उसे विष दे दिया गया हो । वह 'परनिनाद' द्वारा जागृत होकर और उदर में आग द्वारा मथी जाकर बन्धनमुक्ता एवं ज्ञानरूपा बन जाती है । वैश्विक मन्थन गति में गोलाकार होता है और उसके जागृत होने के पूर्व तक उसमें स्थित रहता है ।

जब प्रथम आवरणोद्भेद (unfolding) या विभाजन (Division) स्थान ग्रहण करता है तब 'बिन्दु' नाद बन जाता है । इसके द्वारा कुण्डली, सूक्ष्म काल जाग्रत् होता है । 'बिन्दु' जो कि शक्ति (नाद) के बाद आता है, प्रभु एवं चतुष्कालमय है (चार काल) है । मन्थन के द्वितीय या मध्यभाग ('मध्यमन्थनयोगेन') में ऋजुत्व (Straightness) है, जिसे 'ज्येष्ठा' शक्ति कहा जाता है और वह दो बिन्दुओं के

मध्य स्थित है । अक्षर (imperishable) अमृत कुण्डली – वैखरी द्वारा बिन्दु नादतत्त्व (बिन्दु-नाद की अवस्था) में ले जाता है तब वह दो बिन्दुओं के मध्य 'लाकिनी' (रौद्री) कहलाती है । तब वह त्रिपदा (तृतीय चरण) है और 'रौद्री' कही जाती है । वह 'रोधिनी' भी कही जाती है, क्योंकि वह मोक्ष का मार्ग निरुद्ध करती है । 'बिन्दु' शिवात्मक, 'बीज' शक्त्यात्मक एवं 'नाद' उभयात्मक है –

'बिन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम् । तयोर्योगे भवेन्नादः तेभ्यो जातस्त्रिशक्तयः ॥'

'अम्बिका' का रूप चन्द्रमा के एक भाग का है । आधा चन्द्र ही 'अर्धचन्द्रिका' है । इस प्रकार पराशक्ति एक होकर भी तीन रूपों में दृष्टिगत होती है । इन वामादिक तीन शक्तियों से पृथक् होकर अक्षरों का नौ वर्ग जन्म लेता है । 'पराशक्ति' कुण्डली जिसकी नौ रूपों में कल्पना की गई है, नववर्गोपलक्षित है = नौ वर्गों द्वारा संकेतित की गई है । 'लाकिनी' रौद्री है । 'डाकिनी' ब्राह्मी है । 'राकिणी' ज्येष्ठा या वैष्णवी है ।

'पश्यन्ती' परा का परवर्ती विकास है । 'परा' एवं 'मध्यमा' का मध्यवर्ती वाक् 'पश्यन्ती' है । 'पश्यन्ती वाक्' ईश्वर तत्त्व है । माषशमिका 'मध्यमा' है तो 'वटधानिका' पश्यन्ती है । इसे 'कार्यबिन्दु' भी कहते है । 'कारणबिन्दु' स्वरूप शब्द ब्रह्म जब पवन से प्रेरित होकर नाभिदेश में आकर विमर्शात्मक मन से युक्त होता है तब उसे ही सामान्य स्पन्द, प्रकाशरूप, कार्यबिन्दुमय 'पश्यन्ती' कहा जाता है । प्रकाशांश (वामाशक्ति) एवं विमर्शांश (इच्छाशक्ति) ये दोनों पश्यन्ती में अवस्थित हैं । 'पश्यन्ती' में वामा एवं इच्छा शक्ति का समाहार है –

'बीजभावस्थितं विश्वं स्फुटीकर्तुं यदोन्मुखी ।
वामा विश्वस्य वमनादङ्कुशाकारतां गता ।
इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता'[१] ।
'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय'[२] ।

इस श्रौत ईक्षण से युक्त ईक्षणात्मिका वाक् ही 'पश्यन्ती' है । यह निःशेष जगत् को अपने भीतर देखती है और इसीलिए इसे 'पश्यन्ती' कहा गया है । ईक्षण, काम, तप एवं विचिकीर्षा (भास्कर की दृष्टि में) समानार्थक है, अतः पश्यन्ती तन्मया एवं तद्रूपा है । जयरथ का कथन है कि जब परमेश्वरी परावाक् ही अपने स्वातन्त्र्य से बाह्य रूपों का उन्मेष करना चाहती है तब उसे 'पश्यन्ती' आख्या प्राप्त होती है । इस समय वाच्य-वाचक का क्रम उदित नहीं होता ।

पश्यन्ती के विभिन्न रूप – पश्यन्ती के निम्न भेद हैं – १. स्थूल पश्यन्ती, २. सूक्ष्म पश्यन्ती, ३. पर पश्यन्ती ।

(क) स्थूल पश्यन्ती – षड्ज आदि स्वरों के मिलन या वर्गों के विभाग से रहित आलाप द्वारा माधुर्यातिशय या परमाह्लाद-प्रदायिका आद्य नादस्वरूपा वाक् 'स्थूल पश्यन्ती' है –

---

१. योगिनीहृदय २. छा० (३०६ / २ / ३) ।

'तत्र या स्वरसन्दर्भसुभगा नादरूपिणी ।
सा स्थूला खलु पश्यन्ती वर्णाद्यप्रतिभागतः[१] ॥

(ख) 'सूक्ष्म पश्यन्ती' – गायन की आकांक्षा का अनुसन्धान ही 'सूक्ष्म पश्यन्ती' है ।

(ग) 'पर पश्यन्ती' – उपाधिशून्य एवं परचिदात्मक वाक् ही 'पर पश्यन्ती' है ।[२] आचार्य अभिनवगुप्तपादाचार्य ने (क) पश्यन्ती, (ख) महापश्यन्ती एवं (ग) परम महापश्यन्ती के रूपों में पश्यन्ती के तीन भेदों का वर्णन किया है । परम 'महापश्यन्ती' ही 'परावाक्' है । आचार्य सोमानन्द पश्यन्ती को ज्ञानशक्ति एवं अभिनवगुप्त इसे इच्छाशक्ति कहते हैं । पश्यन्ती ही परावाक् है[३] ॥ २६-२७ ॥

सूक्ष्मरूपा हि मध्यमा स्थूलरूपायाः कारणभावमापन्ना एकैवेत्यत आह –

आद्या कारणमन्या कार्यं त्वनयोर्यतस्ततो हेतोः ।
सैवेयं न हि भेदः तादात्म्यं हेतुहेतुमतोर्दिष्टम् ॥ २८ ॥

(सूक्ष्म मध्यमा के साथ स्थूल मध्यमा के अभिन्नत्व का प्रतिपादन)

प्रथम (सूक्ष्म मध्यमा) कारण है और द्वितीय (स्थूल मध्यमा) कार्य है । इसी कारण इन दोनों में वह (स्थूल मध्यमा) यही (सूक्ष्म मध्यमा ही) है । (दोनों में कोई) भेद नहीं है, क्योंकि कारण एवं कार्य में एकता होती है ॥ २८ ॥

*** चिद्वल्ली ***

आद्या पूर्वोक्तसूक्ष्मा कारणं प्रथमोद्भूतत्त्वात् । अन्या स्थूला कार्यं तज्जन्यत्वात्कार्यम् । यतस्तस्मात्कारणात् – अनयोः सूक्ष्मस्थूलयोः कार्यकारणयोर्भावः। ततो हेतोः तेन कारणेन इयं स्थूला सैव सूक्ष्मा शक्तिरेव । न हि भेदः भेदो नास्त्येव । ननु कथमभेदे कार्यकारणभाव इत्यत्राह – तादात्म्यं हेतुहेतुमतोर्दिष्टमिति । तादात्म्यं भेदाभेदरूपम् । हेतुहेतुमत् जन्यजनकरूपवत् इष्टं मृद्घटवत् वाचारम्भणमात्रत्वात् । एकमेव वस्तु उभयविधं भवति । सर्ववेदान्तसम्मतमित्यर्थः ॥ २८ ॥

*** सरोजिनी ***

'आद्या' = पूर्वोक्त प्रथमा (सूक्ष्म मध्यमा) । **'कारण'** = उद्भाविका । **'अन्या'** = परवर्ती । स्थूल मध्यमा । **'कार्य'** = कारणोत्पन्न पदार्थ । स्थूल मध्यमा कार्य है, क्योंकि कारणरूप सूक्ष्म मध्यमा से उत्पन्न होती है । **'अनयोः'** – इन दोनों

---

१. तन्त्रालोक । २. तन्त्रालोक ।
३. वैयाकरण पश्यन्ती को ही परावाक् मानते हैं –
'वैयाकरणसाधूनां पश्यन्ती सा परा स्थितिः ॥' (शिवदृष्टि)

में से । **'सैवेयम्'** = सा (स्थूलमध्यमा) इयम् (सूक्ष्म मध्यमा) अर्थात् स्थूल मध्यमा ही सूक्ष्म मध्यमा है । **'भेद'** = अन्तर । **'तादात्म्यम्'** = एकत्वं, अभिन्नत्व । **'हेतुहेतुमतोः'** = कारण एवं कार्य के मध्य । **'दिष्टम्'**...।

'परा' बीज रूप जन्मस्थान है । **'पश्यन्ती'** इसी बीज का लतागुच्छ है । **'मध्यमा'** इस बीज के पुष्प का सौरभ है । **'वैखरी'** अक्षमाला है –

'परा भूर्जन्म पश्यन्ती वल्लीगुच्छसमुद्भवा ।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ ॥' [१]

'मध्यमा वाक्' हिरण्यगर्भ शब्द है । 'शब्दब्रह्म' वायु द्वारा नाभि से हृदय पर्यन्त अभिव्यक्त होता हुआ निश्चयात्मिका बुद्धि से युक्त होकर विशेष स्पन्द, प्रकाश रूप, नादमय 'मध्यमा वाक्' कहलाता है । 'प्रकाशांश' ज्येष्ठा शक्ति है तथा 'विमर्शांशं' ज्ञानशक्ति है और यही ज्ञानशक्ति एवं ज्येष्ठाशक्ति 'मध्यमा वाक्' है –

'ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमावागुदीरिता ॥'[२]

पद्मपादाचार्य के अनुसार 'मध्ये मा बुद्धिर्यस्याः सा मध्यमा' । यह हिरण्यगर्भरूप एवं बिन्दुतत्त्वमय है तथा नाभि से हृदयपर्यन्त प्रदेश में अभिव्यक्त होती है तथा विशेष स्पन्द-संकल्पादि रूप है । भास्कर इसे 'नादमयी' एवं पद्मपाद इसे बिन्दुमयी मानते हैं । राघवभट्ट ने इसे 'नाद बिन्दुमयी' कहा है । भास्करराय ने ९ नादों (चिणि, चिणिचिणी, घण्टानाद, शङ्खनाद, तन्त्रीनाद, तालनाद, वेणुनाद, भेरीनाद, मृदङ्गनाद) की समष्टि को ही 'मध्यमा' कहा है । नव नादों से ही सूक्ष्म अ, क, च, ट, त, प, य, श, ल स्वरूप नववर्गात्मा 'स्थूल मध्यमा' का जन्म होता है । **'मध्यमा' के प्रकार** – मध्यमा के तीन प्रकार हैं – १. स्थूल, २. सूक्ष्म, ३. पर मध्यमा[३] ।

१. **स्थूल मध्यमा** – चमड़े से मढे मृदङ्गादि पर कराघात द्वारा जन्य ध्वनि स्थूल मध्यमा है ।

२. **सूक्ष्म मध्यमा** – वादनेच्छानुसन्धान ही सूक्ष्म मध्यमा है । यह वाक् संवेदनात्मक मात्र है ।

३. **'पर मध्यमा'** – वादनेच्छारहित, उपाधिरहित चिदात्मक स्वरूप ही पर मध्यमा है । क्रमशून्य, शब्दब्रह्म अर्थप्रतिपादनेच्छा से बिन्दुनादसंज्ञक प्राणापानरूप वायु के क्रम से उल्लसित होने पर 'मध्यमा वाक्' कहलाता है[४] ॥ २८ ॥

अनन्तरं मध्यशृङ्गारतेजःप्रसरणात्मकवसुकोणादिचक्रनिरूपणद्वारावैखरीशक्त्या-विर्भावमाह –

शषसपवर्गमयं तद्वसुकोणं मध्यकोणविस्तारः ।
नवकोणं मध्यं चेत्यस्मिंश्चिद्दीपदीपिते दशके ॥ २९ ॥

---

१. सुभगोदयवासना ।
२. नित्याषोडशिकार्णव ।
३. तन्त्रालोक ।
४. शिवदृष्टि ।

(अष्टकोणचक्र और उसका स्वरूप)[१]

अष्ट कोणों वाला चक्र जो कि श, ष, स एवं पवर्ग से (मिलकर) निर्मित होता है, मध्य कोण का विस्तार है । ये नौ कोण बिन्दु के साथ (मिलकर) दशक का निर्माण करते हैं, जो कि चित् के प्रकाश से प्रकाशित है ॥ २९ ॥

*** चिद्वल्ली ***

तद्वसुकोणं सर्वरोगहराख्यं चक्रं शषसपवर्गमयं शषसपवर्गात्मकाष्टकोणं मध्यकोणस्य मध्यत्रिकोणस्य विस्तारो विकासः यस्य तत्तादृशं मध्यकोणसहितं नवकोणं मध्यं च बैन्दवाख्यं संहत्य दशके अस्मिन् बिन्दुत्रिकोणवसुकोणरूपे चिद्दीपदीपिते बैन्दवासनसंरूढसंवर्तनिलचिद्घनमित्युक्तरीत्या बिन्दुचक्राधिरूढायास्तेजोमूर्तेस्त्रिपुरायाः प्रभापटलकाशितेत्यर्थः ॥ २९ ॥

*** सरोजिनी ***

'श-ष-स-पवर्गमयं' = श, ष, स एवं पवर्ग से निर्मित अष्टकोणों वाला चक्र । **'वसुकोण'** = अष्टकोण । **'मध्यकोण'** = मध्यत्रिकोण । **'विस्तार'** = विकास । यह अष्टकोणों वाला चक्र 'सर्वरोगहर' नामक चक्र है, जो कि मध्यत्रिकोण का विकास मात्र है । **'नवकोण'** = नौ त्रिकोण । मध्यत्रिकोण एवं अष्टत्रिकोण मिलकर **'नवकोण'** बनता है । **'मध्यं च दशके'** = इन नौ त्रिकोणों के साथ बिन्दु का संयोग 'दशक' का निर्माण करता है । **'अस्मिंश्चिद्दीपदीपिते'** = इस दशक (दस के समूह) के चैतन्य रूपी दीपक के द्वारा प्रकाशित होने पर । यह दशक 'बिन्दुचक्र' में स्थित त्रिपुरा माता को घेरे हुए किरणों से प्रकाशित करता है । 'बिन्दु' प्रलयाग्नि एवं चित्कला के संयोग का स्थान है ।

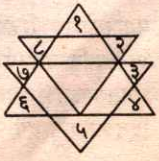
'अष्टकोण चक्र' का स्वरूप – 'नाम' – 'सर्वरोगहर चक्र' । **आकार** – अष्टार । **रंग** – हरा । **खण्ड** – अग्निखण्ड । **चक्र** = सृष्टिचक्र । **वर्णाक्षर** – य, र, ल, व, श, ष, स, ह । **अग्नि दशकला** – धूम्रार्चिषी, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा, कव्यवहा । **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ** – वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी, चक्रेश्वरी– त्रिपुरासिद्धा । **योगिनीचक्र** – रहस्य योगिनी चक्र । **मुद्रा** – खेचरी मुद्रा । **देहस्थ अवयव** – शीत, उष्ण सुख, दुःख, स्वेच्छा, सत, रज, तम । **शरीरस्थान** – कण्ठ । **शरीरचक्र** – विशुद्ध चक्र (षोडश दल, षोडश स्वरमय) ।

'योगिनीहृदय' में इसका स्वरूपोल्लेख निम्नानुसार किया गया है –

'बैन्दवासनसंरूढसंवर्तानलचित्कलम् ।
अम्बिकारूपमेवेदमष्टारस्थं स्वरावृतम्' ॥

---

१. अष्टकोण चक्र (सर्वरोगहर चक्र) ।
'अम्बिकारूपमेवेदमष्टारस्थं स्वरावृतम्' ॥
(यो० हृ०)



श्रीचक्र नवयोन्यात्मक है । इसमें ५ चक्र 'शक्तिचक्र' एवं ४ चक्र 'शिवचक्र' कहलाते हैं । **'शक्तिचक्र'** – त्रिकोण, अष्टार, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार । **'शिवचक्र'** – अष्टदल पद्म, षोडशदल पद्म, तीन वृत्त, भूपुर । 'अष्टकोण' शक्ति चक्र है ॥ २९ ॥

शरीरस्थान	चक्र का नाम	श्रीचक्र का नाम	दल संख्या	श्रीचक्र का नाम
१. भ्रूमध्य	आज्ञाचक्र	सर्वानन्दमय	द्विदल	बिन्दु
२. लम्बिका	इन्द्रयोनि	सर्वसिद्धिप्रद	अष्टदल	त्रिकोण
३. कण्ठ	विशुद्धि	सर्वरोगहर	षोडश दल	अष्टकोण
४. हृदय	अनाहत	सर्वरक्षाकर	द्वादश दल	अन्तर्दशार
५. नाभि	मणिपूर	सर्वार्थसाधक	दशदल	बहिर्दशार
६. वस्ति	स्वाधिष्ठान	सर्वसौभाग्यदायक	षड्दल	चतुर्दशार
७. मूलाधार	मूलाधार	सर्वसंक्षोभण	चतुर्दल	अष्टदल
८. तदधोदेश	कुल	सर्वाशापरिपूरक	षड्दल	षोडशदल
९. तदधोदेश	अकुल	त्रैलोक्यमोहन	सहस्रदल	भूपुर

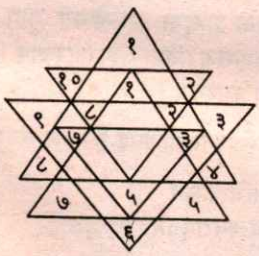
तच्छाया द्वितयमिदं दशारचक्रद्वयात्मना विततम् ।
तटचकवर्गचतुष्टयविलसनविस्पष्टकोणविस्तारम् ॥ ३० ॥

(दशार चक्र : अन्तर्दशार एवं बहिर्दशार)[१]

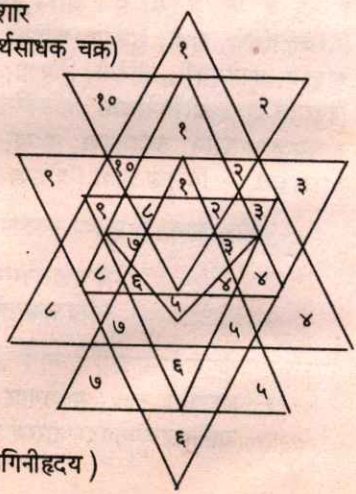
इस दशक के दो प्रकाश १०-१० कोणों वाले दो चक्रों के रूप में फैले हुए हैं, जिनके आन्तर दस कोणों के समूह तवर्ग एवं टवर्ग को तथा बाह्य दस कोणों के समूह चवर्ग एवं कवर्ग को प्रदर्शित करते हैं ॥ ३० ॥

---

१. अन्तर्दशार
(सर्वरक्षाकर चक्र)



२. बहिर्दशार
(सर्वार्थसाधक चक्र)



नवत्रिकोणस्फुरितप्रभारूपदशारकम् ।
शक्त्यादि नवपर्यन्तदशार्णस्फूर्तिकारकम् ॥ १५ ॥
भूतत-मात्रदशकप्रकाशालम्बनत्वतः ।
द्विदशारस्फुरद्रूपं क्रोधीशादि दशारकम् ॥ १६ ॥ (योगिनीहृदय)

* चिद्वल्ली *

तच्छाया द्वितयमिदम् इति – तस्य पूर्वोक्तस्य तेजोराशिमयस्य चक्रत्रितयस्य छायाद्वितयं कान्तिद्वितयम् । दशारचक्रद्वयात्मना अन्तर्दशारबहिर्दशाररूपेण निरवधिक-तेजोमण्डलं तस्य संबन्धि कान्तिद्वितयम् । सर्वरक्षाकरसर्वार्थसाधकाभिधचक्रद्वयात्मना परिणतमित्यर्थः । तथा चोक्तम् – नवत्रिकोणस्फुरितप्रभारूपदशारकम् । इति ॥ ३० ॥

* सरोजिनी *

'तच्छाया' = वह कान्ति । **'द्वितयमिदं'** = यह दो । छायाद्वितय = दो कान्तियाँ । (दो कान्तियाँ दो चक्र हैं, जिनमें प्रत्येक दशकोणात्मक है ।) **'दशारचक्रद्वयात्मना'** = 'अन्तर्दशार' एवं 'बहिर्दशार' के रूप में स्थित दश कोणों वाले दो चक्रों के रूप में (दोनों कान्तियों का इन्हीं से सम्बन्ध है) ये दो चक्र हैं – १. 'सर्वरक्षाकर' एवं २. 'सर्वार्थसाधक'। **'विततम्'** = विकसित । 'दश कोणों वाला चक्र नौ त्रिकोणों के अभिव्यक्त प्रकाश का एक रूप है ।'

'दशार' संख्या में द्विप्रकारक है – १. अन्तर्दशार, २. बहिर्दशार । 'योगिनीहृदय' में इनका स्वरूप निम्नानुसार उल्लिखित है –

१. नवत्रिकोणस्फुरितप्रभारूपदशारकम् ।
शक्त्यादिनवपर्यन्तदशार्णस्फूर्तिकारकम् ॥ १५ ॥

२. भूततन्मात्रदशकप्रकाशालम्बनत्वतः ।
द्विदशारस्फुरद्रूपं क्रोधीशादिदशारकम् ॥ १६ ॥

(क) **'अन्तर्दशार'** — **आकार** – भीतर के दश कोण । **रंग** – काला । **खण्ड** = सूर्यखण्ड । **चक्र** – स्थितिचक्र । **वर्णाक्षर** – ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न । **रुद्रदशकला** – तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधा, क्रिया, उद्गारी, मृत्यु । **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ** – सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधि-विनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी, सर्वेप्सित-फलप्रदा । **चक्रेश्वरी** – त्रिपुरमालिनी । **योगिनी चक्र** – निगर्भ योगिनी चक्र । **मुद्रा** – महांकुश मुद्रा । **देहस्थ अवयव** – रेचक, पूरक, शोषक, दाहक, प्लावक, क्षारक, दारक, क्षोभक, मोहक, जृम्भक । **शरीरस्थान** – हृदय । **शरीरचक्र** – अनाहत (द्वादशदल क से ठ : १२ व्यञ्जन) । **नाम** – 'सर्वरक्षाकर चक्र' ॥

(ख) **'बहिर्दशार'** – **नाम** – सर्वार्थसाधक चक्र । **आकार** – बाहर के दश कोण। **रंग** – लाल । **खण्ड** – सूर्यखण्ड । **चक्र** – स्थितिचक्र । **वर्णाक्षर** – कवर्ग, चवर्ग । **विष्णु-कलाएँ** – जरा, पालिनी, शान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीता, दीर्घा । **सूर्य की कलाएँ** – तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीची, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी, क्षमा । **चक्र की मूल शक्तियाँ** – सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पत्प्रदा, सर्वप्रियंकरी, सर्वमंगलकारिणी, सर्वकामप्रदा, सर्वदुःखविमोचिनी, सर्वमृत्युप्रशमिनी, सर्वविघ्ननिवारिणी, सर्वाङ्गसुन्दरी, सर्वसौभाग्यदायिनी । **चक्रेश्वरी** – त्रिपुराश्री । **योगिनी**

चक्र – कुलोत्तीर्ण योगिनी चक्र । **मुद्रा** – उन्मादिनी मुद्रा । **देहस्थ अङ्ग** – १० प्राण । **शरीर चक्र** – मणिपूरक ॥ ३० ॥

तच्चक्रद्वयस्वरूपं व्याचष्टे – तटचकवर्गात्माक्षरदशकरूपम् अन्तर्दशारं चवर्गकवर्गात्माक्षरदशकरूपं बहिर्दशारमित्यर्थः ।

एतच्चक्रचतुष्कप्रभासमेतं दशारपरिणामः ।
आदिस्वरगणगतचतुर्दशवर्णमयं चतुर्दशारमिदम् ॥ ३१ ॥

(दस एवं चौदह त्रिकोणों वाले चक्रों का स्वरूप)[१]

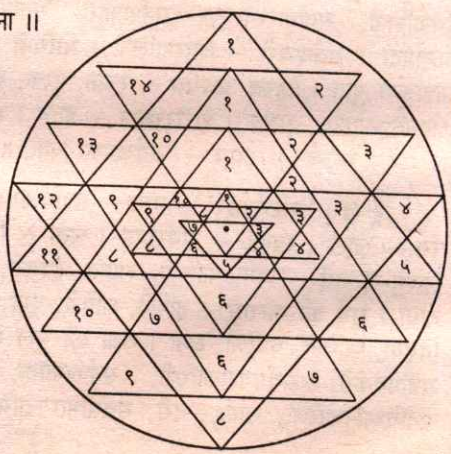
इन (प्राथमिक) चार चक्रों के प्रकाश से बहिर्दशार चक्र संयुक्त है । (फिर) चौदह कोणों वाला यह चक्र प्रकट होता है, जिसमें अ से लेकर अन्य चौदह स्वर स्थित हैं ।

*** चिद्वल्ली ***

एतच्चक्रचतुष्कस्य बिन्दुत्रिकोणवसुकोणान्तर्दशारात्मकस्य चक्रचतुष्कस्य, प्रभा कान्तिः । तया समेतं संयुक्तम् । दशारपरिणामः बहिर्दशारचक्रमिति यावत् । बहिर्दशारचक्रस्य बैन्दवादिचक्रचतुष्टयसन्निधानादिति तात्पर्यम् । तत्र तत्प्रभा व्याप्नोतीत्यर्थः । तथा चोक्तम् – चतुश्चक्रप्रभारूपसंयुक्तपरिणामतः ।' इति । अथवा – एतच्चक्रचतुष्कस्य त्रिकोणवसुकोणदशारद्वयरूपस्य प्रभासमेतं कान्तिसंयुक्तं दशारपरिणामं दशारचक्रभूतं वसुकोणं चक्रमित्यर्थः । तदेवाह — आदिस्वरगणकचतुर्दशवर्णमयं चतुर्दशारम् इति – अकारादिचतुर्दशवर्णात्मकचतुर्दशकोणसहितं सर्वसौभाग्यदायकाभिधचक्रमित्यर्थः । एवं बैन्दवादिमनुकोणपर्यन्तचक्रवर्णनद्वारा वैखरीशक्तिराविर्भूतेत्याह ॥ ३१ ॥

---

१. **चतुर्दशार**
(सर्वसौभाग्यदायक चक्र)
चतुश्चक्रप्रभारूपसंयुक्तपरिणामतः ।
चतुर्दशार रूपेण संवित्तिकरणात्मना ॥
(योगिनीहृदय)



* सरोजिनी *

'चक्रचतुष्क' = चार चक्र अर्थात् 'बिन्दु', 'त्रिकोण', 'अष्टकोण' – 'अन्तर्दशार'। प्रभा = कान्ति। समेत = संयुक्त। **दशारपरिणाम** = बहिर्दशार चक्र। (द्वितीय दशत्रिकोणात्मक चक्र प्राथमिक चार चक्रों के प्रकाश से संयुक्त है। चार चक्रों का प्रकाश इस चक्र पर पड़ता है। **'चतुर्दशार'** = चौदह त्रिकोणों वाला चक्र। **'चतुर्दशवर्णमय'** = 'चतुर्दशार' अ आदि सभी १४ स्वरों से संयुक्त हैं। यह चक्र 'सर्वसौभाग्यदायक' चक्र कहलाता है। आदि स्वर 'अ'।

'श्रीचक्र' में स्थित नौ योनियाँ या उपचक्र निम्नांकित हैं –

'त्रैलोक्यमोहनं चक्रं सर्वाशापरिपूरकम्।
सर्वसङ्क्षोभणं देवि सर्वसौभाग्यदायकम्॥
सर्वार्थसाधकं चक्रं सर्वरक्षाकरं तथा।
सर्वरोगहरं चक्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
सर्वानन्दमयं चापि नवमं सुरसुन्दरि॥'[१]

इन्हीं की अन्य आख्या – 'बिन्दु', 'त्रिकोण', 'अष्टकोण', 'अन्तर्दशार', 'बहिर्दशार', 'चतुर्दशार', अष्टदल कमल, 'षोडशदल कमल' एवं 'भूपुर' हैं।

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्मं,
मन्वस्त्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च,
श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः॥[२]

'चक्रचतुष्क' – 'बिन्दु', 'त्रिकोण', 'अष्टकोण', 'दशार'। (अन्तर्दशार)।

१. **'बिन्दु'** = 'सर्वानन्दमय चक्र'। **रंग** – रक्त। **चक्र** – सृष्टिचक्र। **अक्षर** – 'क्ष'। **मूलशक्ति** – ललिताम्बा। **चक्रेश्वरी** = ललिता महाचक्रेश्वरी। **योगिनी चक्र** – परापररहस्य यो० च०। **मुद्रा** – योनिमुद्रा। **देहस्थाङ्ग** – श्रद्धा। **शरीरस्थान** – भ्रूमध्य। शरीरचक्र – आज्ञाचक्र। **शरीरावस्था** – तुरीया महाकारण॥

२. **'त्रिकोण'** = 'सर्वसिद्धिप्रद चक्र'। **आकार** – त्रिकोण। **रंग** – पीत। **खण्ड**– अग्निखण्ड। **चक्र** – स्थितिचक्र। **वर्ण** – 'म'। **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ** – कामेश्वरी, वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी। **योगिनी चक्र** – अतिरहस्य यो०। **मुद्रा** – बीजमुद्रा आदि।

३. **अष्टकोण**, अन्तर्दशार एवं बहिर्दशार (दे० श्लोक क्र० २९-३०) **'चतुर्दशार'** = **आकार** – १४ कोण। **रंग** – नीला। **खण्ड** = चन्द्रखण्ड। **चक्र** = स्थिति चक्र। **वर्ण** = स्वर। **चक्रेश्वरी** – त्रिपुरवासिनी। **मुद्रा** – सर्ववशङ्करी मुद्रा। **देहावयव** = १४ नाड़ियाँ। **चक्र** = स्वाधिष्ठान चक्र। आदि।

---

१. वामकोत्तरतन्त्र।
२. रुद्रयामलतन्त्र।

टिप्पणी – 'त्रिकोण', 'अष्टकोण', 'अन्तर्दशार', 'बहिर्दशार' एवं 'चतुर्दशार'—ये जो 'शक्तिचक्र'[१] हैं, ये 'बिन्दु', 'अष्टदल', 'षोडशदल', एवं 'चतुरस्र', (शिवचक्र) को अपने में अन्तर्लीन किए हुए हैं । 'शिवचक्र' के चार चक्र 'शक्तिचक्र' के पाँच चक्रों में अन्तर्भूत हैं । यथा – 'त्रिकोण' में बिन्दु, 'अष्टार' में अष्टदल पद्म, 'अन्तर्दशार'-'बहिर्दशार' में षोडशार एवं 'चतुर्दशार' में 'चतुरस्र' अन्तर्भूत है –

'त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम् ।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्रके ॥'
शैवानामपि शाक्तानाञ्चक्राणां च परस्परम् ।
अविनाभावसम्बन्धं यो जानाति स चक्रवित् ॥'

इसी प्रकार का अन्तर्भाव एवं एकीभाव देहस्थ चक्रों में है । यथा – महाबिन्दु रूप एक 'बिन्दु' मूलाधार चक्र में ४ (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) बन जाता है; 'स्वाधिष्ठान चक्र' में ६ (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य-मायादि षट्कञ्चुक) बन जाता है । ये ४ + ६ = १० बिन्दु ही 'संसार का 'कारणबिन्दु' है । 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान' का मिश्रण 'मणिपूरक चक्र' में १० दल और 'अनाहत चक्र' में १२ दल बन जाता है । यह मणिपूर के १० दल एवं उसके मूलभूत २ दलों से १२ दल बन जाता है । अतः 'मणिपूर' ही 'अनाहत' की प्रकृति हुई । हृदय एवं मूलाधार के दल मिलकर (१२ + ४) 'विशुद्धाख्य' के १६ दल हो जाते हैं । सारांश यह कि 'आज्ञाचक्र' के दो दल 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान' हैं और यही 'सहस्रार' में एक बिन्दु रूप हो जाता है । 'मणिपूर' से 'आज्ञाचक्र' तक के सभी चक्र 'मूलाधार' एवं 'स्वाधिष्ठान' रूप हैं । अतः सब चक्रों को छोड़कर 'सहस्रार' में एक बिन्दु रूप में भगवती के 'परासंवित्' रूप का ध्यान करना चाहिए । 'सहस्रार' ही 'बिन्दु' होता है इसी कारण इसे 'बैन्दव गृह' कहा जाता है ।

'सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहम् ।' 'ततो मूलाधाराद्वितयमभवत्तद्दश दलम्' ॥

शिव शक्ति ही रक्त-'श्वेत'–'रक्त' बिन्दु या 'कार्यबिन्दु' एवं 'बीज' है । एक ही बिन्दु में सभी चक्र अन्तर्निविष्ट हैं ॥ ३१ ॥

परया पश्यन्त्यापि च मध्यमया स्थूलवर्णरूपिण्या ।
एताभिरेकपञ्चादशाक्षरात्मिका वैखरी जाता ॥ ३२ ॥

(वैखरी की उत्पत्ति)

परा, पश्यन्ती एवं स्थूल मध्यमा – इनके द्वारा इक्यावन अक्षरों वाली वैखरी उत्पन्न हुई[१] ॥ ३२ ॥

*** चिद्वल्ली ***

परादिशक्तिलक्षणं च पूर्वमेव बहुधा प्रपञ्चितम् । अयमर्थः – आदिक्षान्ताक्षर-

---

१. त्रिकोणमष्टकोणञ्च दशकोणद्वयं तथा ।
चतुर्दशारञ्चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्चच ॥

राशिमयाखिलप्रपञ्चनिर्मात्री सर्वशब्दात्मिका वैखरीति । तथा चोक्तम् — वैखरी विश्वविग्रहेति वाचा वक्त्रे करणविशदां वैखरीं ते प्रपद्ये इत्यादि ॥ ३२ ॥

* सरोजिनी *

बिन्दु से लेकर चतुर्दशार तक का वर्णन करके ग्रन्थकार अब वैखरी शक्ति के आविर्भाव के विषय में प्रकाश डालते हैं । **'परया पश्यन्त्यापि च मध्यमया'** = परावाक्, पश्यन्तीवाक् एवं मध्यमावाक् द्वारा । **'स्थूलवर्णरूपिण्या'** – स्थूल वर्ण स्वरूप वाले वाक् द्वारा । **एताभिः** = इनके द्वारा । **'एकपञ्चदशाक्षर'** = इक्यावन अक्षर । **वैखरी** = वैखरीवाक् । 'वैखरीवाक्' वर्णमाला के ५१ अक्षरों से युक्त है ।

'सूक्ष्ममध्यमया' = नौ नादों से युक्त मध्यमा वाक् । **'स्थूलमध्यमा'** = नववर्गात्मा मध्यमा । अनभिव्यक्त स्थूल मध्यमा द्वारा ही वैखरी वाक् का आविर्भाव होता है । 'वैखरी विश्वविग्रहा' कहकर शास्त्रकारों ने समस्त विश्व को 'वैखरी वाक्' से आविर्भूत एवं उसी में निहित बतलाया है ।

'विखर' अर्थात् शरीर में उत्पन्न होने वाली शरीरेन्द्रिय पर्यन्त चेष्टासम्पादक वाक् ही वैखरी वाक् है । स्थूल शब्द वैखरी वाणी कहलाता है । पुण्यानन्द ने वैखरी को पञ्चदशाक्षरमयी कहा है । वैखरी का स्वरूप अभिलापात्मक है । पञ्चदशाक्षरात्मिका एवं सम्पूर्ण वैदिक एवं लौकिक शब्दों की आत्मा है – 'वैखरी नाम अभिलापरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकलौकिकशब्दनात्मिका शक्तिरित्युच्यते' (का० क० वि० टीका) ।

वैखरी के भेद – वैखरी के तीन भेद बताये गये हैं – (१) स्थूल, (२) सूक्ष्म एवं (३) पर । स्फुट वर्णों की उत्पत्ति में जो कारण है वही स्थूल वैखरी है । यही स्फुट वर्णों की उत्पत्ति का कारण है –

'या तु स्फुटानां वर्णानामुत्पत्तौ कारणं भवेत् ।
सा स्थूला वैखरी यस्याः कार्यं वाक्यादिभूयसा ॥'[१]

'तन्त्रालोक' (३।२४६) के अनुसार विवक्षात्मक अनुसन्धान ही वैखरी है । अनुपाधिमान चिदात्मक स्वरूप ही वैखरी का 'पररूप' है । वैखरी को क्रियाशक्ति भी कहा गया है । प्रकाशांशरूप रौद्री एवं विमर्शांशरूप क्रिया का मेल ही 'वैखरी वाक्' है । बिन्दु, नाद एवं बीज इस त्रयी में वैखरी वाक् ही 'बीज' है । वैखरी 'विश्वविग्रहा' है ।[२]

---

१. तन्त्रालोक ।

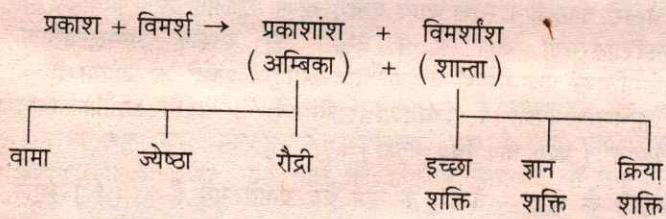
२. अमृतानन्द योगी । 'दीपिका' : ''वैखरी विश्वविग्रहा वाग्रूपप्रपञ्चमय-वैखरीरूपा जाता ।''

'प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गाटवपुरुज्ज्वला ।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा ॥'

टिप्पणी - १. जहाँ पर 'अम्बिका' (प्रकाशांश) एवं 'शान्ता' (विमर्शांश) सामरस्य भावापन्न हैं उसी का नाम है 'मूल बिन्दु' या 'समष्टि बिन्दु'। 

२. मूल त्रिकोण का मध्य बिन्दु 'परामातृका' है। तीन दिशाओं के ३ बिन्दु पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी हैं। त्रिकोण की वाम रेखा 'पश्यन्ती वाक्' का प्रसार है। ऊर्ध्व रेखा 'मध्यमा वाक्' का प्रसार है और दक्षिण की प्रत्यावर्तन मुखी रेखा 'वैखरी वाक्' है। सृष्टि के मूल में यही वाङ्मय त्रिकोण स्थित है। इसी वाङ्मय त्रिकोण के मध्य में 'परावाक्' रूपी 'बिन्दुः' है और इसी वाङ्मय त्रिकोण की तीन रेखाओं को 'पश्यन्ती', 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' कहा जाता है। परावाक् रूपी बिन्दु में 'विश्व' गर्भावस्था में है। 'वामा' की अवस्था में विश्व सोया हुआ जैसा है। 'ज्येष्ठा' की अवस्था में विकसित स्थिति में एवं वैखरी की अवस्था में यह सम्पूर्णतः विग्रहयुक्त है।

१. वामा + इच्छा का सामरस्य → पश्यन्ती वाक्॥
२. ज्येष्ठा + ज्ञान का सामरस्य → मध्यमा वाक्॥
३. रौद्री + क्रिया का सामरस्य → वैखरी वाक्॥



इतः परं सर्वसङ्क्षोभणसर्वाशापरिपूरकाभिधचक्रद्वयं वैखरीवर्णात्मकमेवेत्याह—

कादिभिरष्टभिरुपचितमष्टदलाब्जं च वैखरीवर्गैः।
स्वरगणसमुदितमेतद्द्व्यष्टदलाम्भोरुहं च संञ्चिन्त्यम्॥ ३३॥

('सर्वसंक्षोभण' एवं 'सर्वशापरिपूरक' चक्रों के वैखरीवर्णात्मक (व्यञ्जनस्वरात्मक) होने का प्रतिपादन)

क वर्ग से प्रारम्भ होने वाले अक्षरों के अष्ट वर्ग, जो कि वैखरी शक्तिरूपात्मक हैं, अष्टदल कमल (सर्वसंक्षोभण चक्र) के दलों पर स्थित हैं और यह स्मरण रखना चाहिए कि षोडशदल कमल (सर्वाशापरिपूरक चक्र) के दलों पर स्वरगण स्थित हैं॥ ३३॥

*** चिद्वल्ली ***

वैखरीवर्गैः वैखरीशक्तिस्वरूपैः। अष्टभिः कादिभिरुपचितं सम्यक् प्रोक्तम्। अष्टदलाब्जं च सर्वसङ्क्षोभणचक्रम्। तथा स्वरगणसमुदितम्। स्वरगणैः अकारादि-षोडशवर्णैः समुदितं सम्यक् भावितं एतत्परिदृश्यमानं द्व्यष्टदलाम्भोरुहं सर्वाशापरिपूरक-चक्रं सञ्चिन्त्य सर्वदा भावनीयमित्यर्थः॥ ३३॥

* सरोजिनी *

कादिभिः = क वर्ग से प्रारम्भ होने वाले (आठ) वर्गों से **'उपचितं'** = सम्यक् रूप से अभिहित । **'अष्टदलाब्ज'** = अष्टदशकमल = 'सर्वसंक्षोभण चक्र' । **'स्वरगण समुदितं** = अकारादि षोडश वर्णों द्वारा सम्यक् भावित । **'द्व्यष्टदलाम्भोरुह'** = षोडश दल वाला कमल । 'सर्वाशापरिपूरक चक्र' । 'अ' एवं अन्य स्वर 'षोडशदल कमल' के दलों पर स्थित हैं । **'सञ्चिन्त्यम्'** = ध्यान किया जाना चाहिए, समझना चाहिए ।

'अष्टदलाब्ज' = 'अष्टदल पद्म', **आकार** = अष्टदल । **रंग** = गुलाबी । **खण्ड** = अग्निखण्ड । **चक्र** = संहार चक्र । **वर्ण** = अ, क, च, ट, त, प, य, श । **चक्र की मूल शक्तियाँ** – अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गरेखा, अनङ्गवेगिनी, अनङ्गाङ्कुशा, अनङ्गमालिनी । **चक्रेश्वरी** – त्रिपुरसुन्दरी **योगिनीचक्र** – गुप्ततर योगिनीचक्र । **मुद्रा** = सर्वाकर्षिणी । **देहस्थावयव** = वचन, आदान, गमन, विसर्ग, हानि, उपेक्षा, बुद्धि । **शारीर स्थान एवं चक्र** – गुदा, मूलाधार ।

'द्व्याष्टदलाम्भोरुह' – षोडशदल पद्म, सर्वाशापरिपूरक चक्र । **आकार** = षोडश दल । **रंग** = पीत । **खण्ड** = चन्द्रखण्ड । **चक्र** = संहार चक्र । **अक्षर** = स्वरमय । **सदाशिव की १६ कलाएँ** = निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञाना, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा ।

चन्द्र की १६ कलाएँ – अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा, पूर्णामृता । **षोडश नित्याएँ** – कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्नाभेरुण्डा, वह्निवासिनी, महावज्रेश्वरी, शिवदूती आदि । **चक्र की मूल शक्तियाँ** – कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी, अहङ्काराकर्षिणी, शब्दाकर्षिणी, स्पर्शाकर्षिणी आदि । **चक्रेश्वरी** = त्रिपुरेशी । यो० चक्र = गुप्त यो० चक्र । **मुद्रा** = सर्वविद्राविणी । **शरीरस्थान** – गुदा से नीचे का देश **शरीरस्थ चक्र** – कुल । **'कादिभिरष्टभिरुचितमष्टदलाब्जं च वैखरीवर्गैः'** = क वर्ग से प्रारम्भ होने वाले अक्षरों के आठ वर्ग जो वैखरी शक्ति हैं, अष्टदल पद्म के अष्ट दलों पर स्थित हैं ॥ ३३ ॥

बिन्दुत्रयमयतेजस्त्रितयविकारस्थितानि वृत्तानि ।
भूबिम्बत्रयमेतत् पश्यन्त्यादित्रिमातृविश्रान्तिः ॥ ३४ ॥

(वृत्तत्रय के स्वरूप का वर्णन)

(अष्टदल एवं षोडशदल के ऊपर स्थित) तीन वृत्त बिन्दुत्रय से उद्भूत तेजस्त्रय के विकार हैं (अर्थात् सोम-सूर्य-अग्न्यात्मक हैं) । ये तीनों वृत्त भूपुर में स्थित हैं जहाँ कि पश्यन्ती प्रभृति तीन माताएँ विश्राम ग्रहण किया करती हैं ॥ ३४ ॥

* चिद्वल्ली *

तानि वृत्तानि मन्वश्रोपरि अष्टदलपद्मोपरि षोडशदलपद्मोपरि च स्थितानि । बिन्दुत्रयं पूर्वोक्तरक्तशुक्लमिश्रात्मकम् । तन्मयं तत्तेजस्त्रितयं सोमसूर्याग्निरूपम् । तद्विकारः

तन्मयानीत्यर्थः । तत्र वृत्तत्रयस्य तेजस्त्रयात्मकत्वकथनेन सोमसूर्यानलात्मत्रिखण्डमयत्वं चक्रस्योक्तम् । यथागमः –

त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम् । इति ।

सुभगोदये –

सोमसूर्यकृशान्वात्मतेजस्त्रितयरूपकम् ।
नेत्रत्रयं भावयामि वृत्तत्रितयमञ्जसा ॥

तद्विकारश्च तानि वृत्तानि वेदाः प्रमाणमितिवत् द्रष्टव्यम् । भूबिम्बत्रयं अणिमादि-ब्राह्म्यादि सर्वसङ्क्षोभिण्यादिशक्तिकदम्बकावासभूतं पश्यन्त्यादि त्रिमातृविश्रान्तिः । पश्यन्ती मध्यमावैखरीशक्तयः एतावत्पर्यन्तं विजृम्भमाणाः त्रिकोणादि भूपर्यन्तं श्रीचक्रात्मना चकासति इत्यर्थः । एतच्च 'आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला' इत्यारभ्य 'वैखरी विश्वविग्रहा' इत्यन्तेन ग्रन्थजातेन सम्यक् निरणायि ॥ ३४ ॥

* सरोजिनी *

'बिन्दुत्रय' = 'रक्त', 'शुक्ल' एवं 'मिश्र बिन्दु', **तेजस्त्रितय** = तेजस्त्रयात्मक = 'सोम', 'सूर्य' एवं 'अग्नि' । **'वृत्त'** = 'अष्टदल' एवं 'षोडशदल कमल' के ऊपर स्थित गोलाकार रचनाएँ । ये वृत्त चतुर्दश त्रिकोणों वाले चक्रों, अष्टदलों वाले कमल एवं षोडश दल वाले कमल को चारों ओर से आवृत करके स्थित हैं । **'तेजस्त्रितय'** – तीन बिन्दुओं से उत्पन्न होने के कारण तीन तेज बिन्दुत्रय का सारभाग हैं । आगमों में भी कहा गया है कि 'मातृका चक्र' चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि नामक तीन खण्डों से निर्मित होता है ।'

'विकार' – तीन बिन्दुओं एवं तीन तेजों से युक्त वृत्तत्रय । वृत्तत्रय तीन बिन्दुओं' एवं तीन तेजों के विकार या परिणाम (रूपान्तरण) हैं । **'भूबिम्बत्रयमेतत्'** = वृत्तत्रय भूपुर में स्थित हैं । **'पश्यन्त्यादिमातृविश्रान्तिः'** = 'पश्यन्ती', 'मध्यमा' एवं 'वैखरी' नामक वाक्त्रय रूप माताएँ 'त्रिकोण' से 'भूपुर' तक कार्य करती हैं । इन तीन वृत्तों में अणिमादि, ब्राह्मी आदि एवं सर्वसंक्षोभिणी अन्य शक्तियाँ निवास करती हैं ।

'बिन्दुस्त्रय', 'तेजस्त्रय', 'वृत्तत्रय', 'भूबिम्बत्रय', पश्यन्ती आदि 'मातृकात्रय'—

(क) 'बिन्दुत्रय' – 'रक्त', 'शुक्ल' एवं 'मिश्र बिन्दु' । 'गोरक्षशतक' में गोरक्षनाथ ने 'बिन्दु' के दो भेदों का उल्लेख किया है – (१) 'पाण्डुर', (२) 'लोहित' । 'स पुनर्द्विविधो बिन्दुः पाण्डुरो लोहितस्तथा ।' पाण्डुर = शुक्र । लोहित बिन्दु = महारज । सिन्दूर वर्ण का रज 'रवि' (नाभि) स्थान में एवं 'शुक्र' चन्द्रस्थान में रहने वाला बताया गया है । फिर कहा गया है कि –

'बिन्दुः शिवो रजः शक्तिश्चन्द्रो बिन्दू रजो रविः ।
उभयोः सङ्गमादेव प्राप्यते परमं पदम् ॥'

'शुक्र' चन्द्रमा से एवं 'रज' सूर्य से संयुक्त कहा गया है । इन दोनों के सामरस्य के ज्ञाता को ही वास्तविक योगी कहा गया है ।[१]

(ख) 'बिन्दुत्रय' – ३४वें श्लोक के 'रक्त' - 'शुक्ल' 'मिश्रबिन्दु' का सन्दर्भ जगत्-सृष्टि से है । शाक्त दर्शन के अनुसार शिवरूप 'प्रकाश' शक्ति रूप 'विमर्श' (स्फूर्तिरूप शक्ति) में प्रविष्ट होते हैं और फिर 'बिन्दु' का रूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार 'शक्ति' शिव में अनुप्रविष्ट हो जाती है, इसके अनन्तर 'बिन्दु' संवर्धित होता है । तब इससे 'नाद' (स्त्रीतत्त्व) निर्गत होता है । 'बिन्दु' और 'नाद' दोनों मिलकर 'मिश्र बिन्दु' बन जाते हैं। यही है नर-नारी का योग और कहलाता है 'काम' । 'श्वेत' एवं 'रक्त' बिन्दु (पुरुष एवं स्त्री तत्त्व के प्रतीक) 'काम' की कलाएँ हैं । ये तीनों पुनः संयुक्त बिन्दु बन जाते हैं । श्वेत, रक्त एवं मिश्र बिन्दु मिलकर एक हो जाते हैं और कहलाते हैं 'कामकला' ।

'तेजस्त्रय' – 'रक्त', 'शुक्ल' एवं 'मिश्र बिन्दु' से युक्त तेज को 'तेजस्त्रितय' कहते है – 'बिन्दुत्रयं पूर्वोक्तरक्तशुक्लमिश्रात्मकम् । तन्मयं तेजस्त्रितयं सोमसूर्याग्निरूपम्'[२] ॥ 'तेजस्त्रय' बिन्दुत्रय के विकार हैं – 'तद्विकारः तन्मयानीत्यर्थः'[३] ॥

यहाँ 'वृत्रत्रय' को तेजस्त्रयात्मक कहा गया है, अतः चक्र के 'सोमखण्ड', 'सूर्यखण्ड' एवं 'अग्निखण्ड' से युक्त होने की ओर संकेत किया गया है । कहा भी गया है – 'त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्' । 'सुभगोदय' में कहा गया है—

'सोमसूर्यकृशान्वात्मतेजस्त्रितयरूपकम् । नेत्रत्रयं भावयामि वृत्तत्रितयमञ्जसा ॥'

'श्रीचक्र' में – १. 'कामरूपपीठ' = अग्निचक्रात्मक । २. 'जालन्धरपीठ' = सूर्य-चक्रात्मक । ३. 'पूर्णगिरिपीठ' = सोमचक्रात्मक ४. 'ओड्याण पीठ' = ब्रह्मचक्रात्मक । 'नित्याषोडशिकार्णव' नामक ग्रन्थ में सम्पूर्ण चक्र को सोम-सूर्य-अग्नि, सृष्टि-स्थिति-लय आदि रूपों वाला कहा गया है—

'ततः सृष्टिर्महाचक्रं तृतीयं तु हुताशनम् ।
मध्यं स्थितिर्द्वितीयं तु संहारः प्रथमं च यत् ॥' (१ । ४२)

१. चतुरस्र पद्मद्वय = हुताशनाधिष्ठातृक 'सृष्टिचक्र' । चतुर्दशार दशारद्वय = सूर्याधिष्ठातृक 'स्थितिचक्र' अष्टार, मध्य त्र्यश्र = सोमाधिष्ठातृक 'संहारचक्र' ।

२. 'ऋजुविमर्शिनी' में इस चक्र को सर्वात्मक बताया गया है – 'सृष्टिस्थिति संहारात्मकं, सोमसूर्यवह्न्यधिष्ठातृकं, शक्तिकामवाग्भवबीजप्रधानं, ब्रह्मविष्णुमयं, जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्तिमयं, पृथिव्यन्तरिक्षाद्युपलक्षितमकारोङ्कारमकारविग्रहमृगादि शब्दराश्युज्ज्वलं क्रिया ज्ञानेच्छापरपर्यायं सत्त्वरजस्तमःस्वभावं सर्वदेवतासारं विश्वात्मकमिदं त्रैपुरं महाचक्रमिति'[४] ॥ 'पूर्वाम्नाय' = सृष्टिरूप, 'दक्षिणाम्नाय' = स्थितिरूप, 'पश्चिमाम्नाय' = संहाररूप,

---

१. योगशतक २. नटनानन्दनाथ - 'चिद्वल्ली' (श्लोक ३४) ।
३. नित्याषोडशिकार्णव, ऋजुविमर्शिनी, रत्नावली ।
४. ऋजुविमर्शिनी ।

'उत्तराम्नाय' = अनाख्य[१] ॥ इसी प्रकार – पूर्वाम्नाय – वाग्भवबीज, मनुकोण, द्विदशार आदि कामराजबीज के रूप हैं । 'अर्थरत्नावली' में 'श्रीचक्र' को नवनित्यामय, षोडशनित्यामय, समष्टि-सृष्टि, सृष्टि-सृष्टि, स्थिति-सृष्टि, संहार-सृष्टि अनाख्य रूप सृष्टिपञ्चक आदि सभी का मूल केन्द्र कहा गया है । 'योगिनीहृदय' में 'श्रीचक्र' को त्रिधाभावित रूप में तीन प्रकार का बताया गया है – १. सकल, २. सकलनिष्कल, ३. निष्कल । श्रीचक्र नवाधारमय, नवनादमय, त्रिधाभावित, बिन्दुत्रयात्मक, तेजस्त्रयात्मक आदि रूपों में अनन्तरूपों को अन्तर्गर्भित किये हुए है । परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी – इस वाक्चतुष्टय से भी 'श्रीचक्र' युक्त है ॥ ३४ ॥

एव 'मध्यं चक्रस्य स्यात्' इत्युपक्रम्य 'पश्यन्त्यादि त्रिमातृविश्रान्तिः' इत्यन्तं श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याश्चक्रं सम्यक् निरूप्य अनन्तरं तदावरणचक्रान्तर्गतशक्तिनिकुरुम्बं तन्निकटस्थितश्रीगुरुमण्डलमपि श्रीदेव्यवयवपरिणतिरूपमेवेत्याह—

क्रमणं पदविक्षेपः क्रमोदयस्तेन कथ्यते द्वेधा ।
आवरणं गुरुपङ्क्तिद्वयमिदमम्बा पदाम्बुजप्रसरम् ॥ ३५ ॥

(आवरणदेवता और गुरुमण्डल का परिचय एवं उनका स्वरूप)

'पदक्रम' पदविक्षेप एवं क्रमोदय है जो कि आवरणशक्ति एवं गुरुमण्डल (के रूप में) दो प्रकार का कहा गया है । ये दोनों माता त्रिपुरा के चरणकमलों के प्रसरण (गति) हैं ॥ ३५ ॥

*** चिद्वल्ली ***

इत्यादि अणिमादि भूतयोऽपि इत्यन्तम् । क्रमणं पदक्रमः । स च द्विविधः– पदविक्षेपरूपः क्रमोदयरूपश्च । तत्र पदविक्षेपो नाम – सुन्दर्या अनन्तकोटिकिरणात्मकानन्तशक्तिजननसामर्थ्यम् । तथा चोपनिषत् –

'मरीचयः स्वायम्भुवाः ये शरीराण्यकल्पयन्' । इत्यादि ।

तमेव भान्तमित्यादि । यथागमश्च –

ज्योती रूपा पराकारा तस्या देहोद्भवाश्च वै ।
किरणाश्च सहस्रं च द्विसहस्रं च लक्षकम् ॥
कोटिर्बुदमेतेषां परा सङ्ख्या न विद्यते ।
तामेवानुप्रविश्यैव भाति सर्वं चराचरम् ॥
यस्या देव्या महेशान्या भासा सर्वं विभासते ।
तद्भावरहितं किञ्चिन्न च इच्छा प्रकाशते ॥
तस्याश्च शिवशक्तेश्च चिद्रूपायाश्च तं विना ।
आद्यमापाद्यते नूनं जगदेतच्चराचरम् ।
तेषामनन्तकोटीनां मयूखानां महेश्वरि ॥

---

१. संकेत ।

मध्ये षष्ट्युत्तरं देवि त्रिशतं किरणाश्रिवे ।
ब्रह्माण्डं भासयन्त्येते पिण्डाण्डमपि पार्वति ॥ इत्यादि ।
सर्वपीठनिवासिन्यस्सर्वगाश्चिन्मरीचयः । इत्यादि ।
रश्मिचक्रं च परितो भक्तिनम्रः प्रपूजयेत् । इत्यमृतानन्दाः ।

'क्रमोदयो' नाम दिव्यसिद्धमानवौघरूपा अनन्तप्रकाशात्मकश्रीगुरुमण्डलात्मकतया प्रसरणम् । तथा रहस्याम्नाये – 'चरणद्वयचन्द्रार्करश्मयो गुरवः किल ।' इति । एतच्चोत्तरत्र प्रपञ्च्यते । एतदेव क्रमद्वयं विवृणोति – आवरणं आवरणचक्रस्थितशक्तिनिकुरुम्बं मञ्चाः क्रोशन्तीतिवत् । गुरुपङ्क्तिः गुरुमण्डलम् । इदं द्वयम् अम्बापादाम्बुजप्रसरः अम्बायास्त्रिपुरायाः पादाम्बुजस्य श्रीपादयुगलस्य । प्रसरः प्रसरणं विजृम्भणमिति यावत् । यजुश्रुतिः – 'ज्योतिष्मद्भाजमानं महस्वत्' इत्यादि । तथा प्रामाणिकवचनम् –

अनेककोटिभेदैस्तु गदितं त्रैपुरं महः ।
तत्र मध्ये परा दीप्ता महात्रिपुरसुन्दरी ॥

षडन्वयशाम्भवे च –

वरदाभयहस्ताश्च सर्वा वामार्धविग्रहाः ।
तेजोरूपाः परा ध्येयाः केवलं मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ ३५ ॥

* सरोजिनी *

'क्रमणं' = चलना, पदक्रम । 'पदक्रम' दो प्रकार का है – १. 'पदविक्षेप', २ 'क्रमोदय' ।

१. **'पदविक्षेप'** (चरणों का रखना) – यह त्रिपुरसुन्दरी की असंख्य शक्तियों को (जो कि उनकी अनन्त कोटि किरणों का प्रतिरूप या परिणतियाँ हैं) जन्म देने की शक्ति है ।

२. **क्रमोदय'** = देवी का दिव्य-सिद्ध-मानवौघ रूप का अनन्त प्रकाशयुक्त गुरुमण्डल के रूप में प्रसरण । 'रहस्याम्नाय' में कहा गया है—'चरणद्वय-चन्द्रार्करश्मयोः गुरवः किल ।'

'पदविक्षेप' के विषय में कहा गया है कि – 'सदाशिव से संयुक्त बिन्दु में महेश्वरी स्थित हैं, जो कि जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार करती हैं और साथ ही तत्त्वातीता हैं । वे ज्योतिरूपा एवं 'पराकारा' (अनिर्वचनीयस्वरूपा) हैं ।

उनके शरीर से हजार, दो हजार, लाख, कोटि एवं अरबों किरणें निकलती हैं । उन किरणों की कोई संख्या ही नहीं है । उन्हीं किरणों में ही प्रवेश करके यह समस्त चराचर जगत् स्थित है । इन देवी के प्रकाश से ही समस्त जगत् अस्तित्त्व में आता है – प्रकाशित होता है । उस शिव-शक्तिरूपा एवं चिद्रूपा देवी की सृजनात्मक इच्छाशक्ति के बिना यह चराचर जगत् निश्चित रूप से अन्धकार में लीन हो जायेगा । हे महेश्वरि ! उन देवी के अनन्त-कोटि किरणों के मध्य, जो कि चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि रूप है, तीन सौ साठ किरणें ब्रह्माण्ड में फैली हैं, जो कि उनके मध्य स्थित हैं । अग्नि की १०८, सूर्य की ११६ एवं

चन्द्रमा की १३६ किरणें हैं । ओ शाङ्करी ! ये किरणें समस्त ब्रह्माण्डों एवं पिण्डाण्डों को प्रकाशित करती हैं[१] ।' उपनिषदों में भी कहा गया है कि – 'मरीचयः स्वायम्भुवाः ये शरीराण्यकल्पयन्' । अर्थात् किरणें स्वयमेवोत्पन्न हैं और इन्होंने शरीरों की सृष्टि की है ।

'आवरणम्' = देवी के आवरण-चक्रों में स्थित वे आवरणशक्तियाँ जो कि देवी को चारों ओर से घेरे रहती हैं । ये वे शक्तियाँ हैं जो कि मनुष्य को देवी का दर्शन करने से रोकती हैं ।

'गुरुपंक्ति' – गुरुमण्डल । **'द्वयमिदम्'** = ये दो हैं ।

'पदाम्बुजप्रसरणम्' – ये दोनों देवी के चरणकमलों के प्रसरण या विजृम्भण (efforescne) हैं । कहा गया है कि त्रिपुरा का प्रकाश करोड़ों प्रकार से निरूपित किया गया है, किन्तु इनके मध्य महात्रिपुरसुन्दरी अनिर्वचनीय रूप से परमोत्कर्ष के साथ विभासित हो रही हैं ।

१. 'ज्योतिष्मद्भाजमानं महस्वद्' ।

२. 'अनेककोटिभेदैस्तु त्रैपुरं महः । तत्र मध्ये परा दीप्ता महात्रिपुरसुन्दरी ॥'
'वरदाभयहस्ताश्च सर्वा वामार्धविग्रहाः ।
तेजोरूपाः परा ध्येयाः केवलं मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥[२]

३. 'सर्वपीठनिवासिन्यस्सर्वगाश्चिन्मरीचयः ।'

(अ) 'रश्मिचक्रं च परितो भक्तिनम्रः प्रपूजयेत् ॥' (अमृतानन्द)

पदविक्षेप – (क) प्रत्येक चक्र के 'आवरण देवता' हैं । यथा – 'भूपुर' ।

१. प्रथम चतुरस्र में अणिमा, लघिमा आदि १० सिद्धियाँ हैं ।

२. द्वितीय चतुरस्र में ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि ८ देवमाताएँ हैं, जो कि अष्ट धातुओं (रक्त, मांस आदि) की निर्मात्री हैं ।

३. तृतीय चक्र में सर्वसंक्षोभिणी आदि १० मुद्राएँ हैं ।

---

१. ज्योतीरूपा पराकारा तस्या देहोद्भवाश्च वै ।
किरणाश्च सहस्रं च द्विसहस्रं च लक्षकम् ॥
कोटिर्बुदमेतेषां परा संख्या न विद्यते ।
तामेवानुप्रविश्यैव भाति सर्वं चराचरम् ॥
यस्या देव्या महेशान्या भासा सर्वं विभासते ।
तद्भावरहितं किञ्चिन्न च इच्छा प्रकाशते ॥
तस्याश्च शिवशक्तेश्च चिद्रूपायाश्च तं विना ।
आद्यमापाद्यते नूनं जगदेतच्चराचरम् ॥
तेषामनन्तकोटीनां मयूखानां महेश्वरि ॥
मध्ये षष्ट्युत्तरं देवि त्रिशतं किरणाश्शिवे ।
ब्रह्माण्डं भासयन्त्येते पिण्डाण्डमपि पार्वति ॥

२. षडन्वयशाम्भव ।

(ख) **षोडशदल पद्म में** – कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी आदि १६ शक्तियाँ हैं ।

(ग) **अष्टदल पद्म में** – अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला आदि ८ शक्तियाँ हैं ।

(घ) **चतुर्दशार में** – सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी आदि १४ देवता हैं । इस आवरण की चक्रेश्वरी हैं – 'त्रिपुरवासिनी' ।

(ङ) **बहिर्दशार में** – सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पत्प्रदा, सर्वप्रियङ्करी, सर्वमङ्गलकारिणी, सर्वकामप्रदा, सर्वदुःखविमोचिनी, सर्वमृत्युप्रशमिनी, सर्वविघ्ननिवारिणी, सर्वाङ्गसुन्दरी सर्वसौभाग्यदायिनी १० देवता हैं ।

(च) **अन्तर्दशार में** – सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यप्रदा आदि १० इसकी चक्रस्थ मूल शक्तियाँ हैं । चक्रेश्वरी = त्रिपुरमालिनी ।

(छ) **अष्टकोण में** – वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिता, सर्वेश्वरी, कौलिनी आदि ८ वाग् देवता हैं ।

(आ) (ज) **त्रिकोण में** – कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमालिनी चक्र की मूल शक्तियाँ हैं ।[1]

क्रमोदय – इसी प्रकार गुरुमण्डल – 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः' (भावनोपनिषद्)

इस विद्या में मुख्यतः दो सन्तानें हैं – १. कामराज सन्तान, २. लोपामुद्रा सन्तान । त्रिपुरासिद्धान्तप्रतिपाद्य श्रीविद्या के १२ सम्प्रदाय थे – मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव एवं क्रोधभट्टारक दुर्वासा । गुरुपंक्ति के तीन प्रकार हैं – १. दिव्यौघ, २. सिद्धौघ, ३. मानवौघ । १. चर्यानाथ, २. उडुनाथ, ३. षष्ठनाथ, और ४. मित्रेशनाथ – दिव्यौघ क्रम के क्रमशः सत्ययुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग के गुरु थे । इसी प्रकार अन्य क्रमों के भी गुरु थे ॥ ३६ ॥

तत्प्रसारप्रसरणीं क्रमशो विवृणोति—

सेयं परा महेशी चक्रकारेण परिणमेत यदा ।
तद्देहावयवानां परिणतिरावरणदेवतास्सर्वाः ॥ ३६ ॥
आसीनां बिन्दुमये चक्रे सा त्रिपुरसुन्दरी देवी ।
कामेश्वराङ्कनिलया कलया चन्द्रस्य कल्पितोत्तंसा ॥ ३७ ॥
पाशाङ्कुशेक्षुचापप्रसूनशरयञ्च काञ्चित् स्वकरा ।
बालारुणारुणाङ्गी शशिभानुकृशानुलोचनत्रितया ॥ ३८ ॥

(आवरणदेवता और उनका स्वरूप)

वही यह सर्वोत्कृष्ट सर्वोपरि महासाम्राज्ञी जब चक्र के रूप में परिणत हो जाती है तब उसके शरीरावयव आवरणदेवता के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

---

१. 'सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमेत यथा ।
तद्देहावयवानां परिणतिरावरणदेवताः सर्वाः' ॥ (कामकलाविलासः ३६)

(महात्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप का वर्णन)

वे त्रिपुरसुन्दरी देवी बिन्दुत्रय चक्र (सर्वानन्दमय चक्र) में आसीन हैं । (वे) कामेश्वर की क्रोड में स्थित हैं । उन्होंने चन्द्रमा की एक कला को अपने मस्तक पर आभूषण के रूप में स्थापित कर रखा है ॥ ३७ ॥

(त्रिपुरसुन्दरी देवी का स्वरूप)

वे अपने हाथों में पाश, अंकुश, इक्षु-धनुष एवं पाँच पुष्पबाण धारण की हुई हैं । वे उदीयमान सूर्य की भाँति रक्त वर्ण की है । चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि उनकी तीन आँखें हैं ॥ ३८ ॥

*** चिद्वल्ली ***

सेयमपरिच्छिन्नान्ततेजोराशिमयी परा सर्वोत्कृष्टा महेशी अनन्तकोटियोगिनीवृन्द-समाराधितनित्यनिरवधिकातिशयानन्दमयात्मसाम्राज्यसम्पदाभिमानशालिनी । यजुःश्रुतिः — 'यतो वा' । इत्यादि । तथा चोक्तम् —

'चतुष्षष्टियुताः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम् ।
चक्रमेतत् समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिताः' ॥ इति ।

ललितोपाख्याने च —

वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीदृक्तया न कलनीयमनन्यतुल्यम् ।
त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्रसाम्राज्यसम्पदभिमानमभिस्पृशन्ति ॥

इति चक्राकारेण, चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमातृकम् । इति सर्वानन्दमयबैन्दवादि— त्रैलोक्यमोहनान्तचक्रनवकात्मना, स्फुरत्तामात्मनः पश्येत् इति पूर्णानन्दमयात्मावलोकन-समये परिणमेत । आकारान्तरमावहेत प्रार्थनायां लिङ् । दिङ्मात्रप्रपञ्चप्रादुर्भावस्य प्रार्थनाविषयत्वात् । ब्रह्मणः परिणामश्रुत्यैवाभिधीयते यथा — 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेतीति सृष्टिं प्रस्तुत्य तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् निरुक्तं चानिरुक्तं च निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च सत्यं चानृतं च सत्यम-भवत् ।' स्मृतिश्च—अस्यां परिणतायामित्यादि । तद्देहावयवानां तस्यास्त्रिपुरसुन्दर्या देहस्तेजःपुञ्जात्मकः तस्यावयवाः किरणाः तेषां परिणतिरवस्थान्तरापत्तिरिहावरणदेवताः वशिन्याद्यणिमान्तशक्तिनिकुरुम्बं चिदानन्दसमुद्रात्मकमेव समुद्रसकाशात्फेनबुद्बुद तरङ्गादि-वदनन्तकोटिशक्तयः आविर्भावतिरोभावौ भजन्त इत्यर्थः । तथा चोपनिषत् —

यस्मिन् भावाः प्रलीयन्ते लीनाश्च व्यक्ततां ययुः ।
पुनश्चाव्यक्ततां भूयो जायन्ते बुद्बुदा इव ॥

चतुश्शत्यां च —

एवं रूपं परं तेजः, श्रीचक्रवपुषा स्थितम् ।
तदीयशक्तिनिकरस्फुरदूर्मिसमावृतम् ॥ इति ।

सुभगोदयवासनायामपि –

चक्रराजे परामृश्य योगिनीः प्रकटादिकाः ।
विमर्शाख्यचिदम्भोधिलहरीस्था अपि क्रमात् ॥
यस्या उल्लसिता एता योगिन्यश्चिद्घनत्विषः ।
चक्रेश्वरे भजाम्येताः चक्रं चक्रं समाश्रिताः ॥ इति ।

वशिन्याद्यावरणशक्तिस्वरूपवर्णनमारभमाणः तदादौ मूलदेवीस्वरूपमाह—आसीनेत्यादि । बिन्दुमये सर्वानन्दमयाख्ये परमाकाशे बैन्दवे परमाकाशे इत्युक्तत्वात् । चक्रे आत्मसङ्क्रमणविहरणार्हपीठे । तथा रहस्योपनिषदि – यदेषा चक्रमत्तच्च क्रमभवदिति । आसीना उपरिप्रदेशे विराजमाना सा देशकालाकारानवच्छिन्ना तत्स्वरूपिणी त्रिपुरसुन्दरी सर्वकारणत्वेन स्पृहणीयस्वभावा देवी विश्वजननादिसर्वव्यापारविनोदिनी कामेश्वराङ्कनिलया कामेश्वरस्य श्रीनाथस्य अङ्कं वामोरुतलभागः निलयः अवस्थानं यस्यास्सा । तथा चोक्तं परमशिवेन ।

कला विद्या पराशक्तिः श्रीचक्राकाररूपिणी ।
तन्मध्ये बैन्दवं स्थानं तत्रास्ते परमेश्वरी ॥
सदाशिवेन सम्पृक्ता सर्वतत्त्वातिगा सती ॥ इति ।

अन्यत्र च –

विश्वाकारप्रभाधारनिजरूपशिवात्मकम् ।
कामेश्वराङ्कपर्यङ्कनिविष्टमतिसुन्दरम् ॥ इति ।

श्रीनाथानन्दश्च –

आदिश्रीगुरुनाथस्य वामाङ्कोपरि संस्थिताम् । इति ।

देवी विश्वसर्जनादिव्यापारविनोदिनी । चन्द्रस्य कलया कल्पितोत्तंसा । अत्र कल्पितपदेन चन्द्रमण्डलस्य भगवतीलीलोपकरणत्वं लक्ष्यते ।

पाशाङ्कुशेक्षुचापप्रसूनशरपञ्चकाञ्चितस्वकरा । इतिपाशः स्वात्मरूपभेदबन्धनसन्धानभूतेच्छाशक्तिस्वरूपः । अङ्कुशः स्वरूपभेददलनोपायात्मकज्ञानशक्तिमयः । इक्षुचापेषुपञ्चके स्वभिन्नाकारावर्जनसाधनरूपक्रियाशक्तिरूपे । अयमर्थः – इच्छाज्ञानक्रियाशक्तय एव तदाज्ञया पाशादिस्वरूपमापन्नाः तदुपासनमाचरन्तीत्यर्थः । तथा च चतुश्शत्याम् –

इच्छाशक्तिमयं पाशमङ्कुशं ज्ञानरूपिणम् ।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषी दधदुज्जला ॥ इति ।

सुभगोदयवासनायामपि –

देव्यासंवित्सत्तायाः भेदोद्गमनहेतुकाः ।
आयुधाख्याः पराः शक्तीर्बाणाद्याः पूजयाम्यहम् ॥ इति ।

बालारुणारुणाङ्गी उदादित्यसङ्काशा। शशिभानुकृशानुलोचनत्रितया सोमसूर्याग्निमय-त्रिनयना । तथा चोक्तम् –

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशधरां चापं धारयन्तीं शिवां प्रिये ॥ इति ॥ ३६–३८ ॥

* सरोजिनी *

सेयं = सा + इयं अर्थात् यही । वही यह । (सा परा) । परिच्छेदशून्य अनन्त-तेजोराशिरूपिणी, सर्वोत्कृष्टा – अनन्तकोटियोगिनी समूह द्वारा सम्पूजित एवं नित्य एवं निरवधिक अतिशयानन्दमयी महेशी ।) **'महेशी'** = साम्राज्ञी । **चक्राकारेण** = चक्र के रूप में । यहाँ चक्र से तात्पर्य श्रीचक्र से है, जो कि नौ चक्रों से मिलकर निर्मित होता है और जिसका प्रथमावयव बिन्दु एवं अन्तिम 'त्रैलोक्यमोहन' है । 'नित्याषोडशिकार्णव' में कहा गया है – 'वह नौ चक्रों से निर्मित श्रीचक्र, जिसमें विभिन्न प्रकार के नौ मन्त्र स्थित हैं ।' **'परिणमेत'** = परिणत होता है, परिवर्तित होता है । अर्थात् जब वह उस आत्मा का साक्षात्कार करती है जो कि पूर्णानन्दमयी है और विभिन्न रूपों को ग्रहण करती है ॥ (योगिनीहृदयः नित्याषोडशिकार्णव) । **'तद्देहावयवानां'** = उसके शरीर के अङ्गों का । उस शक्ति का शरीर तेजोमय है, उसके शरीर के अङ्ग किरणें हैं । **'परिणमेत'** में परिणमन शब्द अवस्थान्तर या दशान्तर का सूचक है । **'आवरणदेवता'** – महात्रिपुरसुन्दरी को आवृत करके स्थित संख्यातीत वे शक्तियाँ जो कि वशिनी एवं अणिमादिक कहलाती हैं और जो कि चिदानन्दसमुद्र की अंश हैं । ये अनन्त शक्तियाँ इस आनन्दपयोधि की सतह पर बुलबुले की भाँति विद्यमान हैं ।

'चूलिकोपनिषद्' में कहा गया है कि 'जिसमें सभी प्राणी लय हो जाते हैं और जिसमें ये सभी लयीभूत प्राणी पुनः-पुनः प्रकट होते रहते हैं और पुनः बुलबुलों की भाँति बढ़ते हैं ।'

'नित्याषोडशिकार्णव' में कहा गया है कि प्रकाश एवं शक्ति रूप उस तेज से निर्मित 'श्रीचक्र' में शक्तियाँ जल-तरङ्गों की भाँति निवास करती हैं ।

आवरणदेवता—'त्रैलोक्यमोहन चक्र' में – अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति और सर्वकामसिद्धि—१० सिद्धियों एवं ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और महालक्ष्मी ८ शक्तियों की प्रकट योगिनियों की आवरणदेवता के रूप में पूजा होती है ।

'सर्वाशापरिपूरक चक्र' (षोडशार) में—कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी, अहङ्कारा-कर्षिणी, शब्दाकर्षिणी, स्पर्शाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, गन्धाकर्षिणी, चिन्ताकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी, स्मृत्याकर्षिणी, नामाकर्षिणी, बीजाकर्षिणी, आत्माकर्षिणी, अमृताकर्षिणी और शरीराकर्षिणी १६ देवियों की पूजा होती है ।

'सर्वसंक्षोभण चक्र' (अष्टार) में—गुप्ततर योगिनियों (अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गरेखा, अनङ्गवेगिनी, अनङ्गाकुशा एवं अनङ्गमालिनी आदि गुप्ततर योगिनियों) की पूजा की जाती है ।

सर्वसौभाग्यदायक चक्र' (चतुर्दशार) में—सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वाह्लादिनी, सर्वसम्मोहिनी, सर्वस्तम्भिनी, सर्वजृम्भिणी, सर्ववशङ्करी, सर्वरंजिनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसम्पत्तिपूरिणी, सर्वमन्त्रमयी, सर्वद्वन्द्वकरी – १४ सम्प्रदाय योगिनियों की पूजा की जाती है ।

'सर्वार्थ साधक चक्र' (बहिर्दशार) में—सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पत्प्रदा, सर्वप्रियङ्करी, सर्वमङ्गलकारिणी, सर्वकामप्रदा, सर्वदुःखविमोचिनी, सर्वमृत्युप्रशमिनी, सर्वविघ्ननिवारिणी, सर्वाङ्गसुन्दरी, सर्वसौभाग्यदायिनी – इन १० योगिनियों की पूजा होती है ।

'सर्वरक्षाकर चक्र' (प्रथम दशार) में—सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधिविनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी, सर्वेप्सितफलप्रदा – इन १० देवियों की पूजा होती है । इसी प्रकार 'सर्वरोगहर चक्र', 'सर्वसिद्धिप्रद चक्र' एवं 'सर्वानन्दमय चक्र' में भी योगिनियों की पूजा की जाती है ॥ ३६ ॥

'बिन्दुमय चक्र' = बिन्दुमय चक्र में । **'बिन्दु'** = बैन्दव परमाकाश अर्थात् 'सर्वानन्दमय चक्र' में । 'चक्र' उस पीठ को कहते हैं जिसमें कि शक्ति आत्मा के साथ एकता एवं आनन्द प्राप्त करती है । **'आसीना'** = निवास करती है । वह बिन्दु के ऊपर विभासित हो रही है । **'सा त्रिपुरसुन्दरी'** – वह त्रिपुरसुन्दरी । **'सा'** = वह । 'सा' शब्द का प्रयोग यह द्योतित करने हेतु हुआ है जो कि वह देशकाल से परे है, तत्स्वरूपिणी है, पूजनीय है एवं सर्वोत्पादिका है । **'कामेश्वराङ्कनिलया'** = कामेश्वर शिव की गोद में अर्थात् उनके वाम जङ्घा पर । 'भैरवयामल' में कहा गया है कि 'पराशक्ति की महानता की अनुभूति 'श्रीचक्र' के रूप में होती है । इस चक्र के मध्य में 'बिन्दु' है । वह सदाशिव के साथ संयुक्त है और समस्त तत्त्वों से अतीत एवं सद्रूपा है । ओ ईश्वरी ! त्रिपुरसुन्दरी का चक्र स्वयं ब्रह्माण्ड है ।' **'देवी'** = जो प्रकाश से उद्दीप्त है और जो अपने सृष्टि-व्यापार या प्रपञ्च में अपना आत्मविनोदन करती हो । **'कलया चन्द्रस्य'** = चन्द्रमा की कला से । **'कल्पित'** = चन्द्रमण्डल का लीलोपकरण 'कला' विश्वजीवन है । 'कल्पित' शब्द का अर्थ है स्थित या स्थापित । चन्द्रमण्डल भगवती के आनन्दोपभोग का उपकरण है । देवी के द्वारा चन्द्रमा की कला को अपने मस्तक पर आभूषण के रूप में स्थापित की गई हैं ॥ ३७ ॥

'पाश' = इच्छाशक्ति का प्रतीक । जीवात्मा एवं परमात्मा में भेद उत्पन्न करने वाली बन्धन शक्ति ही पाश है । **'अंकुश'** = यह ज्ञानशक्ति का प्रतीक है । इसी शक्ति के द्वारा स्व एवं रूप में उत्पन्न भेद का विनाश होता है । **'इक्षुचापप्रसूनशरपञ्चक'** = ईख, धनुष, पञ्चपुष्प बाण । ये देवी की क्रियाशक्ति के प्रतीक हैं । अर्थात् इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्तियाँ देवी की आज्ञा से पाशादिक के रूप में आकार ग्रहण किए हुए हैं । कहा भी गया है—

'इच्छाशक्तिमयं पाशमङ्कुशं ज्ञानरूपिणम् ।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषी दधदुज्ज्वला ॥'

'कर्णसंस्तुतावती' में भगवती त्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

'भवानि श्रीहस्तैर्वहसि फणिपाशं सृणिमधो
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्रक्शुकवरम् ।
अथ द्वाभ्यां मुद्रामभयवरदानैकरसिके
क्वणद्वीणां द्वाभ्यामुरसि च कराभ्यां च विभृषे' ॥

'सुभगोदय' में कहा गया है—'सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम् । पाशाङ्कुश धनुर्बाणहस्तां ध्यायेत्सुसाधकः ॥' भगवती के आयुधादिक आत्मपूजाविधान में प्रतीकार्थ के रूप में प्रयुक्त हैं—

'पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ ।
शब्दस्पर्शादयो बाणाः मनस्तस्याभवद्धनुः ॥
करणेन्द्रियचक्रस्थां देवीं संवित्स्वरूपिणीम् ।
विश्वाहङ्कारपुष्पेण पूजयेत्सर्वसिद्धिभाक्'[१] ।

'शशिभानुकृशानुलोचनत्रितया' कहकर जहाँ भगवती की आँखों को चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि कहा गया है वहीं अन्यत्र सूर्य-चन्द्र को स्तन एवं नेत्र दोनों भी कहा गया है—

'सूर्यचन्द्रौ स्तनौ देव्याः तावेव नयने स्मृतौ ।
उभौ ताटङ्कयुगलमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥'

'नित्याषोडशिकार्णव' में महात्रिपुरसुन्दरी के स्वरूप का निम्नानुसार वर्णन किया गया है—'शक्तिबीजे पराशक्तिरिच्छैव शिवरूपिणी । एवं देवी त्र्यक्षरा तु महात्रिपुरसुन्दरी'[२] ॥

'बह्वृचोपनिषद्' में कहा गया है कि 'सैषा पराशक्तिः । सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्या वा । हादिविद्या वा सादिविद्येति । सैव पुत्रत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य वहिनन्दरवासी देशकालस्त्वन्तरासङ्गात् महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चितिः'[३] । अखण्ड आनन्दाकार स्वात्मदेवता ही ललिता हैं[४] ॥ ३६-३८ ॥

एतदेव दिव्यमिथुनं दिव्यसिद्धमानवौघभावेन अविशेषभेदभिन्नगुरुमण्डल-स्वरूपमुपास्याह—

तन्मिथुनं गुणभेदादास्ते बिन्दुत्रयात्मके त्र्यश्रे ।
कामेशी मित्रेशप्रमुखद्विन्द्वत्रयात्मना विततम् ॥ ३९ ॥

(दिव्य दम्पति का वर्णन)

वह (कामेश्वर-कामेश्वरी रूप) दम्पति तीन बिन्दुओं से विरचित त्रिकोण में स्थित है । वे गुणभेद (स्वरूप-परिवर्तन) के कारण तीन अन्य दम्पतियों का स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं, जिनमें प्रथम है कामेशी-मित्रेश ॥ ३९ ॥

---

१. वामकेश्वर तन्त्र ।
२. दीपिका ।
३. बह्वृचोपनिषद् ।
४. 'सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता' । (भावनोपनिषद्)

* चिद्वल्ली *

तन्मिथुनं ततः सर्वातीतत्त्वेन सर्वोपनिषत्प्रसिद्धं मिथुनं कामकामेश्वरीमयम् । अयमर्थः – परमात्मा हि स्वात्मानमेव स्त्रीपुंसमयं कृत्वा मिथुनरूपमापन्नो विहरते । अत्र श्रुतिः – 'स एको नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमेत स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ स इममात्मानं द्विधाऽपातयत् । ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्' इत्यारभ्य, 'यदिदं किञ्चिन्मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वं सृजति' इत्यन्तेन मिथुनात्मना विहरणशीलं ब्रह्मेत्याह । तथा रहस्यागमश्च—

गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिव । इति ।

इत्यादिप्रकाशविमर्शात्मना मिथुनीभूतः परमशिवादेव सकलं तन्त्रं समभवदित्याह । एवं तन्मिथुनं कामकामेश्वरीरूपं मित्रेशनाथकामेश्वरी श्रीमदुड्डीशनाथ–वज्रेश्वरी षष्ठीशनाथ–भगमालिनी । एवमादिमिथुनत्रयात्मना दिव्यसिद्धमानवौघादिक्रमरूपेण विततं मिथुनत्रयं विस्तृतमित्यर्थः ।

एतच्च आसीना श्रीपीठे कृतयुगकाले गुरुशिवो विद्याम् इत्यत्र सम्यक् प्रपञ्चयिष्यामि । रहस्योपनिषदि चायमर्थस्सम्यक् निरूपितः । यथा मध्ये चक्रं बिन्दुः बिन्दौ प्रपञ्चो लोकः लोको देहस्सनादरूपः अर्थात्मिका शक्तिः चक्रं तनुः बिन्दुः प्राणः मध्ये शक्तिरिति सप्रपञ्चो गुणः गुणो लिङ्गं स्वयम्भवादिभेदेन त्रिधा भूतं त्रिलिङ्गिनां जयदं कामेकामरूपं कैवल्यम् उड्यानं पूर्णगिरिजालन्धरं यत्पुरुषा देवी सात्त्विका भवति । अत्रेदं व्याख्या स्यात् – 'यदिदं नीलकण्ठः शमीगर्भायोवाच । यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति पृच्छति यदिदं दृश्यते तदानन्दयोनिः तेनैव जीवति तदेव जीवतीति तदेषाभ्युक्ता' इत्यादिना त्रिपुराचक्रनिरूपणपुरस्सरं सकलप्रपञ्चानां त्रिपुराया एव सकाशादुत्पत्तिजीवनलयाः प्रतिपाद्यन्ते ततश्च सर्वफलप्रदायिनी त्रिपुरैव श्रीदेवीस्वरूपैर्वीरैर्भजनीयेत्युक्तं भवति । तथा रहस्यागमश्च –

यस्य नो पश्चिमं जन्म यदि वा शङ्करः स्वयम् ।
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी ॥ ३९ ॥

* सरोजिनी *

तत् = काम-कामेश्वरी । **'तत्'** = सर्वोत्कृष्ट, प्रसिद्ध, सर्वातीत शक्ति । **मिथुन** = कामेश्वर एवं त्रिपुरासुन्दरी रूप दिव्य दम्पति । भाव यह है कि परमात्मा अपने को स्त्री एवं पुरुष के रूप में विभाजित करते हुए अर्थात् अपने को दम्पति बनाकर विहार करता है । श्रुति में भी कहा गया है कि वह ब्रह्म अकेला होने के कारण रमण नहीं कर सका, अतः उसने दूसरे की इच्छा की । उसने अपने को स्त्री-पुरुष दो के रूप में विभाजित कर लिया और इस प्रकार पति-पत्नी बन गये ।

'मिथुन' = काम-कामेश्वरी रूप मित्रेशनाथ-कामेश्वरी, उड्डीशनाथ–वज्रेश्वरी एवं षष्ठीशनाथ-भगमालिनी – ये 'आदि मिथुनत्रय' हैं । 'रहस्यागम' में कहा गया है कि स्वयमेव

सदाशिव ही गुरु एवं शिष्य दो रूपों में स्थित हो गये—'गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः' । 'तन्त्रराजतन्त्र' के अनुसार 'मिथुन' जो कि काम एवं कामेश्वरी का संयुक्त रूप है, उसने – १. मित्रेशनाथ एवं कामेश्वरी, २. उड्डीशनाथ एवं वज्रेश्वरी तथा ३. षष्ठीशनाथ एवं भगमालिनी के रूप में दिव्य, सिद्ध एवं मानवौघ दम्पतियों का रूप धारण कर लिया ।

'प्रकाश' एवं 'विमर्श' मिथुनीभूत रूप में 'दिव्यौघ', 'सिद्धौघ' एवं 'मानवौघ' रूप में गुरुमण्डल (गुरुपंक्ति) के रूप में भी रूपान्तरित होकर अवतरित होता है । 'श्रीचक्र' के 'त्रिकोण' में भी इनका अवस्थान है—

'ततश्चान्तस्त्रिकोणोऽपि गुरुपंक्तिं त्रिधा स्थितांम्'[१] । 'श्रीचक्रस्य त्रिकोणे त्रिधा स्थितां दिव्य-सिद्ध-मानवौघत्रयवतीं गुरुपंक्तिम्'[२] । 'त्रिकोणेऽप्यन्तर्विन्दोः पश्चाद् भागे पंक्तित्रयेणोपविष्टां दिव्य-सिद्ध-मानवौघात्मिकां ..... गुरुपंक्तिम्'[३] । अन्य तान्त्रिक ग्रन्थों में गुरुपंक्ति के रूप में 'गुरु', 'परम गुरु', 'परापर गुरु' एवं 'परमेष्ठी गुरु' को 'गुरुपात्र' में आहुति देने का निर्देश दिया गया है[४] । 'दिव्याङ्ग' (दिव्यौघ) 'सिद्धाङ्ग' (सिद्धौघ) एवं 'मानवाङ्ग' इन तीनों प्रकार के गुरुओं की पूजा का निर्देश दिया गया है । गुरुमण्डल (१) महाप्रकाशरूप, परमानन्दलक्षण परमशिव = 'प्रथम गुरु' । निर्विशेष बिन्द्वात्मा स्वेच्छावश कृतयुग में अपने को कामेश्वर-कामेश्वरी नाम से प्रकट करके 'चर्यानाथ' कहलाये 'उड्डुनाथदेव' त्रेता के गुरु कहलाये । 'षष्ठनाथ' द्वापर के गुरु कहलाये । 'मित्रेशनाथ' कलि के गुरु कहलाये[५] ॥ ३९ ॥

इतः परमावरणदेवतास्वरूपभावौ वर्णयति—

वसुकोणनिवासिन्यो यास्ताःसन्ध्यारुणावशिन्याद्याः ।
पुर्यष्टकमेवेदं चक्रतनोस्संविदात्मनो देव्याः ॥ ४० ॥

(आवरणदेवताओं का स्वरूप)

वे जो कि अष्टकोणों वाले चक्र में रहती हैं, वे वशिनी आदि (देवियाँ) हैं जो कि साध्य सूर्य की भाँति रक्तवर्ण की हैं । यह (अष्टकोणों वाला चक्र) देवी का अष्टात्मक (सूक्ष्म) शरीर है, जो कि चक्र है तथा जिसकी आत्मा संवित् है ॥ ४० ॥

*** चिद्वल्ली ***

वसुकोणनिवासिन्यः सर्वरोगहराख्यचक्रनिवासनशीलाः याः वशिन्याद्यष्टशक्तयः ताः पूर्णाहम्भावदानसमर्थाः । कथं तत्र रोगहारित्वं नाम पूर्णाहम्भावप्रदत्वमेव । अपूर्ण मन्यतां व्याधिः कार्पण्यैकनिदानभूरित्युक्तेः । सर्वरोगहरा एताः विमृशादिविशेषतः । इत्यभियुक्तमोक्तेश्च । एवम्भूतास्तास्सन्ध्यारुणाः अरुणाकारा भासन्त इत्यर्थः । अत

---

१. योगिनीहृदय ।
२. अमृतानन्द—'दीपिका' ।
३. भास्करराय'—सेतुबन्ध'
४. महानिर्वाणतन्त्र ।
५. ऋजुविमर्शिनी ।

एवेदमष्टकोणचक्रं संविदात्मनः सामीप्यात् ज्ञानमेवात्मनः स्वरूपं यस्यास्सा । 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इति श्रुतेः स्वसंवित् पुरादेवीत्यागमश्च । देव्याः बहुस्यामिति विहरणस्वभावायाः चक्रतनोः चक्रात्मिकायाः पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमित्यर्थः । तथा चोक्तम् –

चितिश्चित्तं च चैतन्यं चेतनाद्वयमेव च ।
जीवः कलाशरीरं च सूक्ष्मं पुर्यष्टकं भवेत् ॥ इति ।

शिवानन्दाश्च –

अष्टारांशप्रवेशोऽयं चिन्निर्याणेषु सादिकम् ।
सूक्ष्मं पुर्यष्टकं देव्यामविशेषमगौरवम् ॥ इति ॥ ४० ॥

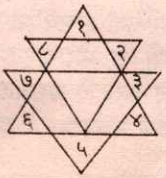
* सरोजिनी *

'वसुकोणनिवासिन्यो:' = अष्ट त्रिकोणों के चक्र में निवास करने वाले । अष्ट त्रिकोणों का चक्र 'सर्वरोगहर' कहलाता है । इस चक्र में वशिनी आदि देवियाँ निवास करती हैं । ये सभी शक्तियाँ पूर्णाहन्ता से उत्पन्न होने वाले आनन्द प्रदान की क्षमता रखती हैं । **'सन्ध्यारुणा'** = ये शक्तियाँ सन्ध्याकालीन सूर्य की भाँति प्रकाशित होती है, अतः इन्हें 'सन्ध्यारुणा' कहा गया है । **'वशिन्याद्याः'** – वशिनी आदि शक्तियाँ । **'संविदात्मा'** = परमज्ञान रूप आत्मा वाली । 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' कहकर श्रुति ब्रह्म को सत्य, ज्ञान एवं अनन्त रूप बताती हैं । आगम भी कहता है कि देवी त्रिपुरा स्वसंविदात्मक हैं, **'चक्रतनोः'**= चक्र रूप शरीर वाली देवी का । **'चक्र'** = श्रीचक्र । **'पुर्यष्टक'** = सूक्ष्म शरीर । सूक्ष्म शरीर के आठ अङ्ग हैं – चिति, चित्त, चैतन्य, चेतन, इन्द्रियकर्म, जीव, कला एवं शरीर । देवी के स्थूल शरीर के निम्न अङ्ग हैं – १. कर्मेन्द्रियाँ, २. ज्ञानेन्द्रियाँ, ३. मन, ४. प्राण, ५. पञ्चभूत, ६. काम, ७. कर्म, ८. तमस ।

'वसुकोण'[१] – इसका **आकार** अष्टार है, **रंग** हरा है, **खण्ड** अग्निखण्ड है, **चक्र** सृष्टिचक्र है, **वर्णाक्षर** – य, र, ल, व, श, ष, स, ह हैं, **अग्निदश कलाएँ** – धूम्रार्चिषी, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा, कव्यवहा । **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ** = वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, वरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी । **चक्रेश्वरी** = त्रिपुरा सिद्धा । **'योगिनी चक्र'** = रहस्ययोगिनी चक्र । **मुद्रा** = खेचरी मुद्रा । **देहस्थ अवयव** – शीत, ऊष्ण, सुख-दुःख, स्वेच्छा, सत, रज एवं तम । **शरीरस्थान** = कण्ठ । **शरीर चक्र** = विशुद्ध चक्र (षोडशदल, षोडशस्वरमय) । **'पुर्यष्टक'** = सूक्ष्म शरीर—

---

१. जिस वसुकोण (अष्टार) का उल्लेख किया गया है, उसका रेखात्मक रूप निम्नांकित है—



'चितिश्चित्तं च चैतन्यं चेतनाद्वयमेव च ।
जीवः कलाशरीरं च सूक्ष्मं पुर्यष्टकं भवेत् ॥'

शिवानन्द कहते हैं—

'अष्टारांशप्रवेशोऽयं चिन्निर्याणेषु सादिकम् ।
सूक्ष्मं पुर्यष्टकं देव्यामविशेषमगौरवम् ॥'

'चक्रतनोः' = चक्र रूप शरीर वाली । **'चक्र'** = श्रीचक्र । महाबिन्दु, 'सर्वानन्दमय चक्र', 'सर्वसिद्धिप्रद चक्र', 'सर्वरोगहर चक्र', 'सर्वरक्षाकर 'चक्र', 'सर्वार्थसाधक चक्र', 'सर्वसौभाग्यदायक चक्र', 'सर्वसंक्षोभण चक्र', 'सर्वाशापरिपूरक चक्र', 'भूपुर' (महाबिन्दु, बिन्दु, 'त्रिकोण', 'अष्टकोण', 'अन्तर्दशार', 'बहिर्दशार', 'चतुर्दशार', 'अष्टदल', 'षोडशदल' एवं 'भूपुर') – नामक अङ्गों से युक्त 'श्रीचक्र' ही यहाँ चक्र कहा गया है । इसका स्वरूप निम्नानुसार है –

'नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः' ।
'चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः ।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ॥'

अर्थात् श्रीचक्र नवयोन्यात्मक है तथा शिव-शक्ति का शरीर है ॥ ४० ॥

तद्विषयवृत्तयस्ताः सर्वज्ञादिस्वरूपमापन्नाः ।
अन्तर्दशारनिलया लसन्ति शरदिन्दुसुन्दराकाराः ॥ ४१ ॥

('सर्वरक्षाकर चक्र' में स्थित 'निगर्भयोगिनी' नामक शक्तियों का स्वरूप)

उसकी शक्तियाँ सर्वज्ञ आदि रूपों को धारण करके आन्तर दशकोणात्मक चक्र में निवास करती हैं और शरत्कालीन चन्द्र के समान सुन्दर आकृति में सुशोभित होती हैं ॥ ४१ ॥

*** चिद्वल्ली ***

तद्विषयवृत्तयः वसुकोणनिकटवासिन्यः । ताः स्वात्मैक्यरुपरक्षणधारिणीत्वेन प्रसिद्धाः । सर्वज्ञादिशक्तिदशकरूपम् आपन्नाः । अन्तर्दशारनिलयास्सर्वरक्षाकराभिधेयचक्रसमारूढाः निगर्भयोगिन्यः । शरदिन्दुसुन्दराकाराः स्वच्छप्रकाशधवलाकृतयः । लसन्ति प्रकाशन्ते । तथा चोक्तम्— अन्तर्दशारगा देव्यो विद्युत्पुञ्जनिभाः शुभाः ।
निगर्भाख्याः पूजनीयाः सर्वरक्षाविधायिनीः ॥ ४१ ॥

*** सरोजिनी ***

तद्विषयवृत्तयः = उसकी शक्तियाँ अष्टकोणों वाले चक्र के निकट स्थित हैं । **ताः** = वे । 'ताः' शब्द उनकी उन शक्तियों की ओर इंगित करती हैं जो कि साधक को आत्मा एवं परमात्मा के मध्य ऐकात्म्य स्थापित करने में सहायता देती है । **'सर्वज्ञादिरूपमापन्नाः'** = सर्वज्ञादि रूप से संयुक्त । ये शक्तियाँ सर्वज्ञ आदि दस शक्तियाँ बन जाती हैं । 'सर्वरक्षाकर'

नामक दश त्रिकोणों वाले चक्र में निवास करती हैं । ये 'निगर्भयोगिनियाँ' कहलाती हैं । **'अन्तर्दशारनिलया'** = 'अन्तर्दशार' में निवास करने वाली ('सर्वरक्षाकर' नामक चक्र में समारूढ ।) **'लसन्ति'** = सुशोभित होती हैं । कहा भी गया है –

'अन्तर्दशारगा देव्यो विद्युत्पुञ्जनिभाः शुभाः ।
निगर्भाख्याः पूजनीयाः सर्वरक्षाविधायिनीः ॥'

'शरदिन्दुसुन्दराकाराः' – शरत्कालीन चन्द्रमा की भाँति स्वच्छ प्रकाश एवं सुशोभित आकृति वाली ।

'अन्तर्दशार' – आकार – भीतर के १० कोण । **रंग** – काला । **खण्ड** = सूर्य-खण्ड, **चक्र** – स्थितिचक्र, **वर्णाक्षर** – ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न । **दशकला** – तीक्ष्णा, रौद्री भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधा, क्रिया, उद्गायी, मृत्यु । **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ** – सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधिविनाशिनी, सर्वाधार-स्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी, सर्वेप्सितफलप्रदा । **चक्रेश्वरी** – त्रिपुरमालिनी । **योगिनी चक्र** – निगर्भयोगिनी चक्र । **मुद्रा** – महांकुश मुद्रा आदि ।

'निगर्भयोगिनी' – 'अन्तर्दशारगा देव्यो विद्युत्पुञ्जनिभाः शुभाः ।
निगर्भाख्याः पूजनीया सर्वरक्षाविधायिनी ॥'

अन्तर्दशार (सर्वरक्षाकर चक्र) में निम्न मूल शक्तियाँ हैं – सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधिविनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी, सर्वेप्सितफलप्रदा ॥ ४१ ॥

तद्बाह्यपङ्क्तिकोणेषु योगिन्यस्सर्वसिद्धिदाः पूर्वाः ।
देवीधीकर्मेन्द्रिय-विषयमया विशदवेषभूषाढ्याः ॥ ४२ ॥

(सर्वरक्षाकर चक्र एवं उसमें स्थित योगिनियाँ)

उसके बाहर (सर्वरक्षाकर चक्र के बाह्यभूत एवं ऊपर स्थित) पंक्ति के कोणों में वे प्रमुख योगिनियाँ स्थित हैं जिसमें प्रथम सर्वसिद्धिप्रद है । वे देवी के ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय के विषय हैं और वे श्वेत वस्त्र तथा आभूषण से सुशोभित हैं ॥ ४२ ॥

*** चिद्वल्ली ***

तद्बाह्यपङ्क्तिकोणेषु तस्य सर्वरक्षाकरचक्रस्य बाह्यभूतेषु उपरिस्थितेषु पङ्क्तिषु कोणेषु । सर्वार्थसाधकचक्रे तस्य कोणात्मकत्वात् । तत्र स्थिता योगिन्यः कुलकौल–नामधेयाः सर्वसिद्धिदाः पूर्वाः सर्वसिद्धिप्रदाः प्रमुखाः शक्तयः । देवीधीकर्मेन्द्रियविषयमयाः देव्यास्त्रिपुरायाः धीकर्मेन्द्रियाणि श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि वागादीनि । तेषां विषयाः शब्दादयः अभिलपनादयश्च तन्मयाः तत्स्वरूपाः । विशदवेषभूषाढ्याः विशदाः शुभ्राकाराः । वेषाश्च भूषाश्च तैराढ्याः । अयमर्थः – मन्त्रदेवतात्माभेदरूपास्सिद्धिदायिन्यः स्वच्छाकृतयः शुभ्राभरणाभासन्त इति । तथा चोक्तं चतुश्शत्याम्—

श्वेतावराभयकराः श्वेताभरणभूषिताः ।

मन्त्राणां स्वप्रभारूपयोगादन्वर्थसंज्ञिकाः ॥
सर्वसिद्धिप्रदाद्यास्तु चक्रे सर्वार्थसाधके ।

इति सुभगोदयवासनायाञ्च –

बाह्यो दशारभागोऽयं बुद्धिकर्माक्षगोचरः । इति ॥ ४२ ॥

* सरोजिनी *

'तद्बाह्यपंक्तिकोणेषु' = 'सर्वरक्षाकर चक्र' के बाहर स्थित त्रिकोणों में । **'तद्'** = 'सर्वरक्षाकर चक्र', जिसके बाहर 'सर्वार्थसाधक' नामक चक्र स्थित है । **'योगिन्यः'** = कुलकौल नामक सर्वसिद्धिदा प्रमुख दश शक्तियाँ । **देवीधीकर्मेन्द्रियविषयमया** = ये देवी के ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों के विषय हैं । ये दस शक्तियाँ जो कि 'सर्वार्थसाधक' नामक चक्र में रहती हैं, ऐन्द्रिय ज्ञान के विषय हैं; यथा ध्वनि सुनने का विषय है । **विषय** = शब्दादि विषय । **विशदवेषभूषाढ्याः** = ये शुभ्र वेष एवं शुभ्र आभूषण से युक्त हैं । सारांश यह है कि ये शक्तियाँ मन्त्र, देवता एवं साधक की आत्मा से अभिन्न हैं और श्वेत वस्त्राभरण से अलंकृत हैं । चतुश्शती में कहा भी कहा गया है –

'श्वेतावराभयकराः श्वेताभरणभूषिताः ॥'

'सर्वरक्षाकर चक्र' – 'षष्ठं सर्वरक्षाकरं चक्रं भवति ससर्वज्ञत्वादि दशकं भवति सनिगर्भं भवति त्रिपुरमालिन्याधिष्ठितं भवति महाङ्कुशमुद्रया जुष्टं भवति[१] ।

परिचय – आकार – भीतर के १० कोण । **रंग** = काला । **खण्ड** = सूर्यखण्ड । **चक्र** = स्थिति चक्र । **वर्णाक्षर** = ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न । **चक्रेश्वरी** – त्रिपुरमालिनी, । **योगिनी चक्र** – निगर्भयोगिनी चक्र । **मुद्रा** – महांकुश मुद्रा । **देहस्थ अवयव** – रेचक, पूरक, शोषक, दाहक, प्लावक, क्षारक, दारक, क्षोभक, मोहक, जृंभक । **शरीरस्थान** – हृदय । **चक्र की मूल शक्तियाँ** – सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधिविनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी, सर्वेप्सितफलप्रदा ।

'चतुःशती' में कहा गया है –

'श्वेतावराभयकराः श्वेताभरणभूषिताः ।
मन्त्राणां स्वप्रभारूपयोगादन्वर्थसंज्ञिकाः ।
सर्वसिद्धिप्रदाद्यास्तु चक्रे सर्वार्थसाधके ॥'

सुभगोदयवासना में कहा गया है –

'बाह्यो दशारभागोऽयं बुद्धिकर्माक्षगोचरः' ॥ ४२ ॥

भुवनारचक्रभवनादेवीमनुकरणविवरणस्फुरगाः ।
सन्ध्यासवर्णवसनाः सञ्चिन्त्यास्सम्प्रदाययोगिन्यः ॥ ४३ ॥

---

१. त्रिपुरातापिन्युपनिषद् ।

(सम्प्रदाययोगिनियों का स्वरूप)

वे शक्तियाँ जो चतुर्दश त्रिकोणों वाले चक्र में स्थित हैं, वे देवी के (मन एवं इन्द्रियों के) चतुर्दश करणों के प्रकाशक स्फुरण हैं । वे सन्ध्याकालीन सूर्य की भाँति रक्त वर्ण वाले वस्त्र पहने हुये हैं । ये सम्प्रदाय-योगिनियाँ हैं और इनका ध्यान उपर्युक्त प्रकार से किया जाना चाहिए ॥ ४३ ॥

*** चिद्वल्ली ***

भुवनारचक्रं सर्वसौभाग्यदायकं चक्रं भवनं वासस्थानं यासां ताः । देव्यामनुकरणानि चतुर्दशकरणानि कर्मेन्द्रियाणि पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चमनोबुद्ध्यहङ्कारचित्ताख्यानि चत्वारि। प्रत्यभिज्ञायां तु त्रयोदशविद्यायाश्च बाह्यान्तःकरणावलिरिति । चित्तव्यतिरेकेण त्रयोदशत्वमुक्तम् । इह तु चित्तेन साकं चतुर्दशत्वमुक्तम्, चित्तमये श्रीपीठेति । चित्तस्यापिअभियुक्तैरन्तःकरणत्वेन परिगणनात् तेषां विवरणं व्याख्यानभूतं स्फुरणं चतुर्दशाररूपं यासां ताः । देवी तु स्वयमेव चतुर्दशकरणात्मकचतुर्दशारचक्रदेवतात्मना स्थिता इत्यर्थः । तथा चोक्तं शिवानन्दैः –

चतुर्दशारसरणीः करणानि चतुर्दश ।
चतुर्दशशिवारण्यं महादेव्याः स्माराम्यहम् ॥ इति ।

सन्ध्यायास्सवर्णं वसनं सदृशं वस्त्रं यासां ताः । सम्प्रदाययोगिन्यः आदिशक्तिमयत्वेन सत्सम्प्रदायदेव्यः सर्वसङ्क्षोभिणीप्रभृतयः सञ्चिन्त्या अव्यक्तमिति सम्यग्भावनीयाः । तथा चतुश्शत्याम् –

शक्तेस्सारमयत्वेन प्रसृतत्त्वान्महेश्वरी ।
सम्प्रदायक्रमायाताश्चक्रे सौभाग्यदायके ॥
निरन्तरप्रभारूपसौभाग्यबलरूपतः ।
अन्वर्थसंज्ञका देवी अणिमासदृशाश्शुभाः ॥
सर्वसङ्क्षोभिणीपूर्वा देहैक्यादि विशुद्धिदा ॥ इति ॥ ४३ ॥

*** सरोजिनी ***

'भुवनार चक्र' = १४ त्रिकोणों वाला चक्र अर्थात् 'सर्वसौभाग्यदायक चक्र' । **'भवन'** = वासस्थान । **भुवनारचक्रभवन** = 'सर्वसौभाग्यदायक चक्र' है वासस्थान जिनका । **'भुवनार'** = १४ की संख्या । चतुर्दशत्रिकोणों वाले चक्र का अभिधान है – 'सर्वसौभाग्यदायक चक्र' । 'देवीमनुकरण' = देवी के १४ साधन अर्थात् ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अन्तःकरण एवं चित्त । **मनु** = १४ की संख्या ।

'विवरणस्फुरगाः' = व्याख्यानभूत चतुर्दशार रूप स्फुरण है जिनका वे । इन्द्रियों के स्फुरण (गति) १४ त्रिकोणों वाले चक्र में उनकी शक्तियों के रूप में रहते हैं । देवी स्वयं ही १४ करणों से युक्त एवं चतुर्दशार चक्र की अधिष्ठात्री देवी के रूप में स्थित हैं । इस चक्र में देवी स्वयं १४ देवताओं के रूप में रहती हैं, जो कि वस्तुतः

उनके १४ करण हैं । ये शक्तियाँ या देवियाँ सर्वसंक्षोभिणी आदि हैं । ये शक्तियाँ 'सम्प्रदाययोगिनियाँ' कहलाती हैं, क्योंकि ये आदिशक्ति के रूप हैं । इनका ध्यान अव्यक्त मानकर किया जाना चाहिए । **'सन्ध्यासवर्णवसनाः'** = सन्ध्या की भाँति आरक्त वस्त्र वाले । **'सम्प्रदाययोगिन्यः'** = सर्वसङ्क्षोभिणी प्रभृति सत्सम्प्रदाय की देवियाँ । **'सञ्चिन्त्या'** = भावनीय है, ध्यान की जानी चाहिए ।

कामेश्वर-कामेश्वरी रूप तेजोयुग्म चतुर्दशार के चतुर्दश कोणों में विभक्त होकर सर्वसंक्षोभिणी आदि १४ शक्तियों के रूप में पूजा जाता है । ये १४ शक्तियाँ पिण्डाण्ड में १० इन्द्रियाँ एवं अन्तःकरणचतुष्टय के साथ १४ करणों में निवास करती हैं – 'चतुर्दशार-वसुधा करणानि चतुर्दश' (सुभगोदय) ।

'चतुर्दशार' को ही 'सर्वसौभाग्यदायक चक्र' कहते हैं और यह पिण्ड में 'स्वाधिष्ठान चक्र' का समस्थानीय है । इसे 'चान्द्र खण्ड' एवं 'प्रमेयपुर' भी कहते हैं ।

'चतुर्दशार चक्र' की शक्तियाँ – सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वाह्लादिनी, सर्वसम्मोहिनी, सर्वस्तम्भिनी, सर्वजृम्भिणी, सर्ववशङ्करी, सर्वरञ्जिनी, सर्वोन्मोदिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसम्पत्तिपूरिणी, सर्वमन्त्रमयी, सर्वद्वन्द्वकरी' । **चतुर्दशार आकार** = १४ कोण । **रंग** = नीला । **खण्ड** = चन्द्रस्थिति चक्र । **वर्ण** = स्वर । **ब्रह्मा की कलाएँ** – सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति, सिद्धि ॥ **योगिनी चक्र** = सम्प्रदाय योगिनी । **देहावयव** = अलम्बुषा, कुहू, विश्वोदरी, वरुणा, हस्ति-जिह्वा, यशस्वती, अश्विनी, गान्धारी, पूषा, शंखिनी, सरस्वती, इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना । **शरीर-स्थान एवं चक्र** – वस्ति । **स्वाधिष्ठान षड्दल** – व से ल ६ व्यञ्जन ॥ ४३ ॥

अव्यक्तमहदहङ्कृतितन्मात्रस्वीकृताङ्गनाकाराः ।
द्विरदच्छदनसरोजे जयन्ति गुप्ततरयोगिन्यः ॥ ४४ ॥

(गुप्ततर योगिनियों का स्वरूप)

अव्यक्त, महत्, अहङ्कार एवं पञ्चतन्मात्राएँ अष्टदल कमल में नारी का रूप धारण करके अत्यन्त प्रकाशित रूप में निवास करते हैं । वे गुप्ततर योगिनियों के रूप में जाने जाते हैं ॥ ४४ ॥

*** चिद्वल्ली ***

अव्यक्तं, अव्यक्ताख्यं तत्त्वम् । महत् महत्तत्वम् । अहङ्कृतिरहङ्कारतत्त्वं, तन्मात्रा पृथिव्यादिभूततन्मात्राः पञ्च । संहत्याष्टौ । एतैः – स्वीकृत आकारः स्वरूपं यासां ताः देव्यात्मका इत्यर्थः । गुप्ततरयोगिनी संज्ञाः मूलदेव्या अन्तरङ्गभूतत्त्वात् । एतासामनङ्ग-कुसुमादीनां गुप्ततरा इति संज्ञा यासां ता अनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तयः । वाग्भवाष्टक-सर्वसङ्क्षोभणाह्वये द्विरदच्छदनसरोजे सर्वसङ्क्षोभणाख्याष्टदलपद्मे जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते । तथा चोक्तं शिवेन –

कौलिकानुभवाविष्टरागपुर्यष्टकाश्रिताः ।
वाग्भवाष्टसम्बन्धसूक्ष्मवर्गस्वरूपतः ॥

लोके गुप्ततराश्चान्याः सर्वसङ्क्षोभणाह्वये ।
अनङ्गकुसुमाद्यास्तु रक्तकञ्चुकशोभिताः ॥
वेणीकृतलसत्केशाश्चापबाणधराः शुभाः ॥ इति ।

शिवानन्दाश्च –

वसुच्छदनपद्माङ्कदलोऽयं चक्रको विभुः ।
अव्यक्ताद्याः प्रकृतयो भूतानां निश्चिनोम्यहम् ॥

अनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तयः द्विरदच्छदनसरोजे सर्वसङ्क्षोभणाख्याष्टदलपद्मे जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते ॥ ४४ ॥

* सरोजिनी *

अव्यक्त = अव्यक्त तत्त्व । **'महत्'** = महत्तत्व (बुद्धि) । **अहंकृति** = अहङ्कार तत्त्व । **तन्मात्रा** = पृथिव्यादि पञ्चमहाभूतों की तन्मात्राएँ । **अङ्गनाकाराः** = नारी की आकृति वाले । **द्विरदच्छदनसरोजे** = 'सर्वसंक्षोभण' नाम वाले अष्टदल कमल में । **'जयन्ति'** = सर्वोत्कर्ष रूप से रहते हैं । **गुप्ततरयोगिन्यः** = अनङ्गकुसुम आदि अष्ट शक्तियाँ । ये शक्तियाँ अन्तरङ्ग होने के कारण गुप्ततर कही जाती हैं ।

'गुप्ततर योगिनी' संज्ञक देवियों के नाम निम्नलिखित हैं – १. अनङ्गकुसुमा, २. अनङ्गमेखला, ३. अनङ्गमदना, ४. अनङ्गमदनातुरा, ५. अनङ्गरेखा, ६. अनङ्गवेगिनी ७. अनङ्गांकुशा ८. अनङ्गमालिनी । अष्टदल कमल की मूल शक्तियों के सम्बन्ध में कहा भी गया है –

'अम्बिकारूपमेवेदमष्टारस्थं स्वरावृतम्'[१] ॥

'सर्वसंक्षोभण चक्र' = अष्टदल कमल । **आकार** = अष्टदल । **रंग** = गुलाबी । **खण्ड** = अग्नि । **चक्र** = संहार चक्र । **अक्षर** = अ, क, च, ट, त, प, य, श । **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ** – अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गरेखा, अनङ्गवेगिनी, अनङ्गांकुशा, अनङ्गमालिनी । **चक्रेश्वरी** = त्रिपुरसुन्दरी । **योगिनी चक्र** = गुप्ततर योगिनी चक्र । **मुद्रा** = सर्वाकर्षिणी । देहावयव = वचन, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द, हानि, उपेक्षा, बुद्धि । **शरीरस्थान एवं चक्र** = गुदा । मूलाधार ४ दल – 'व' से 'स' चार व्यञ्जन । यह चक्र 'आग्नेय खण्ड' का है और 'प्रमातृपुर' कहा जाता है । इसका ध्यान गुदा के पास चतुर्दल कमल के रूप में किया जाता है ॥ ४४ ॥

भूतानीन्द्रियदशकं मनश्च देव्याविकार षोडशकम् ।
कामाकर्षिण्यादिस्वरूपतष्षोडशारमध्यास्ते ॥ ४५ ॥

(षोडश विकार और उनकी शक्तिरूपता)

पञ्चमहाभूत, दस इन्द्रियाँ, मन – ये सोलह देवी के विकार हैं । कामाकर्षिणी

---

१. योगिनीहृदय ।

आदि (देवियाँ) षोडशदल कमल के मध्य स्वरूपतः (षोडश शक्तियों के रूप में) निवास करती हैं ॥ ४५ ॥

*** चिद्वल्ली ***

भूतानि पृथिव्यादीनि । इन्द्रियदशकं श्रोत्रादिवागादीनि च । मनः अन्तःकरणप्रधानं संहत्य षोडशकं देव्याधिकारभूतावस्थान्तरस्वरूपं कुतः ।

विमर्शाख्या च सा देवी पाञ्चविध्यं समागता ।
आकाशानिलसप्तार्चिस्सलिलावनिभेदतः ॥

इत्यादिवचनात् । एवम्भूतषोडशकं षोडशारं सर्वाशापरिपूरकनामधेयं चक्रम् । कामाकर्षिण्यादिस्वरूपतः कामाकर्षिण्यादिषोडशशक्त्याकारेण अध्यास्ते अधितिष्ठति । अधिशीङ्स्थाऽऽसाङ्कर्मेति कर्मत्वम् । सर्वाशापरिपूरकचक्रे एताः कामाकर्षिण्यादि-गुप्तयोगिन्यः स्वरात्मिका निवसन्तीत्यर्थः । तथा चोक्तं चतुश्शत्याम् –

षोडशस्वरसन्दोहचमत्कृतिमयी कलाः ।
प्राणादिषोडशानां तु तत्त्वानां षोडशात्मिकाः ॥
बीजभूतस्वरात्मत्वात्तदसौ बीजरूपिकाः ।
अन्तरङ्गतया गुप्तयोगिन्यः सुव्यवस्थिताः ॥
कामाकर्षणरूपाद्या सृष्टिप्राधान्यतः प्रिये ॥

सुभगोदयवासनायाम् –

षोडशच्छदपद्मोत्थं भोगभूताक्षमानसम् ।
विकारात्मकतापन्नं देव्याः सम्भावयाम्यहम् ॥ इति ॥ ४५ ॥

*** सरोजिनी ***

भूतानि = पञ्चभूत-समूह । **इन्द्रियदशकं** = १० इन्द्रियाँ (५ ज्ञानेन्द्रियाँ एवं ५ कर्मेन्द्रियाँ) । **'मन'** = मनस्तत्त्व । **'षोडशकम्'** = सोलह का समूह अर्थात् ५ महाभूत, १० इन्द्रियाँ, १ मन = १६ । **देव्याविकार** = देवी के विकार अर्थात् उनके अवस्थान्तर । ये १६ तत्त्व षोडशार (सर्वाशापरिपूरक) में कामाकर्षिणी आदि गुप्त योगिनियों षोडश शक्तियों के रूप में निवास करती हैं । ये वर्णमाला की दृष्टि से सोलह स्वर भी हैं । **'कामाकर्षिण्यादि'** = कामाकर्षिणी आदि । १. कामाकर्षिणी, २. बुद्ध्याकर्षिणी, ३. अहङ्काराकर्षिणी, ४. शब्दाकर्षिणी, ५. स्पर्शाकर्षिणी, ६. रूपाकर्षिणी, ७. रसाकर्षिणी, ८. गन्धाकर्षिणी, ९. चित्ताकर्षिणी, १०. धैर्याकर्षिणी, ११. स्मृत्याकर्षिणी, १२. नामाकर्षिणी, १३. बीजाकर्षिणी, १४. आत्माकर्षिणी, १५. अमृताकर्षिणी और १६. शरीराकर्षिणी ।

ये षोडश अवयवों की प्रकाशक शक्तियाँ हैं, जो महाशक्ति से प्रकट होकर विश्व में व्याप्त हो जाती हैं ।

'कामाकर्षणरूपां च बुद्ध्याकर्षणरूपिणीम् ।

अहङ्काराकर्षिणीं च शब्दाकर्षणरूपिणीम् ॥
स्पर्शाकर्षणरूपां तु रूपाकर्षणरूपिणीम् ।
रसाकर्षकरीं देवीं गन्धाकर्षणरूपिणीम् ॥
चित्ताकर्षकरीं देवीं धैर्याकर्षणकारिणीम् ।
स्मृत्याकर्षणरूपां तु नामाकर्षणरूपिणीम् ॥
बीजाकर्षकरीं देवीमात्माकर्षणकारिकाम् ।
अमृताकर्षिणीं देवीं शरीराकर्षिणीं तथा ॥
षोडशारे महादेवि ! वामा वर्तेन पूजयेत्'[१] ॥ इति ॥ ४५ ॥

मुद्रास्त्रिखण्डया सह संविन्मय्यस्समुच्छ्रितास्सर्वाः ।
आदिमही गृहवासाभासाबालार्ककान्तिभिस्सदृशा ॥ ४६ ॥
आधारनवकमस्या नवचक्रत्वेन परिणतं येन ।
नवनाथशक्तयोऽपि च मुद्राकारेण परिणतं येन ॥ ४७ ॥

(मुद्राएँ एवं उनका स्वरूप)

त्रिखण्डा के सहित सभी मुद्राएँ संविद्युक्त (चिद्घननिष्ठ) हैं और (श्रेष्ठता में) सभी का अतिक्रमण करती हैं । वे भूपुर के प्राथमिक चतुरस्र में निवास करती हैं और प्रकाश में अरुणोदय के सूर्य के समान हैं ॥ ४६ ॥

(नौ आधारों का चक्रों के रूप में परिवर्तन)

उसके नौ आधार चक्रों में परिणत (रूपान्तरित) हो जाते हैं । अतः नौ नाथों की शक्तियाँ भी मुद्राओं के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं ॥ ४७ ॥

*** चिद्वल्ली ***

त्रिखण्डया सह त्रिखण्डाख्यमुद्रया साकं समुच्छ्रिताः सर्वोत्कर्षेण वर्तमाना आदिमहीगृहवासाः आदिचतुरस्रनिलयाः । भासा कान्त्या बालार्ककान्तिभिः तरुणारुणरुचिभिः सदृशास्तुल्याः । संविन्मय्यः चिद्घननिष्ठा इत्यर्थः । तथा चोक्तम् –

चिद्व्योमचारिणी मुद्रा शिवावस्था तु खेचरी ।

'सर्वसङ्क्षोभिणीप्रभृतयो दश मुद्रा भयध्वंसिन्यः परमानन्ददायिन्यः परमशक्तय इत्यर्थः ।' तथा चोक्तम् –

मोचयन्ति ग्रहादिभ्यः पश्वोघान् द्रावयन्ति च ।
मोचनं द्रावणं यस्मान्मुद्रास्ताः परिकीर्तिताः ॥ इति ।

एतास्तु मुद्राः चतुरस्रादिबैन्दवान्तनवचक्राधिष्ठाननायिका इति परमशिवेन प्रपञ्चिताः दिङ्मात्रमुदाह्रियन्ते । तथा हि –

---

१. नित्याषोडशिकार्णव (१५८ - १६१) ।

क्रियाशक्तिस्तु विश्वस्य मुद्राख्या संविदम्बिका ।
त्रिखण्डरूपमापन्ना सदा सन्निधिकारिणी ॥
सर्वस्य चक्रराजस्य व्यापिका परिकीर्तिता ।
योनिप्राचुर्यतस्सैषा सर्वसङ्क्षोभिणी पुनः ।
वामाशक्तिप्रधानेयं द्वारचक्रस्थिताऽभवत् ॥

इत्यारभ्य –

सम्पूर्णस्य प्रकाशस्य भोगभूमिरयं पुनः ।
योनिमुद्रा कलारूपा सर्वानन्दमये स्थिता ॥ इति ।

ततु तत एवावधार्यम् । यजुश्श्रुतिरपि – 'नवानां चक्रा अधिनाथास्सयोना नवमुद्रानवचक्रामहीनामिति ।' एतदेव विवृणोति—आधारेत्यादि । आधारनवकं अंकुलसहस्रारमूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धिलम्बिकाऽज्ञाबिन्दुरूपम् अस्याः उपासकस्वरूपिण्यास्सम्बन्धी । येन हेतुना नवचक्रत्वेन बैन्दवात्मना परिणतेन कारणेन । नवनाथशक्तयः पूर्वोक्ता नवमुद्राकारेण परिणता जाता इत्यर्थः । एतच्च स्वच्छन्दसङ्ग्रहे प्रपञ्चितम् । तत एवावधार्यम् ॥ ४६–४७ ॥

* सरोजिनी *

मुद्रास्त्रिखण्डया = त्रिखण्ड मुद्रा के साथ । **समुच्छ्रिता** = सर्वोत्कर्षेण विद्यमाना । **आदिमहीगृहवासा** = आदि चतुरस्रनिलया । भूपुर के आदि (अन्तरतम) भाग में रहने वाला । **'भासा'** = कान्ति से । **'बालार्क'** = बालारुण । **संविन्मयी** = सर्वसंक्षोभिणी आदि दश मुद्राएँ भय का विनाश करती हैं और परमानन्द प्रदान करने वाली परमशक्तियाँ हैं । ये मुद्राएँ चतुरस्र से बैन्दवान्त नव चक्रों की अधिष्ठान नायिकाएँ हैं । **'संविन्मयी'** = चिद्घननिष्ठा ।

मुद्राएँ संविद्रूपा हैं । कहा गया है कि – 'मुद्राएँ चिद्व्योम में सञ्चरण करती हैं । खेचरी मुद्रा तो शिव की अवस्था है । ये मुद्राएँ इसलिए कहलाती हैं क्योंकि ये मनुष्यों को ग्रहों के कुप्रभाव से मुक्त करती हैं और मनुष्यों को दास बनाने वाले अनेक बन्धनों को नष्ट करती हैं । मोचन एवं द्रावण दो व्यापार सम्पादित करने के कारण ही इन्हें 'मुद्रा' कहा गया है । ये चतुरस्र से लेकर बिन्दु पर्यन्त समस्त चक्रों की स्वामिनी हैं । 'वामकेश्वर तन्त्र' में कहा गया है कि जब चित् शक्ति व्यक्त होती है और विश्व को 'इदं' के रूप में पहचानती है उस समय वह आधार के रूप में स्वयं ही मुद्रा बन जाती है ।

मोचन एवं द्रावण ये दो व्यापार ही मुद्रा के प्रधान व्यापार होने से इसका नाम 'मुद्रा' है –

'मोचयन्ति ग्रहादिभ्यः पश्वोघान्[१] द्रावयन्ति च ।
मोचनं द्रावणं यस्मान्मुद्रास्ताः[२] परिकीर्तिताः[३] ॥'

---

१. पाठान्तर—'पाशौघं' । २. 'ताः' के स्थान पर 'शक्तयो' पाठ भी मिलता है ।
३. ऋजुविमर्शिनि में उद्धृत ।

मुद्राएँ सर्वसिद्धिप्रदायिका होती है और इनको प्रदर्शित करने पर भगवती त्रिपुरा साधक के सम्मुख उपस्थित हो जाती हैं –

श्रृणु देवि! प्रवक्ष्यामि मुद्राः सर्वार्थसिद्धिदाः ।
याभिर्विरचिताभिस्तु सम्मुखा त्रिपुरा भवेत् ॥

पाश जाल का 'द्रावण' एवं पाशगत प्राणियों को पाश से 'मोचन' कराना ही 'मुद्रा' के कार्य हैं –

'द्रावणात् पाशजालस्य तत्परस्य च मोचनात् ।
मुद्रापीठमिति प्रोक्तं कामरूपं नमाम्यहम्'[१] ॥

ऋजुविमर्शिनि में भी मन्त्रमुद्रा को महत्त्व दिया गया है –

'मन्त्रमुद्रा शब्देन ज्ञानक्रिये लिलक्षयिषिते ॥' 'ज्ञानक्रियासतत्त्वेन मन्त्रमुद्रा क्रमेण तु (सु० वा० ; शिवानन्द) । स्वच्छन्दतन्त्र में 'मन्त्र' को ज्ञानशक्ति एवं 'मुद्रा' को क्रियाशक्ति का रूप कहा गया है – 'मन्त्रो वै ज्ञानशक्तिश्च मुद्रा चैव क्रियात्मिका' । 'नेत्रतन्त्र' में साधनत्रय के रूप में जिन तीन साधनों का उल्लेख किया गया है उसमें एक 'मुद्रा' भी है[२] ॥ ४६ ॥

आधारनवकं = अकुल, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, लम्बिका, आज्ञा एवं बिन्दु । ये देवी के आधार हैं । **'नवनाथशक्तयोऽपि मुद्राकारेण परिणताः'** = नौ नाथों की शक्तियाँ भी मुद्रा के रूप में रूपान्तरित हो गईं ।

नौ आधारों की श्रीचक्र के साथ एकता—(१) अकुल (सुषुम्नामूल अरुण सहस्रदल कमल) में त्रिपुराधिष्ठित त्रैलोक्यमोहन चक्र, (२) वह्नि के आधार चतुर्दल कमल में त्रिपुराधिष्ठित सर्वाशापरिपूरण चक्र, शाक्तस्वाधिष्ठान स्थित षड्दल कमल में त्रिपुरसुन्दरी अधिष्ठित सर्वसंक्षोभण चक्र; नाभि के दशदल कमल में त्रिपुरवासिनी से अधिष्ठित सर्वसौभाग्यदायक चक्र; अनाहत नामक द्वादशदल कमल में त्रिपुराधिष्ठित सर्वार्थचक्र; षोडशदल कमल रूप विशुद्धि चक्र में – त्रिपुरमालिनी अधिष्ठित सर्वरक्षाकर चक्र, तालुमूल में स्थित अष्टदल कमल में त्रिपुरासिद्धि अधिष्ठित सर्वरोगहर चक्र; भ्रूमध्य के द्विदल कमल में त्रिपुराम्बिकाधिष्ठित सर्वसिद्धिप्रद चक्र और ललाट के इन्दु में स्थित बिन्दु में महात्रिपुरसुन्दरी अधिष्ठित सर्वानन्दमय चक्र है[३] ।

खेचरी मुद्रा – १. अङ्गुलिविरचनात्मा, २. बोधगगनचारिता, ३. संस्थानविशेषानुसरणरूपा (शिवानन्द) । 'स्वच्छन्दतन्त्र' में सभी मुद्राओं के तीन भेद कहे गये हैं, क्षेमराज कहते हैं –

'मनोजा गुरुवक्त्रस्था वाग्भवा मन्त्रसम्भवा । देहोद्भवाङ्गविक्षेपैर्मुद्रेयं त्रिविधा स्मृता ॥'

तन्त्रालोक में मुद्राओं के चार भेद बताये गये हैं – १. करजा, २. सर्वावस्था-

---

१. ऋजुविमर्शिनी में उद्धृत । ३. दीपिका—अमृतानन्दयोगी ।
२. साधनत्रय—१. मन्त्र, २. ध्यान, ३. मुद्रा ।

स्वेकरूपा कायिकी, ३. 'विलापाख्या' (मन्त्रतन्मयतास्वरूपा), ४. ध्येयतन्मयता मुद्रा – 'मानसी' । 'नित्याषोडशिकार्णव' में १० मुद्राएँ बताई गई हैं । जिनमें प्रथमा मुद्रा 'त्रिखण्डा' है जो कि आवाहनार्थ प्रयुक्त होती है । अन्य ९ मुद्राएँ – 'त्रैलोक्यमोहन' आदि ९ चक्रों के अन्त में प्रत्येक चक्र के बीजोच्चारणपूर्वक प्रदर्शित की जाती हैं ।

विद्यानन्द के मत से १. बाह्य एवं २. आभ्यन्तर ये दो प्रकार की मुद्राएँ होती हैं । **बाह्य मुद्रा** = कर रचनारूप । **आन्तर मुद्रा** = बन्धस्वरूप । आचार्य शिवानन्द ने 'ऋजुविमर्शिनी' में कहा है कि मुद्रा अंगुलिसन्निवेश मात्र नहीं है । (यद्यपि मुद्रा मुख्यतः इसी अर्थ में गृहीत होती है) प्रत्युत यह वह 'शक्ति' है जो कि ग्रहादिक से विमोचन करती है एवं पाशसमूह को द्रवित करती है, इसीलिए वे इसे शक्ति मानते हैं- 'मुद्रा नाम काश्चन शक्तयः' ॥ 'मोचनं द्रावणं यस्मान्मुद्रास्ताः शक्तयो मताः ॥' 'देवीयामल' में 'मुद्रा' को परस्वरूपप्रतिबिम्बित कहा गया है – 'मुदं स्वरूपलाभाख्यं देहद्वारेण चात्मनाम्, रात्यर्पयति यत्तेन मुद्रा शास्त्रेषु वर्णिता ॥' 'योगिनीहृदय' में कहा गया है कि – संवित् ही क्रियाशक्ति के रूप में विश्व का मोदन एवं द्रावण करती हुई 'मुद्रा' नाम से विख्यात हो जाती है—'क्रियाशक्तिस्तु विश्वस्य मोदनाद् द्रावणत्तथा । मुद्राख्या सा यदा संविदम्बिका त्रिकलामयी' ॥ ४६-४७ ॥

अस्यास्त्वगादिसप्तकमाकारश्चैवमष्टकं स्पष्टम् ।
ब्राह्म्यादिमातृरूपं मध्यमभूबिम्बमेतदध्यास्ते ॥ ४८ ॥

(अष्ट माताएँ)

उसकी त्वगादिक सात धातुएँ एवं आकार, ब्राह्मी आदि अष्ट माताओं के रूप में व्यक्त होती हैं । वे मध्यस्थानीय भूबिम्ब (भूपुरवृत्त) में निवास करती हैं ॥ ४८ ॥

*** चिद्वल्ली ***

अस्याः देव्यास्त्वगादिसप्तकं त्वगादिसप्तधातवः । आकारः स्वरूपं च एवं रूपमष्टकम् । ब्राह्म्यादिमातृरूपं ब्राह्मयाद्यष्टशक्तिस्वरूपमित्यर्थः । एतत् परिदृश्यमानं मध्यमभूबिम्बं मध्यमचतुरश्रं अध्यास्ते निवसतीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

*** सरोजिनी ***

अस्याः = इस देवी की । **त्वगादिसप्तकम्** = त्वक्, मांस, मज्जा आदि सात धातुएँ। **'आकार'** = स्वरूप । **अष्टक** = आठ का समूह । **ब्राह्म्यादि** = ब्राह्मी आदि अष्टशक्तियाँ । **एतद्** = यह परिदृश्यमान, मध्यमभूबिम्बं = मध्यम चतुरस्र में, **अध्यास्ते** = निवास करती हैं । **भूबिम्ब** = भूपुर का वृत्त । यह चतुष्कोण है और श्रीचक्र का आधार है । **'अष्टकं'** – ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और महालक्ष्मी (अष्टशक्तियाँ) ही अष्ट माताएँ हैं ।

मध्यभूबिम्ब = मध्य चतुरस्र । भूपुर वृत्त । **भूपुर का विवरण – आकार** – चतुर्द्वारात्मक, **रंग** – हरा । **चक्र** = संहार चक्र । **ईश्वर की कलाएँ** – पीता, श्वेता, अरुणा, असिता । **१० दिक्पाल** – इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋत, वरुण, वायु, कुबेर,

ईशान, ब्रह्मा, अनन्त । **१० सिद्धियाँ** – अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति, सर्वकामसिद्धि । **८ शक्तियाँ** – ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, महालक्ष्मी । **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ** – सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशङ्करी, सर्वोन्मादिनी, महांकुशा, सर्वखेचरी, सर्वबीज, सर्वयोनि, सर्वत्रिखण्डा । **चक्रेश्वरी** – त्रिपुरा । **योगिनी चक्र** – प्रकटयोगिनी । **मुद्रा** – सर्वसंक्षोभिणी । **देहावयव** – ९ रन्ध्रात्मक देह, त्वगादि सप्त धातु, षड्रस, इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्ति, अयमात्मा ब्रह्म । **शरीरस्थान एवं चक्र** – गुदा से नितान्त अधःप्रदेश, अकुल (सहस्रदल कमल) ॥ ४८ ॥

अणिमादिसिद्धयोऽस्याः स्वीकृतकमनीयकामिनीरूपाः ।
विद्यान्तरफलभूता गुणभावेनान्त्यभूनिकेतनगाः ॥ ४९ ॥

(परम शिव की अष्टशक्तियाँ)

उसकी अणिमादिक सिद्धियाँ रमणीया तरुणी का रूप धारण करती हैं और अन्य विद्याओं द्वारा प्राप्त होती हैं । गौण रूप में होने के कारण वे भूपुर के अन्तिम (निम्नतम) भूमि में निवास करती हैं ॥ ४९ ॥

*** चिद्वल्ली ***

अस्याः परमेश्वर्याः अणिमाद्यष्टशक्तयः । विद्यान्तराणां हठयोगादीनां फलीभूताः स्वीकृतानि कमनीयानि मनोहराणि कामिनीरूपाणि अङ्गनारूपाणि याभिस्ताः । एवम्भूताः गुणभावेन उपसर्जनभावेन । अन्त्यभूनिकेतनगाः सर्वान्त्यचतुरस्रे तिष्ठन्तीत्यर्थः । अयमर्थःएतादृशपरमात्मोपासनेन साधकः परमेश्वरो भवति । तथोक्तमभियुक्तैः –

तदीयैश्वर्यबिभ्रद्भिर्ब्रह्माविष्णुशिवादयः ।
ऐश्वर्यवन्तो भासन्ते स एवात्मा सदाशिवः ॥ ४९ ॥

*** सरोजिनी ***

'स्वीकृतकमनीयकामिनीरूपाः' = अणिमादिक सिद्धियाँ सुन्दरी रमणी के रूप में कल्पित की गई हैं । **'विद्यान्तरफलभूता'** – हठयोग आदि विद्याओं के अभ्यास के फलस्वरूप । **'अङ्गना'** = नारी । **'गुणभावेन'** = उपसर्जन भाव से = गौण रूप से । **अन्त्य भूनिकेतनगाः** = भूपुर के अन्तिम भाग में स्थित हैं । **अस्याः**= परमेश्वरी की । **सिद्धयः** = अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति, सर्वकामसिद्धि ।[१]

'भूनिकेतन' – **आकार** – चतुर्द्वार । **रंग** – हरा । **चक्र** – संहार चक्र । **ईश्वर की ४ कलाएँ** – पीता, श्वेता, अरुणा, असिता । **दश दिक्पाल** – इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋत, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त । **दश सिद्धियाँ** – अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व आदि । **अष्ट शक्तियाँ** – ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री,

---

१. मालिनीविजयोत्तर तन्त्र ।

चामुण्डा, महालक्ष्मी, **चक्रस्थ मूल शक्तियाँ** – सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशङ्करी, सर्वोन्मादिनी, महांकुशा, सर्वखेचरी, सर्वबीज, सर्वयोनि, सर्वत्रिखण्डा । **चक्रेश्वरी** – त्रिपुरा । **योगिनी चक्र** – प्रकटयोगिनी । **मुद्रा** – सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा । **देहस्थ अवयव** – नवरन्ध्र रूपी देह, त्वगादि सप्त धातु, षड्रस, क्रिया, इच्छा, ज्ञान, शक्ति अयमात्मा ब्रह्म । **शरीरस्थान एवं चक्र** – गुदा से नितान्त अधःदेश, अकुल (सहस्रदल कमल) ।

'विद्यान्तरकलभूता' = हठयोगादिक अन्य साधन शास्त्रों से सम्प्राप्त (सिद्धियों की प्राप्ति) १४ दिनों तक मनोलय → अणिमा की प्राप्ति, १६ दिनों तक मनोलय → महिमा, १८ दिनों तक मनोलय → गरिमा, २० अहोरात्र तक मनोलय → लघिमा, २२ दिनों तक मनोलय → प्राप्ति, २४ दिनों तक मनोलय → प्राकाम्य, २६ दिनों तक मनोलय → ईशित्व, २८ दिनों तक मनोलय → वशित्व ।[१] स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय एवं अर्थवत्व इन ५ प्रकार की अवस्थाओं में संयम करने से योगी को ५ भूतों पर विजय प्राप्त होती है और पञ्चभूतों पर विजय प्राप्त करने से – अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व एवं ईशित्व की प्राप्ति होती है ।[२] तान्त्रिक साधना में 'गुरु' का अत्यधिक महत्त्व है, इसीलिए उसे शिव कहा गया है ।[३]

टिप्पणी – 'परमगुरुर्निर्विशेषबिन्द्वात्मा' (श्लोक ५०), 'गुरुश्शिवो विद्याम्' (श्लोक ५१), 'त्रेतायुगादिकारणत्रिगुरून्' (श्लोक ५२), 'गुरुक्रमो विदितः' (श्लोक ५३) आदि श्लोकों में कामकलाविलासकार ने 'गुरु' का बार-बार उल्लेख किया है । कारण स्पष्ट है – गुरु स्वयं भगवान् स्वरूप है । 'भावनोपनिषद्' में उसे 'सर्वकारणभूता शक्ति' कहा गया है – 'श्रीगुरुः सर्वकारणभूताशक्तिः ।'[४] 'शिवसूत्रवार्तिक' में तो पराशक्ति आदि कहा गया है—

'गुरुरेव पराशक्तिरीश्वरानुग्रहात्मिका । अवकाशप्रदानेन सैव यायादुपायताम् ॥
अकृत्रिमाहमामर्शस्वरूपाद्यन्तवेदनात् । परमेष्ठिसमत्वेन परमोपायता गुरोः ॥'

मालिनीतन्त्र में कहा गया है—'स गुरुर्मत्समः प्रोक्तो मन्त्रवीर्यप्रकाशकः । आदिमान्त्यविहीनास्तु मन्त्राः स्युः शरदभ्रवत् । गुरोर्लक्षणमेतावदादिमान्त्यं निवेदयेत् ॥' शिवसूत्र में 'गुरुरुपायः' कहकर गुरु को ही आध्यात्मिक विकास का एवं सिद्धियों का एकमात्र उपाय बताया गया है ॥ ४९ ॥

एवं कामकलाविलसनरूपं चक्रक्रमं निगमय्य एतादृशं चक्रदेवतामन्त्रस्वरूपं परमेश्वरात्मकगुरुक्रमज्ञानभावेन लभ्यत इति परमशिवादिगुरुक्रमं शिष्यानुजिघृक्षया प्रतिपादयितुमुपक्रमते –

परमानन्दानुभवः परमगुरुर्निर्विशेषबिन्द्वात्मा ।
स पुनः क्रमेण भिन्नः कामेशत्वं ययौ विमर्शांशात् ॥ ५० ॥

---

१. अमनस्क योग । २. पातञ्जल योगसूत्र (३ / ४४-४५)
३. यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्वयम् ।
उभयोरन्तरं नास्ति गुरोरपि शिवस्य च ॥ ४. भावनोपनिषद् ।

(कामेश का स्वरूप)

परमगुरुस्वरूप आदिनाथ रूपी परम शिव, जो कि बिन्दु से एकीभूत हैं – परमानन्द का अनुभव करते हैं । ये वे ही हैं जो अपने विमर्शशक्ति के रूप में क्रमशः भिन्न हो गये हैं और कामेश का रूप धारण किए हुए हैं ॥ ५० ॥

*** चिद्वल्ली ***

परमानन्द इत्यादि गुरुक्रमोविदित इत्यन्तेन । परमस्सर्वोत्कृष्ट आनन्दः परिपूर्णाहम्भावरूपः अनुभवः ज्ञानं यस्य सः । 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेः । 'प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम् ।' इति स्मृतेश्च । परमगुरुर्निर्विशेषबिन्द्वात्मा परमगुरुरादिनाथः परमशिवः तस्मात् आदिनाथात् निर्विशेषः । अभिन्नो बिन्दुः पूर्वोक्तकामकलारूपः स आत्मारूपं यस्य सः । आदिनाथरूपी परमशिव इत्यर्थः । अयमर्थः – आनन्दो ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । चिन्मात्रं सर्वद्रष्टारं सर्वसाक्षिणं सर्वग्राहकं सर्वप्रेमास्पदं सच्चिदानन्दमेकरसमे– वायमात्मा सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धस्सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वय आनन्दः पर इत्याद्युपनिषदुक्तरीत्या चिदानन्दघनपरमार्थप्रकाशविमर्शात्मा परमेश्वर एव परमकारुणिकः स्वयमेव स्वात्मानं कामकलाबिन्दुरूपकामकामेश्वरीरूपदिव्यमिथुन-प्रमुखदिव्यसिद्धमानवौघादिक्रमावतीर्णो गुरुमण्डलात्मा सन् कतिचन भक्तिभाजः संरक्षतीति तात्पर्यम् । एतच्च रहस्योपनिषदि श्रूयते यथा—'यदेषा चक्रमे तच्चक्रम् अभवत् । यदादौ भिन्ना स बिन्दुरभवत् । स आधारो जातः । सोऽयमात्मा आत्मैवैषा शक्तिः सा भावाभावौ सदसत्' इति । तथैवाहुराचार्याः । एको नार्चकः उभयोरुभौ । जायते उभौ नित्यौ एकमेवोभौ अविनाभावात् । आधाराधेयभूतानि । ततो गुणा जायन्ते । लिङ्गानि तानि पिण्डानि । स शक्तिरभवत् । तदप्येष श्लोको भवति ।

भावाभावमयो बिन्दुः भावः षष्ठात्मको भोगः ।
भावात्मकं तु तन्मध्यं चारुभावत्रयात्मकम् ॥ इति ।

तदेषाभ्युक्ता मध्ये चक्रं शिवे बिन्दौ प्रपञ्चो लोकः । लोको देहः सनादरूपः सशब्दरूपः । अर्थात्मिका शक्तिः । चक्रं तनुः बिन्दुः प्राणः मध्ये शक्तिरित्यादिना चक्रदेवतास्वरूपनिरूपणपुरस्सरं कामकामेश्वरीस्वरूपमेव निरूपितम् । तदेषाभ्युक्ता परो वा एष आनन्दः । स भोगयोनिः कामरूपा देवता । स आनन्दो योनिः । आनन्दो ब्रह्म ब्रह्मैव सन् । ब्रह्माप्येति । ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति । ब्रह्मविदाप्नोति परम् ।' ब्रह्म ब्रह्मैवैकानेक प्रपञ्चास्यादित्यादिना च वाक्येन कामेश्वरीमभिधायान्तेऽपि तत्सर्वं त्रिपुरालोकमाता-पायाद्देवी सर्वदा सर्वरूपा इति सर्वोत्तरत्वं सर्वात्मकत्वं च कामेश्वर्याः प्रतिपाद्यन्त इति सर्वरक्षक एव परमशिव इति अथवा परमगुरुरिति छेदः । परमगुरुरादिनाथः । निर्विशेषः निष्प्रपञ्चः बिन्दुस्सच्चिदानन्दलक्षणः आत्मस्वरूपं यस्य स इति ।

बैन्दवे परमाकाशे सच्चिदानन्दलक्षणे ।
निष्प्रपञ्चे निराभासे निर्विकल्पे निरामये ॥

इत्यमृतानन्दवचनात् । रहस्याम्नायेऽपि –

अनुप्रविश्य तां शक्तिं वामाद्यैः पिण्डितो भवान् ।
समस्तबीजगर्भाढ्यः सूक्ष्मबिन्दुत्वमेति सः ॥ इति ।

विरूपाक्षपञ्चाशिकायामपि – 'बिन्दुर्विमर्शधर्माषण्णामेकोऽध्वनां प्राणः ।' इति ।

साङ्ख्यादयोऽपि हंसास्सदा प्रणवसंस्थितान् ।
नादोपरि महादेवं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥

इत्यादिना बिन्दुनादात्मकं परमेश्वरमाह भगवान् वसिष्ठोऽपि । एवंविध-बिन्द्वात्मा परमेश्वर एव कामकामेश्वरीप्रमुखगुरुमण्डलात्माऽभूदित्याह । स पुनः क्रमेण भिन्न इत्यादि । स पूर्वोक्तः परमात्मा । क्रमेण वक्ष्यमाणदिव्यसिद्धरूपेण भिन्नाद्वैरूप्यं प्रापितः । विमर्शांशात् विमर्शः पूर्वोक्तलक्षणः । स्वात्मशक्तिः कामकलारूपा । तदंशः तदर्धभागः । तस्माद्धेतोः कामेशत्वं श्रीकामराजभावम् । ययौ प्राप । अयमर्थः – परमात्मा स्वयमेव स्वात्मानं विभज्य कामकामेश्वरीरूपः गुरुशिष्यभावमापन्नः सकलतन्त्रं प्रवर्तयामासेति ।

तथा चोक्तमुपनिषदि – 'स इममेवात्मानं द्विधापातयत् । ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम् ।' इति । आत्मैवेदमग्र आसीत् । एक एव सोऽकामयत जाया मे स्यात् अथ प्रजायेयेति' । एकस्यैव ब्रह्मणः मिथुनरूपत्वं वक्ति । मिथुनीभूतस्य कामेश्वरत्वमपि श्रुतिरेवाह । यथा बृहदारण्यके – 'काम एव यस्यायतनं हृदयं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात् सर्वस्यात्मनः परायणं स वै वेदिता स्यात् याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषं सर्वस्यात्मनः परायणं यमाधेय एवायं काममयः पुरुषः स एव दैवशाकल्यः । तस्य कामदेवतेति स्त्रिय इति होवाच' । इति कामेश्वरस्य विहरणयोग्यां स्त्रियं कामेश्वरीं प्रत्यक्षं ब्रूते । रहस्यागमश्च –

गुरुः शिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः ।
लोकसंरक्षणार्थाय तन्त्रं समवतारयत् ॥ इति ॥ ५० ॥

एतदेव विशदयति ॥

* सरोजिनी *

परमानन्दानुभव = परमानन्द + अनुभव । **परमानन्द** = परम सर्वोत्कृष्ट आनन्द । अनुभव = परिपूर्णाहम्भावरूप अनुभव या ज्ञान । **परमगुरु** = आदिगुरु, आदिनाथ, परमशिव । वह परमगुरु जो कि आदिनाथ से निर्विशेष या अभिन्न हो । 'बिन्द्वात्मा' = बिन्दु से अभिन्न अर्थात् आदिनाथ रूपी परमशिव । बिन्दु रूप आत्मा वाला । **निर्विशेष बिन्द्वात्मा** = बिन्दु (कामकला) से अभिन्न परमशिव । जिसकी आत्मा बिन्दु है वह है 'बिन्द्वात्मा' । ब्रह्म की आनन्दरूपता के विषय में अनेक शास्त्रोक्त प्रमाण हैं –

१. एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति ।

२. प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम् ।
३. आनन्दो ब्रह्म आदि ।

उस परमशिव ने प्रकाश-विमर्श के स्वरूप में अपनी आत्मा को बिन्दु के रूप में एवं बाद में कामकला के रूप में रूपान्तरित किया और काम-कामेश्वरी आदि दम्पति बन गए । इसी तरह वह समस्त गुरुओं के शरीर बन गए । परमशिव ही गुरुमण्डल बन गए ।

'कामेशत्वं ययौ विमर्शांशात्' = अपनी 'विमर्श' नामक शक्ति के द्वारा वे कामेश बन गये अर्थात् शिव 'कामराज' बन गये । भाव यह है कि स्वयं परमात्मा ने ही अपनी इच्छा से अपनी आत्मा को दो भागों में (काम एवं कामेश्वरी के रूप में) विभाजित कर लिया । बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि 'उसने अपनी आत्मा को दो भागों में विभाजित कर लिया और उसके द्वारा पति एवं पत्नी बन गये ॥'

'गुरुः शिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः । लोकसंरक्षणार्थाय तन्त्रं समवतारयत् ॥

परमात्मा स्वयमेव स्वात्मानं विभज्य कामकामेश्वरीरूपः गुरुशिष्यभावमापन्नः सकलतन्त्रं प्रवर्तयामास[1] । एक ही शिव ने गुरु-शिष्य के रूप में अपने को रूपान्तरित करके लोकसंरक्षणार्थ तन्त्र की अवतारणा की ॥ 'स इममेवात्मानं द्विधापातयत् । ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्' (उपनिषद्) कहकर उपनिषद् ने भी परमात्मा के लोकव्यवहारार्थ पति-पत्नी बनकर स्थित होने का प्रतिपादन किया है । उपाधिरहित शुद्ध चैतन्य ही बिन्दुरूप कामेश्वर हैं – 'संवित्कामेश्वरः स्मृतः'[2] । 'निरुपाधिक संवित् मात्र कामेश्वर है ।' तन्त्रराज में कहा गया है कि –

'स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा ।
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना ॥'[3] इति ॥ ५० ॥

आसीनः श्रीपीठे कृतयुगकाले गुरुशिवो विद्याम् ।
तस्यै ददौ स्वशक्त्यै कामेश्वर्यै विमर्शरूपिण्यै ॥ ५१ ॥

(उड्डीयान पीठ में स्थित शिव द्वारा कामेश्वरी को आत्मविद्या प्रदान किया जाना)

गुरु शिव ने जो कि उड्डीयान पीठ में निवास करते हैं, सत्ययुग के काल में अपनी शक्ति विमर्शरूपिणी कामेश्वरी को आत्मविद्या प्रदान किया ॥ ५१ ॥

*** चिद्वल्ली ***

श्रीपीठे मध्यत्र्यश्रान्तर्गतोड्याणपीठे । आसीनः नित्यसन्निहितः । गुरुः ज्ञानोपदेष्टा। तथा च शिवसूत्रम् – 'गुरुरुपाय इति ।'

गुशब्दस्त्वन्धकारस्स्याद्रुशब्दस्तन्निवर्तकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥

शिवः सर्वप्रवर्तकः परमात्मा । कृतयुगकाले कृतयुगादौ । तस्यै । सा शक्तिः

---

१. चिद्वल्ली । ३. भावनोपनिषद् ।
२. भास्करराय—भावनोपनिषद् की टीका ।

सर्वभूतानां निरवधिकानन्ददायिन्यै स्वशक्त्यै । रहस्योपनिषदि – 'ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वाणी लक्ष्मीः भवानीति ताः सम्प्रदायकाः क्रमात् । सर्वलोकप्रभूत्वेन सैव त्रिपुरा सैवानन्दं ददातीति ।' अन्यत्रापि 'परोऽपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन । शक्तेश्च परमेशानि शक्त्या युक्तो भवेत्' इति । आगमानुसन्धानेन स्वस्वरूपसम्प्रदायिन्यै विमर्शरूपिण्यै । हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः । इति सङ्केतपद्धत्युक्तरीत्या अनुत्तरानन्द-विश्रान्तिस्थानभूतशक्तिपररूपिण्यै कामेश्वर्यै सा कामा सर्वकामा काम एव लोका एव पुराणि तस्मात् त्रिपुरेत्युपनिषदुक्तरीत्या । सर्वदा सर्वप्रकारेण सर्वाभीष्टप्रदायिन्यै । स्वात्मभूतायै विद्यान्तरे तन्महामनुरिति । सैव शब्दा तनुः अस्य सवर्णरूपा परमा त्रिपदा-भिधाभावा त्रिगुणा त्रिवर्गरूपा नित्या निर्मला निष्प्रपञ्चा आत्मविद्या विभुर्वरविद्या य एवं वेद विद्वान् भवति । अथाहुर्विद्वांस इति । रहो रहस्यमिति । शिवोऽयमिति । स एवेमानि भूतानि सृजति रक्षति संहरति । अन्यथा वा करोति । सैव सो भवतीति रहस्योपनिषत्प्रतिपाद्यामात्मैक्यदायिनीमत्यन्तमात्मविद्यां ददौ उपदिदेश ।

अयमत्र सम्प्रदायः – यद्यपि समप्रधानौ समसत्त्वौ समौ तयोश्शक्ति-रजाविश्वयोनिः आदिशक्तिररुणा विश्वजन्या । इति । साङ्ख्यायनशाखायामुभयोः कामकामेश्वर्योः समप्रधानमुक्तम् । तथापि विश्वयोनिर्विश्वजन्या इति सर्वकारणरूपिण्या एतयैव कामेश्वर्या रहस्यतन्त्रं सर्वोपनिषत्सारभूतं प्रवर्तयितुकामः परमशिवः प्रपञ्चसृष्ट्यनन्तरं आदियुगे –

महामध्यं च चक्रस्य महानन्दात्मकं पुनः ।
अनुत्तरविमर्शैकसारं संविन्मयं भजे ॥

इत्युक्तप्रकारेण प्रकाशानन्दसारमयमोड्याणपीठमास्थाय स्वयमपि श्रीचर्यानन्द-नामधेयमुद्वहन् स्वाभिन्नायै पराभट्टारिकायै । श्रीविद्याक्रममुपदिदेश सा परा भट्टारिका त्रेतायुगद्वापरयुगकलियुगेषु वक्ष्यमाणदेशिकस्वरूपिणी ह्यतिरहस्यं शाम्भवतन्त्रं प्रवर्तयामास । इति । अयम् इह क्रमविवरणक्रमः – इह श्रीविद्यारत्नाव-गमने साधनद्वयमस्ति । कामराजसन्तानं सकलविद्यानुसन्ध्यविच्छिन्न इति प्राचीन-गुरवोऽप्याचक्षते । लोपामुद्रासन्तानक्रमस्तु विच्छिन्नतया प्रवर्तत इति वर्णयन्ति । तत्क्रमप्रकारस्तु लिख्यते – तत्र दिव्यौघगुरवस्सप्त । सिद्धौघाश्चत्वारः । मानवौघ-गुरवस्त्वष्टौ । तत्र दिव्यक्रमो यथा – कृतयुगादौ परमशिव एव ओड्याणपीठात्मक मध्यबिन्दुनिवासी श्रीचर्यानन्दनाथनामा सन् स्वात्मशक्त्याख्यश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी विमृष्टतनुः प्रथमो गुरुः । तथा चोक्तम् –

त्र्यश्रान्तरोड्याणपीठसंस्थकामराजशरीरिणी ।
अस्वराकारतां प्राप्य त्र्यश्रसङ्केतमध्यगात् ॥ इति ।

मध्यत्र्यश्राग्रकोणकामरूपपीठवाग्भवाधिष्ठातृकामेश्वरीरूपविमृष्टरूपः श्रीमदूर्ध्वदेव-नाथस्त्रेतायुगगुरुः । तथा चोक्तम् –

त्र्यश्राग्रकोणगा या सा कामेशी कामपीठगा । इति ।

मध्यत्र्यश्रदक्षिणकोणस्थितजालन्धरपीठे स्थितकामराजाभिधेयवज्रेश्वरी मिलितस्वरूपः श्रीषष्ठनाथदेवो द्वापरगुरुः । तथा चोक्तम् –

त्र्यश्रदक्षिणकोणस्थवज्रेशी जालन्धरपीठगा । इति ।

मध्यत्र्यश्रोत्तरकोणगतपूर्णगिरिपीठस्थितशक्तिबीजाभिधेयभगमालिनीविमृष्टदेहः श्रीमित्र-देवनाथः कलियुगगुरुः । तथा चोक्तम् –

त्र्यश्रस्योत्तरकोणस्था भगेशी पूर्णपीठगा । इति ॥ ५१ ॥

* सरोजिनी *

आसीनः श्रीपीठे = उड्डीयान पीठ में स्थित । (शिव का निवास त्रिकोण के अन्तरतम में उड्डीयान पीठ में है ।) **आसीनः** = नित्य सन्निहित स्थित हैं । **'श्रीपीठे'** = मध्य–त्र्यश्रान्तर्गत उड्डीयान पीठ में, **गुरु** = ज्ञानोपदेष्टा, **गु** = अन्धकार । **रु** = निवर्तक । अन्धकार का निरोध करने के कारण ही इन्हें 'गुरु' कहा जाता है । **'कृतयुगकाले'** = सत्ययुग में । (इसी काल में परम शिव ने श्रीविद्या का उपदेश दिया)

(१) कृतयुग में परमशिव ही ओड्याणपीठात्मक मध्यबिन्दुवासी श्रीचर्यानन्दनाथ बनकर अपनी स्वशक्ति महात्रिपुरसुन्दरी के साथ विमृष्टतनु होकर प्रथम गुरु बन गये ।

(२) **'मध्यत्र्यश्राग्रकोण कामरूपपीठ'** = वाग्भवाधिष्ठातृ–कामेश्वरी रूप के साथ ऊर्ध्वदेवनाथ त्रेतायुग के गुरु बन गए ।

(३) 'मध्यत्र्यश्र दक्षिण कोण में स्थित जालन्धर पीठ स्थित कामराजाभिधेय वज्रेश्वरी के साथ श्रीषष्ठनाथदेव द्वापर युग के गुरु बन गये ।

(४) मध्यत्र्यस्रोत्तरकोणगत पूर्णगिरिपीठस्थित शक्तिबीजाभिधेय भगमालिनी विमृष्ट देह वाले श्रीमित्रदेवनाथ कलियुग के गुरु बन गये ।

(५) कलियुग में मित्रेशदेव ने लोपामुद्रा एवं अगस्त्य को अनुगृहीत किया ।

'तस्यै स्वशक्त्यै' – उस अपनी शक्ति के लिए (अपनी आनन्दात्मिका शक्ति के लिए) । **'विमर्शरूपिण्यै'** = विमर्श नामक अपनी शक्ति की । 'अ' अक्षर वर्णमाला का प्रथमाक्षर है और यह 'प्रकाश' (शिव) है और अक्षर 'ह' (शक्ति) अन्तिम अक्षर है तथा 'कला' या 'विमर्श' है ।' **'कामेश्वरी'** = कामेश्वरी नाम इसलिए है क्योंकि यह साधकों के सभी कामों (आकांक्षाओं) को पूर्ण करती हैं और वे अपनी आत्मा से अभिन्न हैं । **'विमर्श'** = स्वात्मशक्ति कामकला । **'कामेशत्वं'** = कामराजभाव को । भाव यह है कि परमात्मा ने अपने को ही विभाजित करके काम एवं कामेश्वरी के रूप में गुरु-शिष्य बनकर समस्त तन्त्रों का प्रवर्तन किया ।

'मध्यत्र्यश्रमध्यस्थानगतोड्याणपीठस्थितसमस्तविद्याभिधेयमहात्रिपुरसुन्दरीदेवी विमृष्टरूपो महाप्रकाशरूपः परमानन्दलक्षणः परमशिव एव प्रथमो गुरुः । अस्य गुरोः श्रीचर्यानाथ इति ॥ 'त्र्यस्रान्तरौड्डुपीठस्तथा महात्रिपुरसुन्दरी ॥' (नित्याषो०) ॥ ५१ ॥

मित्रेशदेवः कलियुगादौ भगवतीं लोपामुद्राम् अगस्त्यं च महातपःपुञ्जमिथुन-मनुगृहीतवान् । एतत्सप्तकं दिव्यौघसंज्ञकं गुरूपदेशादवगन्तव्यम् । इह तु प्रसङ्गादेतावदुक्तम् । एतदेवाह – साप्येषेति ।

सेयायमित्रसंज्ञां स्थानेशान् ज्येष्ठमध्यबालाख्यान् ।
चित्प्राणविषयभूतान् त्रेतायुगादिकारणत्रिगुरून् ॥ ५२ ॥
बीजत्रितयाधिपतीन् परीक्ष्य विद्यां प्रकाशयामास ।
एतैरोधत्रितयं समनुगृहीतं गुरुक्रमे विदितः ॥ ५३ ॥

(पराभट्टारिका एवं मित्रदेव का स्वरूप)

उस (पराभट्टारिका) ने, जो तीन स्थानों (मध्यभूत त्रिकोण के शिखर, दक्षिण एवं वाम कोणों) की (कामेश्वरी, वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी के रूप में) अधिष्ठात्री देवी (स्वामिनी) हैं और ज्येष्ठ (ऊर्ध्वदेवनाथ) मध्य (षष्ठदेवनाथ) एवं बाल (मित्रदेवनाथ) अभिधान वाली हैं और परमशिव के आनन्दोपभोग का विषय हैं; 'मित्रदेव' नाम धारण किया ॥ ५२ ॥

ये वही हैं जिन्होंने दीक्षा के द्वारा सर्वप्रथम उन गुरुओं की परीक्षा करके उन्हें (शिवमुखोद्भूत) आदि विद्या प्रदान की जो कि त्रेता आदि (तीन) युगों के बीज हैं और (वाग्भव आदि) तीन बीजों के स्वामी हैं । इन्हीं तीन गुरुओं के द्वारा ही तीन ओघ (समुदाय) चलते हैं । इस प्रकार गुरुक्रम बताया गया ॥ ५३ ॥

*** चिद्वल्ली ***

सा पूर्वोक्ता परमशिवप्राणनायिका मित्रनाथदेवनाथसंज्ञा भीमो भीमसेन इतिवत् मित्रशब्दो मित्रदेवनाथपर्यन्तं धावति । स च मित्रदेवनाथः कलियुगगुरुः । तत्संज्ञा तन्नामधेयम् । इयाय प्राप । एतच्चोपलक्षणम् – त्रेतायुगद्वापरयुगगुरुनामधेयधारणस्य त्रेतायुगादि युगत्रयगुरुस्वरूपिणी भूत्वा सम्प्रदायं प्रवर्तयेदित्यर्थः । एतदेव विवृणोति स्थानेशेत्यादिना । स्थानेशः स्थानानां मध्यत्र्यश्राग्रकोणदक्षिणकोणोत्तरकोणानां कामेश्वरी-वज्रेश्वरीभगमालिनीनिलयानाम् । ईशा अधिष्ठात्री अत एव ज्येष्ठमध्यबालाख्या । ज्येष्ठः श्रीमदूर्ध्वदेवनाथः । मध्यः श्रीषष्ठदेवनाथः । बालः श्रीमित्रदेवनाथः । तेषामाख्यां नामधेयं यस्यास्सा तत्स्वरूपत्वादेतेषामिति भावः । चित्प्राणविषयभूताः चित्प्राणः परमशिवः चित्स्वरूपत्वात् प्राणरूपत्वाच्च । तथा माण्डूक्योपनिषदि – 'नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञा न धनं न प्रज्ञमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमव्यपदेश्य-मेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते । स आत्मा स विज्ञेयः ।' इति । चिन्मय एव श्रूयते । तथा प्राणमयत्वेनापि श्रूयते ।

तथा छान्दोग्ये – 'यथा वा अरानाभौ समर्पिताः । एवमस्मिन् प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । प्राणः प्राणेन याति । प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः ।' इति । 'एतादृशचित्प्राण-स्वरूपस्य परमशिवस्य विषयभूता भोग्यभूता । कुतः ? एष देवोऽनया देव्या नित्यं

क्रीडारसोत्सुकः ।' इत्यभिनवगुप्तपादोक्तिः । अथवा स्थानेशान् ज्येष्ठमध्यबालाख्यान् चित्प्राणविषयभूतानिति गुरुविशेषणं वा । तथापि स एवार्थः । एवंविधा सा पराभट्टारिका । त्रेतायुगादिकारणत्रिगुरून् पूर्वोक्तश्रीमदूर्ध्वदेवनाथादीन् । बीजत्रितयं वाग्भवादिकम् । तस्याधिपतीन् वाच्यभूतान् । एतच्च पूर्वमेवोक्तम् । एतान् त्रिविध-देशिकान् परीक्ष्य शोधयित्वा विद्यां –

पञ्चभूतमयं विश्वं तन्मयी सा सदानघे ।
तन्मयी मूलविद्या च तथा च कथयामि ते ॥

परमशिवाननारविन्दनिःसृताखिलकारणभूतामादिविद्यां प्रकाशयामास प्रवर्तयामासेत्यर्थः । अत्र किञ्चिद्वदामः – इह परीक्ष्य विद्यां प्रकाशयामासेत्यनेन श्रीसदाशिवात्मा देशिकोत्तमः । सत्सम्प्रदायसिद्धमिदं मार्गं बहुकालमात्मोपासनमाचरते । 'दान्तायोपसन्नाय शिष्यायोपदिदेश च । दीक्षापूर्वं महेशानि विद्यामुपदिशेद् गुरुः ।' इत्यादिना । दीक्षा च शिवसायुज्यदायिनी । इति ।

ददाति शिवतादात्म्यं क्षिणोति च मलत्रयम् ।
अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता दीक्षाशब्दार्थवेदिभिः ॥ इति स्मृतेः ।

'दीयते परशिवैक्यभावना क्षीयते सकलपापसञ्चयः ।' इत्यभियुक्तोक्तेश्च । सा च त्रिविधा । आणवशाक्तसाम्भवभेदात् ।

त्रिविधा सा भवेद्दीक्षा प्रथमा आणवीपरा ।
शाक्तेयी शाम्भवी चेति सद्यो मुक्तिप्रदायिनी ॥ इति स्मरणात् ।

तत्र आणवदीक्षाविधिर्विशेषविहितद्रव्याणि निर्वर्त्यपरदेवतातर्पणध्यानासक्त-रूपिणीत्युक्तेः । शाक्तेयी तु यथोपनतशक्तिसिद्धार्थसाध्या । शाम्भवी च –

सिद्धे शक्तिं समालोक्य तया केवलया शिशौ ।
निरुपायं कृता दीक्षा शाक्तेयी परिकीर्तिता ॥ इति ।

अभिसन्धिं विनाऽऽचार्यशिष्ययोरुभयोरपि ।

देशिकानुग्रहेणैव शिवता व्यक्तिकारिणी ।
सेयं हि शाम्भवी दीक्षा शिवावेशनकारिणी ॥ इति च ।

एवंविधदीक्षाऽभावे न कुत्राप्यधिकारी । तथा श्रीमालिनीविजयकारः प्राह –

न चाधिकारिता दीक्षां विना योगोऽस्ति शाङ्करे ।
न च योगाधिकारित्वं शाम्भवमेकमेव वा ॥

अभिसन्धिरहिताचार्यकृपामात्रसाध्या यथेयं भवेत् । अपि मन्त्राधिकारित्वमुक्तं च शिवदीक्षया । इति । शिष्यस्य वित्ताभावेऽपि आचार्यः शिष्ययोग्यतामवधार्य स्वधनेन वा कुर्यात् । स्वस्याप्यभावे लघूपायेन वा कुर्यात् ।

स्वधनेन दरिद्रस्य कुर्याद्दीक्षां स्वयं गुरुः ।
अपि दूर्वाम्बुभिर्यद्वा दीक्षया मोक्षयेच्छिशुम् ॥

इति सर्वात्मना दीक्षितस्यैव ब्रह्मविद्यायामधिकारो नान्यस्येति स्थितिः । दीक्षा च परदेवतासन्तर्पणं साध्येत्युक्तम् । सन्तर्पणं च द्रवद्रव्यविशेषसाध्ययुगविशेषतर्पणं तृप्तिमयदम् । 'दैवतस्यामृतेन तु' इत्युक्तत्वात् । अत एव तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति । यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेनेति । यज्ञस्यापि ब्रह्मविषयत्वात् ।

श्रूयते स च यज्ञश्च पूजा सा च त्रिधा मता । परा अपरा परापरा चेति । तथा च परमशिवः परमेश्वरीं प्रत्याह —

तव नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता ।
परा चाप्यपरा गौरी तृतीया च परापरा ॥
प्रथमाद्वैतभावस्था सर्वप्रवरगोचरा ।
द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया ॥
एवं ज्ञानमये देवि तृतीया च परापरा ।
उत्तमा च परा ज्ञेया विधानं शृणु साम्प्रतम् ॥
महापद्मवनान्तस्थां कारणानन्दविग्रहाम् ।
तदङ्कोपाश्रयां देवीं वाग्भवे गुरुपादुकाम् ॥
आप्यायितजगद्रूपां परमामृतवर्षिणीम् ।
सञ्चिन्त्य परमाद्वैतभावनामदघूर्णितः ॥
दहनान्तरसम्पर्कनादालोकनतत्परः ।
विकल्पसत्यसङ्कल्पविमुखोऽन्तर्मुखस्सदा ॥
चित्कल्लोलाभिललितसङ्कोचस्त्वतिसुन्दरः ।
इन्द्रियप्रीणनैर्द्रव्यैर्विहितस्वात्मपूजकः ॥
न्यासं निवर्तयेद्देवि षोढान्यासपुरस्सरम् ॥

इत्यादि परा पूजा । अत्र स्वरूपमध्ये —

द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया । इति ।

परमशिवः स्वयमेव बाह्यवर्ती वरिवस्यां करोमीति चक्रपूजां प्रशंसयामास । सोऽपि बाह्ययागः पञ्चविधः —

केवलो यामलो मिश्रश्चक्रयुग्वीरसङ्करः । इति स्मृतेः ।

एतल्लक्षणमाम्नायादेवावगन्तव्यम् । ततश्च सन्तर्पणपूर्वकमेवाभिषेचनादिकर्म कर्तव्यम् । तच्च सन्तर्पणद्रव्यं निष्पाद्यमित्युक्तम् । द्रवद्रव्यं च हेतुभूतनिदानकारणा प्रथमादिशब्दाभिधेयं परमामृतरूपं मधु । तेनैव परदेवतायागस्य साध्यत्वात् । सोमेनाग्निष्टोमयागवत् ।

न च वाच्यमग्निष्टोमीयं पशुमालभेत सोमग्रहान् गृह्णातीत्यादिविधिसद्भावात् । युक्तम् । इतरेषां यागानां सोमसाध्यत्वमुक्तम् । इह तु ब्राह्मणो न सुरां पिबेत् न मांसमश्नीयादित्यादिना निषेधादिदं दर्शनमनुपपन्नमिति । न वयं निषेधविधिमुल्लङ्घ्य स्वातन्त्र्येणैव निदानात्परदेवतातर्पणं कर्तुमुचितमिति ब्रूमः । किन्तु इदमेव शाम्भवदर्शनमौपनिषत्सम्प्रदायादागतमिति निश्चित्य ह्येवमवोचाम । तर्हि निषेधस्य का गतिरिति चेदुच्यते अदीक्षितपुरुषविषयोऽयं निषेधविधिः । दीक्षितस्याननैव हेतुनादेवतायागः कर्तव्य इति मुख्यविधिसद्भावात् । तथा च ऋग्वेदाम्भोधिममध्योद्धृतसांख्यायनशाखायाम् आदिसुन्दरीवरिवस्याद्वारा देवतासाम्राज्यसाधनतानिदानस्य श्रूयते –

इमां विज्ञाय सुरया मदन्ति परिस्रुता तर्पयन्त स्वपीठम् ।
नाकस्य पृष्ठे महतो वसन्ति परं धाम त्रैपुरं चाविशन्ति ॥

अत्र परिस्रुतं द्रव्यमित्यर्थः । तथा निघण्टूवादिप्रसिद्धिः। अत एव वाजपेयादिप्रसिद्धक्रतुष्वपि परमेश्वर्या मन्त्रनायिकाया विहितत्त्वादेव निषिद्धस्यापि द्रव्यस्य स्वीकारो दरीदृश्यते । कुत्र वा परमेश्वरीविधिः श्रूयते । ललितोपाख्याने च –

परितुष्टास्मि मद्याब्धे त्वया साह्यमनुत्तमम् ।
देवकार्यमिदं किञ्चित्त्वया निर्विघ्नितं कृतम् ॥
इतः परं मत्प्रसादाद्वाजपेयादिके मखे ॥
सोमपानवदत्यन्तमुपयोज्यो भविष्यसि ॥
यागेषु मन्त्रपूतं त्वां पास्यन्त्यखिलदेवताः ।
यागेन मन्त्रपूतेन पीतेन भवना जनाः ॥
सिद्धिमृद्धिं बलं स्वर्गमपवर्गं च बिभ्रतु ।
महेश्वरी महादेवो बलदेवश्च भार्गवः ।
दत्तात्रेयो विधिर्विष्णुस्त्वां पास्यन्ति महाजनाः ॥ इति ।

परमशिवोऽपि पूजासङ्केतके — प्रधानादिवरिवस्यां निर्वर्त्येत्याह । यथा वा –

महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
ममाङ्कोपाश्रयां देवीमिच्छाकामफलप्रदाम् ।
भवतीं त्वन्मयैरेव नैवेद्यादिभिरर्चयेत् ॥

इत्यादितः उक्त्वाऽन्ते नैवेद्यद्रव्यं स्पष्टमाचष्टे । यथा वा —

अर्चनापिशितैर्गन्धैर्धूपैराराध्य देवताम् ।
चक्रपूजां विधायेत्थं कुलदीपं निवेदयेत् ॥
कौलिकाचारसंयुक्तैर्वीरैस्तु सह पूजयेत् ॥

अन्य रहस्यागमे परमेश्वरः प्रथमादिपदार्थपञ्चकस्य देवतायागमाह –
मादिपञ्चकमीशानि देवताप्रीतिकारकम् । इति ।

ननु शिव एव स्वतन्त्रप्रवर्तकः इति । तदुक्तं महामायाशाम्बराद्यनेकतन्त्रानुष्ठानप्रसङ्गः प्राप्नोतीति चेत्तदुक्त्वा विशेषादिति चेन्न । तेनैव तत्तदधिकारिभेदेन अनुष्ठेयानीमानि तन्त्राणि । इह तु शाम्भवदर्शनं मुमुक्षूणामेवोपास्यमिति प्रपञ्चित्वात् । यथा —

मोहशास्त्राणि सर्वाणि मयैव कथितानि वै ।
मुक्त्यन्तरं तु गत्वैव मोहनाय दुरात्मनाम् ॥

इत्युक्त्वा —

मथित्वा ज्ञानमन्थेन वेदागममहार्णवम् ।
सारज्ञेन मया देवि कुलधर्मस्समुद्धृतः ॥
मेरुसंर्षपयोर्यद्वत्सूर्यखद्योतयोरिव ।
तथान्यसमयस्याम्बकुलस्य महदनन्तरम् ॥

इत्यादि कुलदर्शनस्वरूपमभिधाय तत्र निष्ठस्यैव मोक्षो नान्यसमयनिष्ठस्य इत्याह —

एतज्ज्ञात्वा वरारोहे सद्यः खेचरतां व्रजेत् ॥ ५२–५३ ॥

* सरोजिनी *

सा' = वह, परमशिव की प्राणनायिका । **'इयाय'**= प्राप्त किया । **मित्रसंज्ञा** - मित्र नामक अभिधान उस शक्ति ने मित्रदेवनाथ नाम ग्रहण किया । 'मित्रदेव' त्रेता एवं द्वापर युग के गुरुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है । वह त्रेता, द्वापर आदि सभी युगों में गुरु बनती हैं और गुरुपरम्परा को चलाती रहती हैं । **'मित्रदेवनाथ'** कलि के युगगुरु है । **'स्थानेशान्'** = स्थानत्रय की स्वामिनियों को । वह 'शक्ति' (Apex) मध्यत्रिकोण के दाहिने एवं बायें कोनों की अधिष्ठात्री देवी हैं । वह कामेश्वरी, वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी के रूप में इन स्थानों में क्रमशः रहती हैं अर्थात् मध्य-त्र्यश्र-अग्रकोण-दक्षिणकोण – उत्तरकोण में कामेश्वरी, वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी रहती हैं । **'ईश'** = अधिष्ठात्री देवी । **'ज्येष्ठमध्यबालाख्यान्'=ज्येष्ठ**=आयु में सबसे बड़े या श्रेष्ठतम अर्थात् श्रीमद्ऊर्ध्वनाथ **'मध्य'** = बीच वाले (या द्वितीय अर्थात् श्रीषष्ठदेवनाथ) । **'बाल'** = कनिष्ठ आयु वाले अर्थात् 'श्री मित्रदेवनाथ । **आख्यान्** = नामों को । देवी इन नामों को धारण करती है ।

'चित्प्राणविषयभूतान्'=चित्प्राण के आनन्दोपभोग के पदार्थों को । **'चित्प्राण'**= चिद्रूप एवं प्राणस्वरूप परमशिव । **'विषयभूत'** = योग्यभूत' । देवी परमशिव की उपभोग या आनन्द की वस्तु हैं । 'माण्डूक्योपनिषद्' में भी कहा गया है – 'प्राज्ञ मनीषि उस अद्वैत शिव के बारे में सोचते हैं जो कि शान्त है और जिसमें समस्त विश्व विलीन है । वह न तो अन्तःप्रज्ञ है और न तो बहिष्प्रज्ञ (स्थूल विश्व का उपभोक्ता) है और न तो इन दोनों में से ही कोई है । वह प्रज्ञानघन भी नहीं है । वह न तो ज्ञाता है और न तो उससे कुछ अज्ञात ही हैं । वह दर्शनातीत हैं । वह (हमारे) व्यावहारिक ज्ञान का विषय भी नहीं है । वह कर्मेन्द्रियों द्वारा ग्राह्य भी नहीं है । वह गुणादिक

लक्षणों से रहित एवं वर्णनातीत है किन्तु वह अपनी प्रत्यगात्मा की अनुभूति है । उसे सर्वोच्च (चतुर्थ) माना गया है । वह आत्मा है । उसे जानना चाहिए ।'

उसे चिन्मय एवं प्राणमय भी कहा गया है । छान्दोग्य श्रुति में कहा गया है – 'जिस प्रकार तीलियाँ शकट के नाभि में पिरोई हुई स्थित रहती हैं उसी प्रकार सब कुछ प्राण में ही पिरोया हुआ स्थित है । प्राण प्राण के द्वारा गमन करता है । प्राण प्राण देता है, प्राण के लिए देता है । प्राण वस्तुतः पिता है, प्राण माता है, प्राण भ्राता है, प्राण बहन है, प्राण आचार्य है ।'

इसी पराभट्टारिका (परमोपास्य पराशक्ति) ने तीनों युगों के बीज रूप ऊर्ध्वनाथ आदि गुरुओं को श्रीविद्या का उपदेश दिया ॥ ५२ ॥

'बीजत्रितयाधिपतीन्' = तीन बीजों के स्वामियों को । तीन बीज वाग्भव आदि हैं । **'परीक्ष्य'** = परिशोधन करके, परीक्षा लेकर । **'विद्या'** = आदि विद्या जो कि परमशिव के मुख से निःसृत हुई और सभी कारणों का कारण है । **'विद्यां प्रकाशयामास'** = इन त्रिविध देशिकों को इसी आदिविद्या का उपदेश दिया । **'परीक्ष्य'** – परीक्षा करके । इस सत्सम्प्रदाय में, बहुत काल तक आत्मोपासना कर चुकने वाले, शान्त, दान्त, उपसन्न एवं दीक्षाप्राप्त शिष्यों को ही विद्या का उपदेश किये जाने का विधान है, सामान्य को नहीं है, इसीलिए 'परीक्ष्य' शब्द का प्रयोग किया गया है ।

विद्योपदेश के पूर्व जिस दीक्षा का विधान है उसका स्वरूप निम्नानुसार है – 'चूँकि वह शिवतादात्म्य प्रदान करती है और मलत्रयक्षीण करती है, इसीलिए शब्दार्थविदों द्वारा उसे दीक्षा कहा गया है ।'

यह दीक्षा तीन प्रकार की है—१. 'आणव', २. 'शाक्त', ३. 'शाम्भव' । **'आणवी दीक्षा'** वह है जिसमें 'विशेषविहित द्रव्य' आवश्यक होते हैं । इसमें परदेवता की प्रगाढ भक्ति, तर्पण एवं ध्यान अपेक्षित है । **'शाक्ती दीक्षा'** दीक्षा का वह प्रकार है जिसमें कोई साधक, अपनी योग्यता एवं अधिकार के आधार पर चुनी गई किसी विशिष्ट उपास्या शक्ति की साधना करके सिद्धियाँ प्राप्त करता है । यह भी कहा गया है कि – जब कोई गुरु यह देखता है कि शिष्य शक्ति के किसी रूप की साधना करने के लिए सन्नद्ध है तब उसे उस शक्ति की दीक्षा दे देनी चाहिए । यही 'शाक्तेयी दीक्षा' कहलाती है । **'शाम्भवी दीक्षा'** दीक्षा का वह भेद है जिसमें केवल गुरु की कृपा मात्र से शिष्य में शिवावस्था उदित हो जाती है । यह शिव के साथ तादात्म्य प्राप्त कराने वाली दीक्षा है –

'शिवतादात्म्यमापन्ना समावेशोऽत्र शाम्भवः ॥'

दीक्षा के बिना साधना में सामर्थ्य नहीं आ पाता । दीक्षित व्यक्ति को ही ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का अधिकार है, अन्य को नहीं । 'दीक्षा' परदेवतासन्तर्पणसाध्य है । प्रत्येक युग के लिए विहित द्रवद्रव्य-विशेष को परदेवता को हवन करने उस देवता को तृप्त करने की प्रक्रिया ही सन्तर्पण है । देवताओं का सन्तर्पण अमृत द्वारा किया जाता है – 'दैवतस्यामृतेन' । यही उनकी आहुति का द्रव्य है ।

शक्ति की जो पूजा की जाती है वह भी तीन प्रकार की है – १. 'परा', २. 'अपरा', ३. 'परापरा'। 'परा' पूजा अद्वैतभावप्रवण है। 'अपरा' पूजा चक्रपूजा है एवं 'परापरा' पूजा ज्ञानमयी पूजा है। इसमें 'परापूजा' ही उत्तमा पूजा है

'गुरुक्रम' – गुरुपंक्ति या गुरुपरम्परा। यह परम्परा त्रिविधात्मिका है – १. 'दिव्य', २. 'सिद्ध', ३. 'मानव'।

१. **'दिव्यक्रम'** – मध्यत्र्यश्रमध्यस्थानगत, उड्याणपीठस्थित, समस्तविद्याभिधेय, महात्रिपुरसुन्दरी देवी-विमृष्टरूप, महाप्रकाशरूप, परमानन्दलक्षण परमशिव ही प्रथम गुरु हैं। इनका नाम है – 'श्रीचर्यानाथ'। इन्होंने कृतयुग में स्वाभिन्न विमर्शाख्य स्वशक्ति को उपदेश दिया था। गुरुपरम्परा द्विविधात्मक है – १. 'कामराजसन्तान', २. 'लोपामुद्रासन्तान'। कामराज़सन्तान सकीलविद्यानुबन्धी एवं विच्छिन्न हो चुकी है तथा लोपामुद्रासन्तान निष्कीलविद्यानुबन्धी है तथा लोपामुद्रा, अगस्त्य आदि ऋषियों द्वारा परिगृहीत है तथा अविच्छिन्न है।

औघत्रय में – 'दिव्यौघ' ७ गुरुओं द्वारा, 'सिद्धौघ' ४ गुरुओं द्वारा एवं मानवौघ ८ गुरुओं द्वारा स्थापित किये गये। आदि में प्रकाशविमर्शसार निर्विशेष बिन्दुलक्षण परमानन्दानुभव ही परमगुरु हुए। फिर उस निर्विशेष बिन्द्वात्मा ने स्वेच्छावश प्रकाश-विमर्श (शक्ति एवं शिव) के रूप में अपने को विभक्त करके ओड्याण पीठ में कृतयुग में कामेश्वर-कामेश्वरी नाम से स्थित होकर चर्यानाथ के रूप में स्वाभिन्न कामेश्वरी को उपदेश दिया।

मध्यत्र्यश्राग्रकोणगत कामरूपपीठस्थित वाग्भवबीजाभिधेय कामेश्वरी देवी विमृष्टरूप श्रीमदोड्डुनाथदेव त्रेतायुग के गुरु हुए।

मध्यत्र्यश्रदक्षिणकोणगत जालन्धरपीठ स्थित कामराजबीजाभिधेय वज्रेश्वरीविमृष्टरूप श्रीषष्ठनाथदेव द्वापर युग के गुरु हुए।

इसी प्रकार मध्यत्र्यश्रोत्तरकोणगत पूर्णगिरिपीठस्थित शक्तिबीजाभिधेय भगमालिनीदेवीविमृष्टरूप श्रीमित्रेशनाथदेव कलियुग के गुरु हुए। मित्रेशदेव ने कलियुग के आदि में भगवती लोपामुद्रा एवं भगवान् अगस्त्य को अनुगृहीत किया। यही है दिव्यौघसप्तक।

२. **'सिद्धक्रम'** = कङ्कालतापस, धर्माचार्य, मुक्तकेशिनी और दीपकाचार्य – यही है सिद्धौघचतुष्टय।

३. **'मानवक्रम'** – दीपकाचार्य के औरसपुत्र जिष्णुदेव हुए। जिष्णुदेव – मातृगुप्तदेव, तेजोदेव, मनोजदेव, कल्याणदेव, रत्नदेव, श्री वासुदेव – यही है मानवौघ सप्तक। किसी ने 'मानवौघ' की संख्या ७, किसी ने ८, किसी ने 'दिव्यौघ' की ५ एवं किसी ने ७, किसी ने सिद्धौघ की ४ एवं किसी ने ६ संख्या लिखी है।

उदित: पुण्यानन्दादिति कामकलाङ्गनाविलासोऽयम्।
परशिवभुजङ्गभावाकर्षणहर्षाय कल्पते नित्यम्॥ ५४॥
चिन्तान्तरङ्गतरलस्तृष्णासलिल: प्रपञ्चवाराशि:।
यदनुग्रहेण तीर्णस्तस्मै श्रीनाथनाविकाय नम:॥ ५५॥

(ग्रन्थकार द्वारा ग्रन्थ के महत्त्व का प्रतिपादन)

पुण्यानन्दनाथ द्वारा वर्णित कामकलारूपिणी सुन्दरी नारी के विलास के वर्णन का यह अन्त है, जो कि रसिक परमशिव की इच्छा को सदैव आकृष्ट किया करता है और उन्हें हर्षित करता है ॥ ५४ ॥

(श्रीनाथ को अभिवादन)

उन (संसार-समुद्र) के नाविक रूप श्रीनाथ को अभिवादन करता हूँ जिसकी अनुकम्पा से मैंने उस संसरण-समुद्र को पार किया, जिसका जल तृष्णा है और जिसका तल चिन्ताओं की तरङ्गों से तरल है ॥ ५५ ॥

*** चिद्वल्ली ***

उदित इति । पुण्यानन्दात् पुण्यानन्दाख्यात् स्वस्मादुदितः उत्पन्नः । अयं कामकलाङ्गनाविलासः। कामेश्वराविनाभूता विमर्शशक्तिः । कामकला सैवाङ्गना सुन्दरी तस्या विलासश्चक्रावरणदेवतादिरूपः । स एव विलासः दयितेक्षणे सति तत्कालो चित्तविकारः । परशिवः प्रकाशैकस्वभावभुजङ्गः रसिकः विटः तस्य भावो हर्षितसञ्जातोत्कर्षः । उद्विलास इति यावत् । एवम्भूताय हर्षायानन्दाय कल्पते समर्थो भवति । भावाकर्षणहर्षायेति पाठान्तरे – तस्मात्तस्यावलोकनेन भावस्याकर्षणमुदयः । तेन यो हर्षितः हर्षः । विलासेक्षणेन समुत्पन्नान्तरो विकारविशेषो भावः । तेनोपार्जितो विलासो भावजननद्वारा हर्षहेतुर्भवतीत्यर्थः । लोकेऽपि प्रियतमविलासदर्शने रसिकनायकस्य शृङ्गारभावोदयपूर्वको हर्ष उत्पद्यते । तद्वत्परशिवस्यात्म-शक्तीक्षणाभिमुख्यस्य चिच्छक्तिभूतकामकलाविलासः । पदविक्षेपादिरूपनिरवधि-कानन्दप्रदो भवति । आर्यारूपेण स्वमुखारविन्दनिस्सृतो ग्रन्थरूपः कामकलाविलासः परशिवप्रीति सङ्कल्पत इति । कामकलाविलासानुभवतः पुण्यानन्दमहात्मा एवं वदति च प्रतीयते । इतिशब्दः परिसमाप्तिद्योतक इत्यवगन्तव्यम् । अधिगतमध्य-यनमननुभावितं चार्थतः खरस्य चन्दनभारवत्केवलं परिश्रमकरं भवतीति निरुक्तकारा-दिवचनेनार्थज्ञानहीनस्याध्ययनस्य निष्फलत्वश्रवणात् ।

ज्ञातव्यः सर्ववेदार्थो वेदानां कर्मसिद्धये ।
पाठमात्रमधीता च पङ्के गौरिव सीदति ॥
वेदस्याध्ययनं सर्वं धर्मशास्त्रस्य चैव हि ।
अजानतोऽर्थं तत्सर्वं तुषाणां खण्डनं यथा ॥

इत्यादि श्रुतिसिद्धकामकलास्वरूपं परिपूर्णं प्रपञ्चितमिति शिवम् ॥ ५४–५५ ॥

इति श्रीनटनानन्दकृतं कामकलाचिद्वल्लीव्याख्यानं सम्पूर्णम् ॥

॥ श्रीगुरुचरणारविन्दार्पणमस्तु ॥
॥ श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यर्पणमस्तु ॥
॥ शुभमस्तु ॥

* सरोजिनी *

'उदित:' = प्रस्तुत । **पुण्यानन्दात्'** = पुण्यानन्द स्वामी द्वारा । **'कामकला-ङ्गनाविलासोऽयम्'** = यह 'कामकला' रूपी रमणी का क्रीडात्मक सृष्टि-व्यापार है । **'कामकला'** = (कामेश्वर से अभिन्न उनकी) विमर्श शक्ति । **'अङ्गना'** = रमणी । **'विलास'** = आनन्दात्मक सृष्टिरूपा लीला । उनका यह विलास 'चक्र' 'आवरण देवता' एवं इसी प्रकार अन्य शक्तियों एवं रचनाओं को सम्मूर्तित करता है । 'कामकला' में यह क्रीड़ात्मक स्पन्द तभी उत्पन्न होता है जब परमशिव उसे देखते हैं ।

'परमशिव:' – प्रकाशैकस्वभाव परमशिव । **'भुजङ्ग'** = रसिक, विट । उस कामकला के ये क्रीड़ात्मक व्यापार उसके रसिक परमशिव को अत्यधिक आकृष्ट करते हैं । **'भाव'** – विलासपूर्वक ईक्षण से समुत्पन्न रागात्मक विशिष्ट चित्तविकार । **'भावाकर्षण'** = भाव = राग, शृङ्गाररसभाव । **आकर्षण** = उदय । **हर्ष** = आनन्द । शृङ्गारात्मक भावों से उत्पन्न प्रसन्नता । **कल्पते** = समर्थ होता है ।

इस लोक में भी प्रियतमा की विलासमयी क्रीड़ाएँ देखकर पति के मन में प्रसन्नता एवं अनुराग उत्पन्न होता है, उसी प्रकार 'कामकला' (चित्शक्ति) की रसात्मक क्रीड़ा एवं पदविक्षेप देखकर परमशिव के मन में भी प्रसन्नता एवं अनुराग उत्पन्न होता है, क्योंकि वे उसकी ओर मुख करके उस अपनी शक्ति को प्रेमभाव से देखते हैं ।

इसी प्रकार पुण्यानन्दनाथ की यह पुस्तक 'कामकलाविलास', भी परमशिव को आनन्द प्रदान करती है । 'कामकला' का स्वरूप इस प्रकार है –

बिन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रं तु तदधस्तात्कुचद्वयम् ।
तदधश्च हरार्धं तु चिन्तयेत्तदधोमुखम् ॥
तत्र कामकलारूपामरुणां चिन्तयेदिह ।
ततस्तेनैव रूपेण निजरूपं विचिन्तयेत्[१] ॥

---

१. कामकला का स्वरूप एवं उसकी महिमा निम्नानुसार है – अर्थात् मुख को बिन्दु बनाकर दोनों स्तनों को उनके निम्न भाग में दो और बिन्दुओं का निर्माण करना चाहिए । उसके नीचे (हकार) के अर्धभाग का ध्यान करना चाहिए । हे हरमहिषी ! इस प्रकार जो आपकी 'कामकला' का ध्यान करता है, वह तुरन्त स्त्रियों के चित्त में क्षोभ ले आता है । यह तो अत्यन्त छोटी बात है (उसका सामर्थ्य तो इतना अधिक होता है कि) अपितु वह तो सूर्य और चन्द्र रूपी दो स्तन वाली त्रिलोकी को भी भ्रमित कर सकता है । (सौ० ल० १९)

'बिन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रं तु तदधस्तात् कुचद्वयम् ।
तदधः सपरार्धं चिन्तयेत्तदधोमुखम् ॥
एवं कामकलारूपमक्षरं यत् समुत्थितम् ।
कामार्थधर्ममोक्षाणामालयं परमं ध्रुवम् ॥

(शिवस्तोत्रावली)

'मन्मथकला' (कामकला) का स्वरूप—शङ्कराचार्य ने मन्मथकला को इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

'मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो,
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम् ।
ससद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु,
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम् ॥'
त्रिकोणे बैन्दवस्थाने अधोवक्त्रं विचिन्तयेत् ।
बिन्दोरुपरिभागे तु वक्त्रं सञ्चित्य साधकः ।
तदुपर्येव वक्षोजद्वितयं संस्मरेद् बुधः ॥
तदुपर्येव योनिं च क्रमशो भुवनेश्वरीम् ।
श्रीविद्यां कामराजं च विनस्याशु विमोहयेत्' ॥ ५४ ॥

उत्पलदेवाचार्य ने भी इसी प्रकार की प्रार्थना करके भगवान् श्रीनाथ की कृपा के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की है । वे कहते हैं – 'हे परमेश्वर ! वस्तुतः ज्यों ही मैंने आपकी इच्छा से आपके कल्याणमय मार्ग पर पदार्पण किया त्यों ही मेरे सैकड़ों प्रकार के कल्याण का उदय हुआ, अतः हे प्रभु ! मैं आपसे और क्या माँगू ?

'किल यदैव शिखाध्वनि तावके, कृतपदोऽस्मि महेश तवेच्छया ।
शुभशतान्युदितानि तदैव मे, किमपरं मृगये भवतः प्रभो ॥'[१]

महामाहेश्वराचार्य गोरक्षनाथ ने भी उन्ही 'नाथ' का अभिवादन किया है जिन्हें उत्पलदेव, एवं पुण्यानन्द अभिवादन करते हैं –

'निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा ।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथाय ते नमः ॥
वामभागे स्थितः शम्भुः सव्ये विष्णुस्तथैव च ।
मध्ये नाथः परं ज्योतिस्तज्ज्योतिर्मे तमोहरम् ॥' ५५ ॥



---

१. नित्याषोडशिकार्णव । (१ । १८६)

श्लोकानुक्रमणिका

	पृष्ठाङ्काः		पृष्ठाङ्काः
अज्व्यञ्जनबिन्दुत्रय	७२	पञ्चदशाक्षररूपा नित्या	६८
अणिमादिसिद्धयोऽस्याः	१३५	परमानन्दानुभवः परम	१३६
अथ विशदादपि बिन्दोः	५४	परया पश्यन्त्यापि च	१०६
अव्यक्तमहदहङ्कृति	१२८	परशिवरविकरनिकरे प्रति	३०
अस्यास्त्वगादिसप्त	१३४	पाशाङ्कुशेक्षुचापप्रसून	११५
आद्या कारणमन्या कार्यं	९९	बिन्दुत्रयमयतेजस्त्रितय	१०९
आधारनवकमस्या नव	१३१	बिन्दुद्वितयं यद्वद्भेद	५८
आसीनः श्रीपीठे कृतयुग	१३९	बिन्दुरहङ्कारात्मा रवि	४३
आसीनां बिन्दुमये चक्रे	११५	बीजत्रितयाधिपतीन् परीक्ष्य	१४२
इच्छाज्ञानक्रियाशान्ता	८९	भुवनारचक्रभवनादेवी	१२६
इति कामकला विद्या देवी	५१	भूतानीन्द्रियदशकं मनश्च	१२९
उदितः पुण्यानन्दादिति	१४८	मध्ये चक्रस्य स्यात्	८३
एका परा तदन्या	९३	माता मानं मेयं बिन्दु	६२
एतच्चक्रचतुष्कप्रभा	१०४	मुद्रास्त्रिखण्डया सह	१३१
एतत्पश्यन्त्यादित्रितय	८३	यासान्तरोहरूपा परा	८०
एवं कामकलात्मा त्रिबिन्दु	९२	वसुकोणनिवासिन्यो यास्ताः	१२२
कादिभिरष्टभिरुपचित	१०८	वागर्थौ नित्ययुतौ परस्परं	६०
क्रमणं पदविक्षेपः क्रमोदय	११२	विद्यापि तादृगात्मा सूक्ष्मा	७२
चक्रस्यापि महेश्या न	८०	शब्दस्पर्शौ रूपं रसगन्धौ	६८
चित्तमयोऽहङ्कारः	३६	शषसपवर्गमयं तद्वसु	१००
चिन्तान्तरङ्गतरलस्तृष्णा	१४८	सकलभुवनोदयस्थितिलय	१
तच्छाया द्वितयमिदं	१०२	सा जयति शक्तिराद्या निजसुख	१६
तद्बाह्यपङ्क्तिकोणेषु	१२५	सितशोणबिन्दुयुगलं विविक्त	४३
तद्विषयवृत्तयस्ताः	१२४	सेयं परा महेशी चक्रा	११५
तन्मिथुनं गुणभेदादास्ते	१२०	सेयायमित्रसंज्ञां स्थानेशान्	१४२
तेषु क्रमेण लिङ्गत्रितयं	६२	स्फुटशिवशक्तिसमागम	२५
द्विविधा हि मध्यमा सा	९४	स्फुटितादरुणाद् बिन्दोर्नाद	५४
नित्यास्तिथ्याकाराः तिथय	६९		

कतिपय तन्त्रग्रन्थाः

- **तन्त्रसारः** । अभिनवगुप्तपादाचार्य विरचित। हिन्दी टीका सहित । डॉ. परमहंस मिश्र। (१-२ भाग)
- **त्रिपुररहस्यम्** । ज्ञानखण्ड । हिन्दी टीका सहित। डॉ. जगदीश चन्द्र मिश्र
- **नीलसरस्वतीतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित। श्री एस.एन. खण्डेलवाल
- **भूतडामरतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित। श्री एस.एन. खण्डेलवाल
- **सिद्धानागार्जुनतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित। श्री एस.एन. खण्डेलवाल
- **अन्नदाकल्पतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित। श्री एस.एन. खण्डेलवाल
- **मन्त्रमहोदधिः** । श्रीमन्महीधर विरचित । 'नौका' संस्कृत एवं 'अरित्र' हिन्दी टीका सहित। डॉ. सुधाकर मालवीय
- **ललितासहस्त्रनाम्** । भास्करराय प्रणीत संस्कृत टीका एवं भारत भूषण कृत हिन्दी व्याख्या।
- **विज्ञानभैरवः** । हिन्दी टीका सहित । श्री बापूलाल आँजना
- **पुरश्चर्यार्णवः** । (मूलमात्र)। सम्पादक—मुरलीधर झा
- **प्राणतोषिणी** । (मूलमात्र)। श्रीरामतोषण भट्टाचार्य
- **बृहन्नीलतन्त्रम्** । (मूलमात्र)। सम्पादक—श्रीमधुसूदन कौल
- **देवीरहस्यम्** । परिशिष्ट सहित । (रुद्रयामलतन्त्रान्तर्गत) सम्पादक—रामचन्द्र काक एवं हरभट्ट शास्त्री
- **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी** । अभिनवगुप्त । सम्पादक—श्रीमधुसूदन कौल शास्त्री (१-३ भाग)
- **तन्त्रसारसंग्रहः** । नारायण । आंग्ल एवं संस्कृत भूमिका सहित । पं. एम. दुरैस्वामी आयंगार